आभियान प्रकाशन

मरघान (कविता सग्रह 1984)
सी 50 गोरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

कुलहीन योगी

शिव सागर मिश्र

कुलहीन योगी

प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)

आ सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

1

कार्तिक पूर्णिमा के पावन पर्व पर दूर-दूर से सकडो श्रद्धालु जन चद्रभागा के तट पर उमड पडे थे। नदी मे स्नान करके पुण्य कमाने वालो की होड लगी थी। साधु-सत, गहस्थ सन्यासी, सधवा विधवा, बालक वद्ध सभी एक डुबकी लेकर तन मन स्वच्छ करने के लिए आतुर थे।

एक युवती भी अपने पाच वर्ष के बच्चे को लेकर उन श्रद्धालु जनो मे शामिल हो गई थी। नदी के तट पर उसने अपने बच्चे को कपडा की गठरी के पास बैठा दिया और स्वय नदी के जल मे उतर गई।

नन्हा बालक घाट पर बैठा अपनी मा को जल मे डुबकी लेते तन्मयता के साथ देखता रहा। युवती नदी के शीतल जल मे डुबकिया लेते हुए बडी आनदित प्रतीत हो रही थी। कभी पानी के भीतर चली जाती, तो कभी ऊपर आकर अपना बाल धोने लगती।

अपनी मा को परम आनदित देखकर नन्हा बालक भी पानी के भीतर जाने के लिए उत्सुक हो उठा। जाते समय मा उसे कपडा की निगरानी करने का कठोर निर्देश दे गई थी। वह कुछ देर असमजस मे पडा रहा, लेकिन ज्यादा समय तक अपना लोभ सवरण नही कर सका। उसने धीरे धीरे तट की ओर बढना आरभ किया। मा अपने पुत्र की ओर से निश्चित होकर जल मे डुबकिया लगा रही थी। वह भी तो तट के पास ही बैठा था न!

नदी म पानी का तज वहाव था। चद्रभागा घाट की अतिम सीढी से लगकर वह रही थी। बच्चा जस ही अतिम सीढी तक पहुचा, उसका पैर फिसल गया। उसक आख, कान, मुह म पानी जाने लगा और वह चिल्ला भी न सका। उसका छोटा सा शरीर नदी की धारा के साथ वह चला।

इसी समय स्नान कर बच्चे की मा कपडा के पास आई। वहा बच्चे को न पाकर उसका दिल धक से रह गया। उसने अपने चारो ओर देखा, लेकिन बच्चा न मिला। उसकी दृष्टि पानी की ओर गई। बच्चे को धारा के साथ बहत देखकर वह चीख पडी—"बचाओ! बचाओ!! मेरे बटे को बचाओ!

आकुल-व्याकुल होकर हाहाकार करती हुई नदी के जल मे वह कुछ दूर आगे बढती चली गई। लेकिन इसके आगे नदी गहरी थी, डूब जान का भय था। वह ठिठकी तरना नही जानती थी इसीलिए आगे बढने का उसम साहस न था। वह वही स चिल्ला चिल्लाकर लागा से अपने बच्चे का बचा लेने की प्रार्थना करने लगी।

उसका चीखना चिल्लाना सुनकर घाट पर काफी मजमा एकत्र हो गया था। बच्चा अब मुख्य धारा म पहुचकर पूव दिशा की ओर बहने लगा था। नदी, एक तो गहरा—दूसर बहाव तेज—किसी की हिम्मत न हुई पानी मे उतरने की। मा बेटे के लिए बिलख बिलखकर रा रही थी बचाओ बचाओ की गुहार उसके मुख स अभी भी निकल रही थी। अब तक घाट पर भीड की सख्या दा गुनी हा चुकी थी। सभी एक दूसर का मुख निहारकर शोर मचा रहे थ—बचाओ! बचाओ!!

आश्चय की बात! कहते सब थे, लेकिन उस डूबत बच्चे को बचाने क लिए नदी के जल म उतरन का कोइ तयार न था। कमर भर पानी म खडी बच्चे की मा की चीख पुकार अभी भी गूज रही थी—

प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)
ना सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

लेकिन उसकी वेदना भरी गुहार सुनने वाला वहा था ही कौन ?—वहा सिफ तमाशवीन थे—इसानी मुखौटा पहने, मजमा लगाए हृदयहीन निमम लोग !

युवती के आसू सूख गए। आखें पथरा गइ। दुखिया का आचल फैला ही रह गया। लहरो के भवर से निकालकर, उसके आचल मे कोई न डाल सका उसके लाल को !

अवलब के स्रोत सूख जाने पर प्राणी अपना आपा खो देता है—*सतुलन बिगड जाता है, मन मस्तिष्क विकृत हो जाता है। कुछ ऐसी ही* दशा हुई, उस असहाय युवती की ! अचानक एक अटटहास से उसके अधर फडक उठे। बडी विद्रूप भरी और भयानक थी वह हसी। वह हसी हसती ही गई और फिर नदी से बाहर निकल, तेजी से दौड पडी, तट के किनारे किनारे वह पूरी तरह पागल हो चुकी थी। वह वापस नदी की ओर दौडी और आव देखा न ताव, जल म कूद पडी। जब तक कोई उसे पकडता, वह नदी के अथाह जल मे समा चुकी थी।

चद्रभागा के तटीय इलाके मे इस घटना की खबर कानोकान चारो ओर फल गई। अब सिफ यात्री ही नहीं, घरो के गृहस्थ भी दौड पडे इस दश्य का देखने के लिए ! पूर्णिमा मेले के इन्तजाम के लिए पुलिस के अलावा स्काउट शिविरो और मेला कमेटी के स्वयसेवका की भी ड्यूटी लगा दी गई थी—खबर इन शिविरा मे भी पहुची। सुनते ही स्वय सेवक नदी की ओर दौड पडे। आते ही कइया ने नदी मे छलाग लगा दी। अब तक बच्चा प्रवाह के साथ काफी आगे जा चुका था। वह कभी धारा के ऊपर तो कभी नीचे गोते खाता जा रहा था। स्वय-सेवका ने पानी म सब ओर से उसका घेराव कर लिया। वे प्रवाह के तीव्र बहाव को काटते हुए आखिर बच्चे तक पहुच ही गए। एक ने लपककर शीघ्रता स उसे अपनी बाहो मे समेट लिया।

उस अभागी युवती को भी पानी से निकाल लिया गया था। वह मरणासन्न अवस्था मे मेला-कमेटी के एक शिविर मे पडी हुई थी। डाक्टर उसे होश मे लाने की सतत चेष्टा कर रहा था। अब तक बच्चे को गोद म लिए स्वय सेवक भी उपस्थित हो गए। काफी जल पेट मे चले जान से बच्चा भी अचेतन अवस्था म था। डाक्टर इजेक्शन देकर मा के होश मे आने का इतजार कर रहा था। बच्चे के आते ही अब वह उसके इलाज मे जुट गया। उसने बच्चे के पेट स पानी निकाला, उसका आवश्यक उपचार किया। कुछ देर के कठोर श्रम के बाद बच्चा होश म आ गया। धीरे धीरे उसके होठ हिले और वह 'मा मा' कहकर रोने लगा। लेकिन उसकी करुण पुकार सुनने के लिए मा यहा कहा थी? डाक्टर इतजार करता ही रहा उसके होश म आने की लेकिन उसे होश मे न आना था, न आई।

डाक्टर ने एक बार फिर परीक्षण किया। उसकी रही सही आशा भी जाती रही। नाडी की क्षीण धडकन भी अब बद हो चुकी थी। अनेक जाच-परख के बाद उसने युवती को मृत घोषित कर दिया।

बच्चा अभी भी 'मा मा' की रट लगाए जा रहा था। उसके इद गिर्द ढेर सारे लोग उस शिविर म जमा थे।

मा से कोई जवाब मिलता न देख, बच्चे म निराशा का भाव जागृत हुआ— आखिर मा बोलती क्यो नही? ऐसा तो कभी नही हुआ था। सुबह हो या शाम! दिन हो या आधी रात—उसने जब कभी पुकारा, मा ने उठकर उसे अपना वात्सल्य दिया—अपने आचल की स्निग्ध छाया दी!

लेकिन आज? वह बार-बार पुकार रहा है—और मा है कि सुनती ही नही? आखिर हो क्या गया है मा को?—बच्चे के मन म इस प्रकार के विचार भाव तो उठ रहे थे, लेकिन इसका निदान उसकी बाल-

प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

सुलभ बुद्धि के बाहर था। उसे सिर्फ इतना मालूम था—'वह बार-बार मा को पुकार रहा है—और मा है कि बोलती ही नहीं?' मौत उसने अब तक कभी देखी न थी, अन्यथा समय चुका होता मा के न बोलने का कारण!

निराश और हताश हो, उसने एक बार अपने चारों ओर दृष्टि डाली। सबकी निगाह उस पर टिकी थी, लेकिन उसकी निगाहों को तलाश थी सिर्फ एक की—और वह थी उसकी ममतामयी मा!

उस भारी भीड में जब मा कहीं न मिली तो वह 'मा ऽ ऽ!' कहता चीखकर मा की उस निर्जीव काया पर गिर पडा।

अब तक मेला प्रबंध कमेटी के चेयरमन भी वहा आ गए थे।—कहते हैं परिस्थितिया चाहे कितनी भी पीडादायक हो, उन्हें झेल लेने का पौरुष पुरुष म जन्मजात होता है। फिर ऐसा पुरुष जो मिलिट्री का रिटायर कैप्टेन हो, राष्ट्र और समाज के हितों की रक्षा मे, जिसने युद्ध-स्थल मे जाने कितने शत्रुओं की बलि दी, रक्त के जाने कितने धब्बे उसके शरीर और मन पर दखने को मिले? वही कैप्टेन जिन्होंने अपने जीवन म एक दबग इसान की तरह अपने देश, अपनी जाति के लिए इतना कुछ किया और उनका चट्टान दिल जरा सा भी टस मस न हुआ, आज एक बच्चे क रुदन स, उनका भी दिल रो उठा!

भीड का रेला चीरत हुए वह—अपनी निर्जीव मा के पास बठ 'मा-मा' चिल्लाते उस बच्चे के पास आए और झुककर उसे अपनी गोद म उठा लिया। फिर सामन खडे कुछ स्वय-सेवकों को हाथ से इशारा किया, उस मृत काया को वहा से हटा लेने का। उनका इशारा मिलत ही निमिषमात्र मे वह लाश शिविर के पिछले हिस्से मे पहुचा दी गई।

बालक अभी भी चीख चीखकर 'मा मा' की रट लगाए हुए था। एक लडकी, एक लडका दो होनहार बच्चों के पिता कैप्टेन का अतमन

भी हाहाकार कर उठा, उस बच्चे की करुणावस्था पर। पलकें आसुओं से बोझिल हो आई। अपनी भुजाओं के बंधन में कसकर बच्चे को जोर से छाती से चिपकाते हुए बोले कैप्टेन—"रो नहीं बेटे ! मैं अभी तुम्हारी मा के पास तुम्हें ले चलूगा।"

हताशा एवं अनिश्चय के सलाब में डूबते प्राणी को एक तिनके का सहारा भी काफी होता है। फिर वह तो एक अबोध बालक था। कमल से पिता तुल्य वात्सल्य और उनके वरदहस्त की स्निग्ध शीतल स्नेह छाया पाकर उसका बचपन और भी फूट पड़ा—'मा ! मा !!'

उस निरीह बालक की दारुण व्यथा से शिविर के लोगों का भी हृदय व्यथित हो उठा। चेयरमन उसे चुप कराने की चेष्टा में विकल विह्वल थे। गोद में लिए कभी प्यार के दो मीठे बोल बोलते तो कभी भांति-भांति के प्रलोभनों से उसका ध्यान किसी और दिशा में खींचने का प्रयत्न करते।

बच्चे की आखों से बहते अविरल आसू थमने का नाम नहीं ले रहे थे। उन्होंने रूमाल से उसके आसू पोंछते हुए कहा—'तुम्हें भूख लगी है, बेटे ! कुछ खाओगे ? अच्छा अच्छा अब समझा मेरा बेटा भूखा है मैं अब तक इतना भी नहीं समझ सका ! क्या खाओगे ? मिठाई ? नहीं नहीं, मेरे बेटे को दूध चाहिए ! लेकिन सिर्फ दूध ही क्या ? तब ? तब क्या, दोनों ही चाहिए !"

फिर अपना रुख शिविर में सामने की ओर करते हुए वह बोले—'अरे कोई है ? शंकर ! भाला ! जल्दी से कुछ अच्छी अच्छी मिठाइयां और दूध ले आओ ? मेरा बेटा भूखा है।

आदेश मिलते ही शिव मिठाई और दूध लेने के लिए शिविर से बाहर चला गया। कप्टेन भाला को अभिप्रेत कर कुछ कहने ही जा रहे थे कि अचानक उनका ध्यान शिविर के प्रवेश-द्वार की ओर गया। उंगली

नयन का ...
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
1 सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

से इशारा करते हुए वह बोले, "भोला, उधर देखो, वह फिरकी वाला जा रहा है। उसस दो-तीन अच्छी-अच्छी फिरकिया लाओ ? मेरा बेटा खेलेगा।"

द्वार से बाहर हो भोला ने फिरकी वाले को आवाज दी। उसके पास आने पर उसने अलग अलग रगो की दो फिरकिया खरीदी और लाकर बच्चे के हाथो मे पकडा दिया।

कागज की वह फिरकी हवा के स्पश से रह रहकर तजी स नाच उठती। सामान कोई भी हो, जब किसी बच्चे के सामने पहले पहल रख दिया जाए तो वह उन्हें अचरज एव कौतूहलपूण दृष्टि देखने लगता है। बच्चे न आज तक ऐसा खिलौना नही देखा था। वह उन्हे विस्मित—किंतु अजूबा निगाहो से देखने लगा। फिरकियो के नाच उसे मनोरम और विस्मयकारी लगे। कुछ समय के लिए उसका ध्यान बटा और रोना भूल उसका मन उलझ गया फिरकियो के नाच म। हवा के तीव्र बहाव मे जब फिरकिया के नत्य की गति तेज होती तो वह कभी-कभार कैप्टेन की ओर देखकर मुसकरा देता। जवाब मे कैप्टेन के अधरो पर भी मुस्कराहट लौटने लगती।

फिरकियो के नाच मे उलझ जाने से बच्चे का रोना धोना बद हो गया था। इसलिए कैप्टेन के अशात और उद्वेलित मन मे कुछ समय के लिए शाति आ गई थी। लेकिन यह शाति स्थाई नही थी। वे यह अच्छी तरह समझ रहे थे कि फिरकिया की ओर से, बच्चे का ध्यान कभी भी उचट सकता है। तब 'मा को याद कर वह फिर से रोना शुरू कर देगा। वह खुद अशात हो और दूसरो को भी अशात बनाए, उसस पहले ही इसका कुछ प्रबध करना जरूरी है।

चिंता के कारण उनका मन फिर बुझा-बुझा-सा हो गया। वह डूब गए गभीर सोच म—'कहा मिलेंगे इसके अभिभावक ? कहा खोजें ?

किससे पूछें ? उनके आदेश पर स्वय-सेवकों ने सारे मेले म कई बार रह रहकर डुग्गिया पिटवाई । व्यक्तिगत तौर पर भी उन्होंन भाग दौड कर पता लगाने की कोशिशें की, लेकिन सब बेकार। शिविर म लगे माइक की आवाज तो निरतर गूज रही थी । लेकिन जब कोई हो तब तो उसे लेने आए ।

इतन म दाने म मिठाई और गिलास मे दूध लिए शिव उनक पास आया । कप्टेन ने दोनो चीजें टेबिल पर रखवाते हुए बच्चे से मुसकराकर कहा—"लो, बेट ! तुम्हे भूख लगी है न ? इन्हे खा पी लो ?"

'हा, अकल ! बहुत भूख लगी है ।'

"ला, ला, ये मिठाइया खाकर, दूध पी लो ! भूख अभी रफूचक्कर हो जाएगी ।'

नही, ऐसे नही पहले हाथ साफ करा दो !"

बच्चे के मुख से हाथ सफाई की बात सुनकर कप्टेन और सभी स्वय-सेवक दग रह गए । उन्हान इस ओर विशेष ध्यान नहा दिया । डर था बच्चे के पुन रो पडने का । उन्होने रूमाल स उसका हाथ पोछते हुए कहा—'ला, साफ हा गया हाथ, अब खा पी ला ! '

बच्चे ने फिर टोका—' नही ऐसे नही, पानी से हाथ धुलाओ !'

चार साल के बच्चे म सस्कारजनित इस लक्षण स सभी लोग विस्मय-विभोर हा उसकी ओर देखन लग। एक स्वय-सेवक लोटे का पानी उसके पास लाया । कप्टेन ने अपना रूमाल गीला कर उसके हाथ मुह साफ किए और फिर गोद म बिठाकर उन्होने प्यार से उसे मिठाई खिलाकर, दूध पिलाया ।

क्षुधा शात होन पर बच्चे क मन को कुछ सतुष्टि मिली । वह फिर स उलझ गया फिरकियो की नाच म। उनका नाचना देखकर उसने जिज्ञासा क स्वर म पूछा—'अकल ये नाचती क्या हैं ?"

कप्तेन का मन डूब उतरा रहा था चिंताओ के सागर मे। बच्चे की आवाज पर वह चौंके। उनका ध्यान उसकी ओर गया। रुंधे कंठ से बोले—"हवा से बेटे! जब हवा चलती है और उसका स्पर्श इस फिरकी से होता है तो यह नाचने लगती है।"

"तो क्या, हवा के छूने से इन फिरकियो के समान हम भी नाच सकते हैं?"

"अब तो नाचना ही ह ागा, बेटा!" बोलकर उ होन दीघ नि श्वास लिया।

बालक न आगे कुछ न कहा। उसका मन अभी भी फिरकी मे उलझा था। कप्टन गभीर मुद्रा म सोच रहे थे, उसके भविष्य के बार म—उसे किसके सुपुर्द करें? निश्चय ही इसके मा-बाप किसी शरीफ घराने के हैं, तभी तो इस प्रकार का ज मजात गुण आया इस बच्चे मे। इसके मुख स निकले बाल, इसके बोलने चालने की तरजीह और इसके आचार व्यवहार बता रहे हैं, इसके ऊचे कुल खानदान की कहानी।

इस प्रकार अभी वह विचार ही कर रहे थे कि फिरकी से खेलना छोड बच्चे ने अचानक कहा—"अंकल, हम घर कब चलेंगे?"

कैप्टेन सभले घर की याद कर बच्चा फिर न रो पडे? चौकन्ना होकर बोले—"अरे, हा, बटा! मैं भी कितना भुलक्कड हू यह काम तो मुझे कबका कर डालना चाहिए था? खैर, कोई बात नही? जब याद आए तभी सही! अच्छा, बटा! यह तो बताओ, तुम्हारा नाम क्या है?"

"पप्पू!"

"और तुम्हार पिताजी का?"

"पापा!"

वे अच्छी तरह समझ गए कि बच्चे के इस उत्तर से समस्या का

समाधान नही होगा। तो भी उसको उलझाए रखने के विचार से उन्होंने फिर पूछा—"अच्छा, बेटा। तुम्हारा घर कहा है?"

चार साल का अबोध बालक, भला क्या बतलाता वह कहा का निवासी है? पूछने पर उगलिया से कभी पूरब, तो कभी पश्चिम—कभी उत्तर तो कभी दक्षिण की ओर इशारा कर देता। कभी हाथ का सकेत करते हुए जबान से कहता—"इधर!" कभी कहता—'उधर।"

कप्टेन और समिति के सदस्यो को चिंता हुई। उन लोगो ने बच्चे के अभिभावक या अन्य सगे सबधियो की तलाश का पूरा प्रयास किया लेकिन कोई फल न निकला। बच्चा होनहार था। सूरत शक्ल, चाल-चाल और आचरण-व्यवहार से किसी भद्र कुल का जान पडता था। आखिर कमेटी के कुछ सदस्यो ने उनको सलाह दी—"इसे किसी अनाथालय में भिजवा दिया जाए।

कप्टेन के अतरमन म द्वद्व होने लगा। इस तरह की कोई समस्या जब सामने आती है तो व्यवस्था के नाम पर बगलें झाकने लगते हैं या अनाथालय आदि का हवाला देकर अपनी जिम्मेदारी का बोझ किसी और पर डाल देने की कोशिश करते हैं। कहने को तो यहा सभी भद्र हैं करीब करीब सभी के घर म औलाद हैं तो भी जाने क्या इस होनहार बच्चे को अनाथालय भिजवाने का नाम ले रहे हैं? क्या इन लोगो को आजकल के अनाथालयो के बारे म कुछ भी पता नही है? अनाथालयो मे बच्चे भेजे जाते हैं—पढ लिखकर कुछ हुनर सीखकर किसी काम के लायक बनने को? लेकिन आज वहा बनते क्या हैं—यह किसी से छिपा नही है। कुछ अनाथालयो म उनके कर्णधारो का पेशा-सा बन गया है—बच्चो को अधा, लूला-लगडा बनाकर उनसे भीख मगवाना। या इसी तरह के अन्य किसी पेशे म लगाकर, उन्हें रुपये कमाने की मशीन बना लेना। इन आश्रय-स्थलो म उन्हें पेट भर खाना भी तो

घरघान (कविता सग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

नही मिलता है। यह सब कुछ चलता है व्यवस्था के नाम पर।

समाज के भद्र कहे जाने वाले ये लोग क्या यह चाहते है कि इस अबोध बच्चे को अनाथालय भेजकर जीवन भर लूला लगडा और अधा बनाकर इसके लिए भी भीख मागने का द्वार खोल दिया जाए? आज यदि यह इनका खुद का बच्चा होता, तो क्या ये लोग इसी तरह की बातें करते?

वाह! वाह!! क्या कहने? ऐसे किसी बच्चे का पालन-पोषण करने म ये जाति भ्रष्ट हो जात हैं, इनका धम नष्ट हो जाता है। घोर पाप के भागीदार होते हैं—और उसे अनाथालय भिजवाकर, भीख की रोटी खिलाने से इन्हे पुण्य मिलता है।

उन्होने निश्चय किया—बालक का भविष्य नष्ट होने से बचाने का। उन्होंने इसकी सूचना तुरत पुलिस-स्टेशन भिजवा दी। इस्पेक्टर के आने पर उन्होने बच्चे को इस शत पर अपने पास रख लिया कि भविष्य म इस बच्चे के किसी अभिभावक या सगे सबधी के आने पर, वे बच्चे को उन्हें सौंप देंगे, अन्यथा अपने पुत्र के समान इसका पालन पोषण करेंगे।

दो

कप्टेन विभूति नारायण को एक अनजान बच्चे के साथ घर में प्रवेश करते देख विशाखा को भला न लगा। महंगाई के इस दौर में उसकी अपनी ही संतानों की ही देखभाल दूभर हो रही है फिर एक और की परवरिश की बात वह सोचती भी कैसे? उसके लिए आय का स्रोत भी तो चाहिए।

विशाखा की ममता पति की गोद में बैठे बच्चे के रूप रंग, और नाक-नक्श पर मुग्ध हो गई। मन में आया कि कह दे—तुमने बड़ा अच्छा किया इसे लाकर? लेकिन फिर सोचने लगी—यदि बच्चे का उचित रीति से पालन-पोषण न हो सका तो यह अबोध आत्मा कलपेगी, सिसकियां लेगी, हम कोसेगी श्राप देगी—फिर इस पाप का भागीदार कौन बनेगा? ईश्वर इस पाप के लिए उसे कभी क्षमा न करेगा? इसलिए अच्छा होगा कि आरंभ में ही इस भले-बुरे और पाप पुण्य के बंधन से मुक्ति पा ले।

उसने रूक्ष स्वर में कहा—"यह किस गले की घंटी उठा लाए? घर में खुद के बच्चों की ठीक से देखभाल तो हो नहीं पा रही है, फिर इसकी सार-संभाल कौन करेगा?

'बच्चे भगवान के रूप होते हैं विशाखा! किसी गले की घंटी नहीं? इनकी सार संभाल से बड़ा पुण्य-लाभ मिलता है। पूर्वजन्म के जाने किस पाप-कर्म, दोष के कारण आज इस यह दिन देखने को मिला।"

प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
पता सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

कहते हुए उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास छोडी और बच्चे को जोर से भींच-कर अपनी छाती से लिपटा लिया ।

विशाखा झल्लाकर बोली—"तो फिर सभालो अपने भगवान को और लूटो पुण्य लाभ ! मैं तो बाज आई ऐसे पाप पुण्य से ?" बच्चे की निर्दोष आखो की दृष्टि को वह सह न पाई। इतना बोलकर वह घर के भीतर चली गई। उसका ख्याल था कि उसकी इस कटुक्ति से कैप्टेन साहब उस बच्चे को जहा से लाए हैं, वही रख आएगे। लेकिन उसका सोचा किया, धरा का धरा ही रह गया। बच्चे को गोद मे लिए, भरी-भरी आखो से आगन मे आकर उनके चारपाई पर बैठते देखकर उस बच्चे के प्रति उसकी भी ममता उमड आई। इसी समय गोद से उतरते हुए बच्चे ने पूछा—"अकल, अम्मा कहा है ? हम कब चलेंगे वहा ?"

'सवेरे चलेंगे, बेटा ! सवेरे। इस समय रात हो रही है। आज हम यही रहेंगे।' कैप्टन ने आसू पोछते हुए बच्चे को सात्वना दी।

उनकी आखो मे आसू देख बाल सुलभ कोमल कठ फट पडा—"आप रोते क्यो है, अकल ?"

"रो नही रहा हू, बेटा ! सोचता हू, क्या तुम मेरे साथ रह सकोगे ?"

बच्चे ने एक नजर विशाखा पर डाली। फिर सहम स्वर म बोला—"रहता तो अकल, लेकिन यह तो मुझसे नाराज है। मेरी मा तो कभी नाराज नही होती थी ।" आगे का वाक्य उसने अधूरा ही छोड दिया।

दूर खडी विशाखा उसके मीठे-मीठे बोल मे खोती जा रही थी। कैप्टन साहब ने कहा—"नाराज न हो, विशु ! आज रात भर तो इसे सभाल लो। कल सवेरा होते ही शहर जाकर किसी अनाथालय मे इसे छोड आएगे।"

इस कथन के साथ साथ उनके मुख से आह भरी एक दीर्घ उसास

दो

कप्टन विभूति नारायण का एक अनजान बच्चे के साथ घर में प्रवेश करते देख विशाखा को भला न लगा। महंगाई के इस दौर में उसकी अपनी ही संतानों की ही देखभाल दूभर हो रही है, फिर एक और की परवरिश की बात वह सोचती भी कैसे ? उसके लिए आय का स्रोत भी तो चाहिए !

विशाखा की ममता पति की गोद में बैठे बच्चे के रूप रंग, और नाक-नक्श पर मुग्ध हो गई। मन में आया कि कह दे—तुमने बड़ा अच्छा किया इसे लाकर ? लेकिन फिर सोचने लगी—यदि बच्चे का उचित रीति से पालन-पोषण न हो सका तो यह अबोध आत्मा कलपेगी, सिसकियां लेगी, हमें कोसेगी, श्राप देगी—फिर ऐसे पाप का भागीदार कौन बनेगा ? ईश्वर इस पाप के लिए उसे कभी क्षमा न करेगा ? इसलिए अच्छा होगा कि आरंभ में ही इस भले-बुरे और पाप-पुण्य के बंधन से मुक्ति पा ले।

उसने रुक्ष स्वर में कहा—' यह किस गले की घंटी उठा लाए ? घर में खुद के बच्चों की ठीक से देखभाल तो हो नहीं पा रही है फिर इसकी सार-संभाल कौन करेगा ? '

"बच्चे भगवान के रूप होते हैं विशाखा ! किसी गले की घंटी नहीं ? इनकी सार संभाल से बड़ा पुण्य-लाभ मिलता है। पूर्वजन्म के जाने किस पाप कर्म, दोष के कारण आज इसे यह दिन देखने को मिला।"

प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

कहते हुए उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी और बच्चे को जोर से भींच-कर अपनी छाती से लिपटा लिया।

विशाखा झल्लाकर बोली—"तो फिर संभालो अपने भगवान को और लूटो पुण्य-लाभ! मैं तो बाज आई ऐसे पाप-पुण्य से?" बच्चे की निर्दोष आंखों की दृष्टि को वह सह न पाई। इतना बोलकर वह घर के भीतर चली गई। उसका ख्याल था कि उसकी इस कटूक्ति से कैप्टेन साहब इस बच्चे को जहां से लाए हैं, वहीं रख आएंगे। लेकिन उसका सोचा किया, धरा का धरा ही रह गया। बच्चे को गोद में लिए, भरी-भरी आंखों से आंगन में आकर उन्होंने चारपाई पर बैठकर देखकर उस बच्चे के प्रति उनकी भी ममता उमड़ आई। इसी समय गोद से उतरते हुए बच्चे ने पूछा—"अंकल, अम्मा कहां हैं? हम कब चलेंगे वहां?"

"सवेरे चलेंगे, बेटा! सवेरे। इस समय रात हो रही है। आज हम यहां रहेंगे।" कैप्टेन ने आंसू पोंछते हुए बच्चे को सांत्वना दी।

उनकी आंखों में आंसू देख बाल-सुलभ कोमल कंठ फूट पड़ा—"आप रोते क्यों हैं, अंकल?"

"रो नहीं रहा हूं, बेटा! सोचता हूं, क्या तुम मेरे साथ रह सकोगे?"

बच्चे ने एक नजर विशाखा पर डाली। फिर सहमे स्वर में बोला—"रहता तो अंकल, लेकिन यह तो मुझसे नाराज हैं। मेरी मां तो कभी नाराज नहीं होती थी।" आगे का वाक्य उसने अधूरा ही छोड़ दिया।

दूर खड़ी विशाखा उसके मीठे-मीठे बोल में खोती जा रही थी। कैप्टेन साहब ने कहा—"नाराज न हो, विशु! आज रात भर तो इसे संभाल लो। कल सवेरा होते ही शहर जाकर किसी अनाथालय में इसे छोड़ आएंगे।"

इस वचन के साथ-साथ उनके मुख से आह भरी एक दीर्घ उसास

निकली। वाक्ति वह मंद मंद स्वर में अपने आपसे बोले— ऐसा क्या क्या? और हो गया क्या? शायद ईश्वर की यही इच्छा थी! जन्म लेने के बाद, जाने ऐसे कितने ही होनहार प्रसून, खिलने से पहले इसी तरह मुरझा जाते हैं। और '

उनके वाक्य पूरे न होने पाए। दूर खड़ी विशाखा पति के मुख से उस होनहार सस्कारी बच्चे को अनाथालय भेजने की बात सुनकर भीतर ही भीतर तड़प उठी। आखिर थी तो एक नारी! उसके भीतर की ममता, वात्सल्य फुफकार उठा। फिर वही पति की इस बात पर— "खबरदार, अनाथालय का नाम लिया तो? जो इस घर म बेटा बनकर आया वह भीख की रोटियों पर पलने अनाथालय नहीं जाएगा!' और झपटकर उस बच्चे को अपनी गोद म लेती हुई फिर बोली—' मैं हू तुम्हारी मा, बेटा! अब कभी नहा नाराज होऊगी। तुम मेरे पास रहोगे! रहोगे न?"

चार-पाच साल का बच्चा कितना भी चालाक, कितना भी निपुण क्यों न हो—औपचारिकता अनौपचारिकता का भेद प्रभेद कभी नहीं समझेगा। अब तक तो वह उसे ही मा के रूप म जानता पहचानता था, जिसकी कोख से जन्म लिया, जिसकी ममता, जिसके वात्सल्य एव जिसके आचल की मधुर स्निग्ध छाया म अब तक पलता-ढलता आया है। उसकी आखो के आगे अब तक वही एक मा थी—जानी पहचानी, मा की वही एक तसवीर थी। इसीलिए जब विशाखा ने उससे यह कहा कि "मैं तुम्हारी मा हू तो वह आश्चर्य और विस्मय से उसका मुख निहारने लगा। जिज्ञासा शात करने के लिए उसने पूछा भी—"आप मेरी मां हैं?'

बच्चे के मुख स निकले शब्दों म कौतूहल और जिज्ञासा तो थी ही— करुणा प्रार्थना और याचनापूर्ण दया के भाव भी भरे थे।

अरघान (कविता सग्रह 1984)

पता सी 50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003
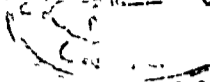
कनल दपती की पारिवारिक गाडी का पहिया अपनी लीक पर पूववत ही चलता रहा। उसम किसी तरह का कोई उल्लखनीय परिवर्तन नही हुआ। इस घटना को धीरे धीरे बारह साल बीत गए। सुनील भी अब सोलह साल का भरा पूरा युवा हो चला था। नाक-नक्श स सुन्दर चेहरा एव सुगठित बदन, उसक प्रभावशाली व्यक्तित्व म निखार ला रहे थे। उसे देखकर यह कहना मुश्किल था कि एक दिन इसी सुनील को कप्तेन न लावारिस पाया था और घर लाकर अपन बेटे की तरह पालन-पोषण किया था। बहुतो को तो अब इसकी स्मृति भी नही रह गई थी। वह अब उनके सबस छोट पुत्र क रूप म जाना जाता था।

गाव की पाठशाला स उच्चतर माध्यमिक परीक्षा उत्तीर्ण होन क बाद कैप्टेन ने उसे ऊची शिक्षा दिलाने के लिए इलाहाबाद विश्व विद्यालय म दाखिला दिलवा दिया। वह उनक जीवन म पूरी तरह घुल-मिल गया था। जान पडता था कि उनका वह सगा बेटा है। कप्तन और विशाखा ने भी उस कभी आभास नही होने दिया कि वह गर है।

वह ज्यो ज्यो बडा होता गया और रहन-सहन एव शिक्षा का स्तर बढता गया—वस-वस कप्तेन पर खर्च का भारी बोझ पडने लगा। कप्तन ने तो नही, लेकिन विशाखा कभी-कभार इस बार म चिंतित हो जाती। लेकिन यह चिंता उसने किसी पर प्रकट होन नहीं दी, जिसस कि सुनील को आघात पहुचता। उसने खाने-खलने, पहनने-ओढ़ने की उसे भी उतनी ही छूट दे रखी थी, जितनी अपनी दोनो सतानो को। इस बात से वह हमेशा सावधान रही कि सुनील कभी यह न सोचे कि वे उसक अपने मा-बाप नही हैं और उसके बच्च अपन 'भाई-बहन' नही ? यदा-कदा पडोसियो के बीच जब कभी वह बठती उठती तो सुनील की तीक्ष्ण बुद्धि की प्रशसा भी वह बराबर करती रहती। सुनील और अनिल की उच्च शिक्षा के सारे खच का बदोबस्त वही करती थी। यद्यपि अनिल

भी सुनील का सहपाठी था, लेकिन सुनील की अपेक्षा उसका सब कुछ अधिक ही था। उसने इसके लिए कई बार अनिल को टोका भी, लेकिन पढ़ाई सब का कोई-न-कोई बहाना बनाकर अनिल विनायक को चुप करा देता। सुनील इस बात को जानता था कि अनिल गलत साहबत म पड गया है। वह अपने मनचले सहपाठियों के बीच बैठकर जुआ खेलने, शराब पीने तथा बदनाम गली के कोठों के दरवाजे भी भांकने लगा है लेकिन इसकी चर्चा सुनील ने माता पिता से कभी नहीं की। मौका-बमौका जब कभी भी अवसर मिलता, वह अनिल को समझाने का प्रयत्न किया करता। लेकिन उसके समझाने का सुनील पर कोई प्रभाव न पड़ा। वह अपनी रौ मे बहता ही चला गया। जब सुनील ने देखा कि अनिल का भविष्य अब खतरे मे पड जाएगा तो उसने अनिल का अधिकारपूर्वक उस रास्ते से अलग करने का प्रयत्न किया। लेकिन अनिल अब जवान हो चुका था। अपना भला-बुरा सोचने की समझ उसमे आ गई थी। या, वह ऐसा ही समझता था। अब यदि कोई भी उसे कुछ कहता तो वह उसकी बात को अपने स्वाभिमान पर चोट समझता। उस दिन जब सुनील ने उसे चेताया कि यदि उसने गदी साहबत का त्याग नहीं किया तो वह सारी बातें सच-सच माताजी व पिताजी को लिख भेजेगा। अनिल का सर्वांग क्रोध से जल उठा। वह सुनील के प्रति अपनी वास्तविक भावना को छुपा न सका। उसने सुनील को वह बात कह दी जो कैप्टेन और विशाखा किसी दिन जबान पर भी न लाए थे।

अनिल ने रूखे स्वर मे जवाब दिया—"तुम होते कौन हो मेरे बारे में मेरे माता पिता के पास लिखने वाले। मेरे ही टुकडो पर पलकर मेरे ऊपर शासन रोब गांठना चाहते हो? तुमने पिताजी से किसी दिन पूछा नहीं कि तुम्हारे मा-बाप कौन हैं? तुम कहा के रहने वाले हो? एहसान मानो मेरे मा-बाप का कि उन्होंने तुम्हें दर-दर की ठोकरें खाने से बचा

लिया और आज पढ लिखकर जब उनके एहसानों के प्रति अपना फर्ज निभाने के योग्य हुए तो तुम्ह् सींग निकल आए। यह भी गूर रहा—जिस थाली में खाओ, उसी में छेद करो ? मेरा ही नमक खाकर मुझी को आँखें दिखाओ ? शर्म आनी चाहिए तुम्हें इस जलील हरकत पर !"

इतना विषवमन कर अनिल अपने कमरे में चला गया। लेकिन ये बातें ऐसी न थी, जो आसानी से भुला दी जाती। सुनील के स्थान पर जो भी होता, इन्हें सुनकर वही वेदना—वही क्षोभ उसे भी होता, जो उस दिन सुनील को हुआ। अनिल के शब्दों ने उसका हृदय चीरकर रख दिया था।

चिन्ताकुल वह विचार करने लगा—"क्या सचमुच कैप्टन और विमाला उसके माँ-बाप नहीं हैं ? क्या सचमुच वह अनाथ है और कैप्टेन को रास्ते में लावारिस पड़ा मिला ?—यदि यह सच है तो फिर कप्टेन ने अब तक यह बात क्यों छिपाई ? पूछूँगा—जरूर पूछूँगा उनसे ?"

वह घंटों इन्हीं विचारों में डूबता उतराता रहा। किसी काम में मन नहीं लगा। बी० ए० फाइनल के पंद्रह दिन शेष रह गए थे। वह अब किसी कीमत पर एक पल भी नष्ट नहीं करना चाहता था। लेकिन उस दिन कालेज का समय हो जाने पर भी वह अनमना-सा बैठा रहा। बगल के कमरे से उसका सहपाठी वसंत कालेज जाने के लिए जब बाहर आया तो उसे देखकर आश्चर्य हुआ कि सुनील जिसने कालेज पहुँचने में कभी दस मिनट की भी देर न की आज इस तरह गुमसुम बैठा है ?

वसंत उसका सिर्फ सहपाठी ही नहीं, समय आने पर सगा मित्र भी था जो अपना सर्वस्व न्योछावर करने को प्रस्तुत रहता था। उसने पास जाकर उससे पूछा भी, लेकिन तबीयत खराब होने का बहाना बनाकर सुनील असली बात छिपा गया। उसकी बात पर विश्वास कर वसंत ने आगे कोई चर्चा न की और कालेज चला गया। अनिल ने जिस प्रकार से बातें

प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)

पता सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

गाव जाकर इस बारे मे निराकरण कर आश्वस्त हो लेना चाहिए—सुनील अभी यह सोच ही रहा था कि तभी डाकिए ने दरवाजे पर आकर आवाज दी—"तार ।'

उठकर वह कमरे से आया। हस्ताक्षर कर "तार" हाथ मे लेकर खोला —' पिता खतरे म—जल्दी आओ।"

"ऐसी क्या बात हो गई ?' वह सोचने लगा—"दो दिन पहले ही तो वे शहर आए थे और उससे मिलकर गाव वापस हुए थे। उन्होंने तो ऐसा कुछ नहीं बतलाया था। शरीर से भी अच्छे भले थे। तब ? तो क्या यह जानकर भी कि वे उसके पिता नहीं हैं—गाव जाना चाहिए ?"

आत्मा ने धिक्कारा—"छि-छि, कैसी बातें सोचता है ? व जन्म देने वाले पिता न सही—लेकिन तुमे पाल पोसकर उन्होंने जवान किया इस काबिल बनाया कि तू अपने पावो पर खडा हो सके। आखिर जन्म देने वाला पिता भी तो यही करता ? फिर कैप्टेन साहब के पिता न होने म क्या कमी है ? "

"तो फिर जा, अभी चला जा। देर करने से तेरा ही नुकसान है।" अपने अन्तर्द्वन्द्व मे उभरकर वह जाने की तैयारी करने लगा।

बिस्तर बाध जाने बाद उसने सोचा—जाने से पहले पिताजी के खतरे मे होने की सूचना वह अनिल को भी दे दे। और वह चल पडा उसके कमरे की ओर।

वहा पहुचने पर उसने दरवाजे पर ताला लटकते पाया। ठगा-सा वहीं का वहीं खडा रहा। अनिल इस समय अपने कमरे म नहीं है तो फिर कहा होगा, यह वह जानता था! लेकिन, क्या उसे वहा जाना चाहिए ? भद्र लोगो के बीच रहने की इन्हें इजाजत किसने दी ? जवाहर स्क्वायर—! किसी दिन इस मुहल्ले मे जन्म लिया था देश के एक महान मनीषी—महान राजनेता ने ? वह मनीषी, वह राजनेता—वह

शांतिदूत अब वहां नहीं है लेकिन उसके चरणों से वह धरती पावन हो चुकी है और पावन हो चुके हैं उसके पास-पड़ोस के लोग ! उसी परम पावनी भूमि की यह विद्रूप तसवीर—यह नरक लीला ? और उस नरक-लीला का अभिनेता है उस कप्टेन का बेटा जिसने देश जाति की मर्यादा के लिए अपना सर्वस्व होम कर दिया ! क्या जवाब दूंगा उन्हें जब वे पूछेंगे कहां है उनका बेटा ? तब क्या यह कहना भला होगा कि वह एक तवायफ के आंचल की छाया में मदहोश पड़ा है। सुनकर, क्या बीतेगी कप्टेन पर यह जानकर भी क्या वह जिन्दा रहेगा ? जो भी हो यदि उन्होंने पूछा तो जवाब तो देना ही होगा !

सोचते-सोचते वह कब पहुंच गया जछनबाई की महफिल में उसे पता ही न चला। जछन बाई मशहूर तवायफ थी इलाहाबाद की। अब वह बूढ़ी जरूर हो चली थी लेकिन उसके नाज व नखरे आज भी गजब के थे। खुदा ताला ने उसे रचते समय जो अमृत का घुट्टी पिलाई उससे जछन के कंठ का सुरीलापन, चेहरे की चमक-दमक एवं अधरों की लालिमा में आज भी कोई फरक न आने पाया था ! जिस महफिल में जछन हो स्वर माधुर्य तथा रूप-यौवन की अपूर्व धनी रूपजीवाएं भी ठहरने का नाम न लेती—जछन का नाम सुनते ही वे यह कहते हुए कन्नी काट जाती—"भला अपनी फजीहत कौन कराए ?"

जछन तवायफ सही—लेकिन शर्म-हया उसके आंचल की खूंट में अभी तक बंधा था। यह सच है—उससे जब कभी पूछा—'आखिर वह कौन सी मजबूरी थी, जो वह इस नरक में खिंचती चली आई'—जवाब में वह सिर्फ इतना ही जानती है—"जब से होश संभाला, खुद को इस नरक में पाया !"

लेकिन अपनी बेटी शबनम को उसने इस नरक से दूर ही रखा। एक भद्रकुल की औलाद के समान उसे पाला-पोसा और आज ऊंची-से ऊंची

प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

तालीम दिलाने पर आमादा थी।

शबनम सुनील के साथ ही बी० ए० फाइनल म थी। वह सुनील की रहन-सहन, उसके जेहन और ज्ञानाजन क तौर-तरीके से बहुत प्रभावित थी, इसीलिए उसका सम्मान करती थी। खुली खिड़की से शबनम ने सुनील को अपने घर आते हुए देख लिया था।

वृद्धावस्था सुख चैन म बिताने के लिए जछन जान यहां स, जवानी के मद स नवाबजद, रूप-यौवन और नाज-नखरा की तीखी एव बुलबुल ले आई थी। शब्बो के घुघरुओ की झनकार पर लक्ष्मी निहाल थी—पावो के ठुमकते ताल पर नगर के प्राय सभी लक्ष्मी-पुत्र न्योछावर थे। किसी से मिलना हो और वह कही न मिले तो चले आओ जछन के कोठे पर, जन्नत की महफिल मे। इसी शब्बो के जाल मे फसा था अनिल!

सीढ़िया पार कर सुनील जसे ही कोठे पर महफिल-द्वार के सामने पहुचा, सुनाई पडा—"सुनील बाबू आप? और यहा?"

'हा, एक जरूरी काम से आया हू। लेकिन तुम यहा कैसे ?"
सुनील ने कहा।

"यही तो रोना है सुनील बाबू! पिछले जन्म मे जरूर मेरे कम खोटे थे कि एक तवायफ की कोख से जन्म लेना पडा। और इसीलिए आप मुझे यहा देख रहे हैं। लेकिन सबसे बडा अचभा तो यह है और कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि कभी इस गली मे होकर आपको भी गुजरना पडेगा ?"

"हा, शबनम! तुम्हारी ही तरह मेरे कम भी कुछ खोटे थे, जो आज इस गली तक आने को मजबूर हुआ!"

"क्या बात है, मुझे बतलाइए, मैं पूरी तरह मदद करूगी आपकी!"

"अनिल को तो जानती ही हो!

"कौन अनिल? जो हमारे 'क्लासफेलो' हैं ?"

'हां, वही ! आजकल शब्बो पर दीवाना है। वह यहां आया हुआ है। उससे मेरा मिलना बहुत जरूरी है।

'आप जाएंगे महफिल में—नावदान में कीड़ा के यार ? आप अनिल से मिलने आए हैं, लेकिन उसके हालात से आप वाकिफ नहीं हैं।'

मुझे सब पता है, शबनम ! लेकिन, काम ही ऐसा आ पड़ा कि यहां तक आना पड़ा। अच्छा तुम ठहरो मैं उससे मिलकर अभी आया।'

शबनम आकर सुनील के सामने खड़ी होती हुई बोली— 'नहीं, आप वहां नहीं जाएंगे।

सुनील हक्का बक्का शबनम का मुख निहारने लगा। शबनम आगे बोली—' आप अनिल से मिलने आए हैं न ? तो मेरे साथ आइए, मैं मिला देती हूं।

और सुनील को साथ लेकर वह अपने कमरे की ओर चली गई। उस कमरे में भीतर से एक दरवाजा और था जो शब्बो की महफिल की ओर खुलता था। शबनम ने उस दरवाजे को खोला और उस पर पड़े परदे को जरा-सा खिसकाती हुई बोली—"वह देखिए, वह रहा अनिल।"

परदे की आड़ से ही सुनील ने देखा—"शराब के नशे में मद-होश अनिल शब्बो के अंक में लेटा है। वह इस दृश्य को बरदाश्त न कर सका और चाहा कि आगे बढ़कर वह वहां तक जाए और अनिल को उठाकर महफिल से बाहर ले जाए। लेकिन शबनम ने उसे पीछे की ओर ठेलते हुए उस दरवाजे को बन्द कर दिया।

उसे दरवाजा जबरदस्ती बंद करते देख सुनील बोला—"शबनम, तुम्हें नहीं मालूम कि इस समय मेरे मन पर क्या बीत रही है ?

'आप पर क्या बीत रही है सचमुच मुझे नहीं मालूम ? लेकिन इतना जानती हूं, यदि आप महफिल में गए और किसी ने देख लिया तो

अरधान (कविता संग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

मुख की बदनामी सिर पर आ जाएगी। किसी की बदनामी लोगों की पूरी आस भी नहीं बुझती है लेकिन बदनामी का हऊआ बनाते उन्हें डर नहीं लगता? अनिल को क्या सन्देश देना है? चाहें तो मुझसे कह जाएं, मैं उसे आगाह कर दूंगी, या नहीं तो किसी कागज पर लिख जाएं! इस बदनाम गली से जितनी जल्दी आप बाहर हो जाएं उतना ही अच्छा है।'

सुनील एकटक शबनम का मुख निहारता रहा। उसके चुप हो जाने पर उसने अनिल के लिए संदेश छोड़ा और तेजी से शबनम के कमरे से बाहर हो गया। उसके चले जाने पर शबनम की आंखों से दो मोती ढलके और भूमि पर गिरकर धूल में मिल गए। शबनम के बारे में अब तक कोई नहीं जानता था कि वह किसकी पुत्री है। वह सादी वेशभूषा में कॉलिज जाती और चुपचाप सिर झुकाकर वापस आती थी। उसे पढ़ाई के सिवा और कुछ नहीं सूझता था। यही वजह थी कि चेहरा मोहरा आकर्षक होते हुए भी वह अब तक किसी की दृष्टि में नहीं आई थी। अपने कलंकित वंश को छिपाने के लिए हर पल सजग-सतर्क शबनम किसी से खुलकर बात भी नहीं कर पाती थी। उसकी कोई सखी नहीं थी जिससे वह बातें करती।

सुनील कक्षा के सब लड़कों में उसे अलग लगता था। एकाकी जीवन की अभ्यस्त शबनम हर सहपाठी का अध्ययन कर लेती थी। सुनील का धीर-गंभीर रूप धीरे धीरे उसके मन पर छा गया था। अंतर्मुखी शबनम किससे कहती अपने हृदय की बात। सुनील उसकी भावनाओं से बिल्कुल अनभिज्ञ था। वह चाहती भी नहीं थी कि उसके भाव प्रकट हों। उसे पता था कि सुनील के लिए और कुछ सोचना या आशा करना बौने के लिए चांद को छूने के समान था।

सुनील को अपने घर के द्वार पर खड़ा देख वह पहले तो ... सी खड़ी रह गई। फिर बड़ी कठिनाई से अपनी भावनाओं ...

दवाकर महज हुई। अब उसे यह चिन्ता थी कि कहीं उसकी कलंकित कथा बलि सब न जान जाए। हृदय में छिपे एक विश्वास ने उसे आश्वस्त किया कि सुनील एसा नहीं करेगा। फिर भी मन आशंकित रह गया।

सुनील अकेला ही गाव के लिए रवाना हुआ। उसको चिन्ता म छाए हुए थे—तार, कप्तेन और विशाखा। विशाखा का भय उसे बराबर बना रहता था। आज वह जो कुछ था, उसके मूल में विशाखा ही थी। विशाखा के कारण ही वह अपना अध्ययन चिंतन शांत-सुस्थिर चित्त लगन से पूरा कर रहा था।

रास्ते भर उसका मन उडा उडा सा एवं बेचैन रहा। जिस समय वह गाव पहुचा और उसकी गलियां से गुजरता घर की ओर बढ़ा, हर तरफ मातम सा नजर आया। गली-कूचे के कुत्ते दिन में ही इस कदर रो रहे थे, मानो वे मर्सिया पढ़ रहे हो। न जाने आज क्यों उसका भी हृदय दहशत और आतंक म दहल उठा—मन भर उठा भावी अघात आशंका से।

इसी उधेड़-बुन में वह दरवाजे पर पहुचा। वहा का दृश्य देखकर वह अवाक और स्तंभित रह गया। हवेली के बरामदे म एक खाट पर कप्तेन लेटे हुए थे। पास में एक डाक्टर और एक नर्स उनकी निगरानी पर तैनात थे। गाव के आबाल वृद्ध वनिता सभी का भारी मजमा एकत्र था। लोगों के चेहरों पर हवाइयां उड़ रही थीं आंसुओं में सबकी पलकें बोझिल थीं और कंठ रुधे हुए थे।

वह अपने को अब और न रोक सका और दौड़ता हुआ खाट के करीब जाकर पिताजी कहकर अपना सिर उनके पावों में टेक दिया। चरण स्पर्श होते ही कप्तेन को कुछ आभास हुआ। धीरे धीरे उन्होंने अपनी बंद पलकें खोलीं। सिर कुछ ऊंचा कर उन्होंने आने वाले की सूरत देखी

चाही, लेकिन बेहद करीने के कारण सफल न हो सके। फिर धीमी सिसकी के स्वर में उन्होंने यह कहा—फिर हाथ से संकेत करते हुए धीमी आवाज में बोले—"सनी बेटा, इधर मेरे पास आओ ?"

आवाज एक तो साफ नहीं थी, और फिर अटक अटककर निकल रही थी। सुनील सुबकते हुए उनके पास गया। उंगलियों से उसके आंसू पोंछते हुए कैप्टन बोले— बेटा, सनी, मैं तुम्हारा ही इंतजार कर रहा था। मेरा अंतिम समय कभी का पूरा हो चुका—लेकिन एक बोझ, जिसे मैं लगभग वर्षों से ढोता आ रहा हूं, उसे उतार देने के लिए अब तक रुका पड़ा हूं। ये की यह बात मुझे बहुत पहले बतला देनी चाहिए थी, लेकिन तुम्हारी उम्र तुम्हारी बुद्धि इतनी परिपक्व नहीं हो पाई थी कि मैं पहले कुछ कहता ! लेकिन अब तुम सयाने हो चुके हो। अपना भला-बुरा, लोक-धर्म के रीति रिवाज, रहन-सहन और आचरण-व्यवहार आदि को समझने और उसके अनुसार चलने की क्षमता तुम में पूरी अच्छी तरह आ गई है मुझे अंतिम समय में सुख शांति से विदा करना बेटा ! और जीवन में तुम्हारे प्रति मैंने यदि कुछ अन्याय किया हो तो उसके लिए मुझे क्षमा करना "

और इसके बाद कैप्टन ने सुनील को कमजोर स्वर में वह सारी दास्तान सुना दी कि किस प्रकार वह आज से बीस साल पहले पूर्णिमा-स्नान के अवसर पर उन्हें नासिक में चंद्रभागा के तट पर मिला था और किस प्रकार उसे गांव लाकर उन्होंने पाला पोसा और पढ़ा लिखाकर जवान किया।

जब उसे पता चला कि उसके पानी में डूबते समय मां ने सदमे से विक्षिप्त होकर दम तोड़ दिया था तो उसे अपार दुख हुआ। उसकी ममतामयी मां ने उसके लिए अपना जीवन न्योछावर कर दिया, यह जानकर उसकी आंखें भर आईं और उनमें मोती के दो बूंद ८ ११२५

वठी विशाखा के आचल म गिरे । मां की ममता भला कब चुप रह सकती है एस अवसर पर ! 'बटा', कहती उसने सुनील को समट लिया अपनी भुजाओं म और आचल म उसके आंसू पोछती हुई बोली—

रा मत बेटे ! तरी मां मरी नहीं अभी जिन्दा है तेरे सामने !'

सुनील 'मा' कहता विशाखा के कंधे पर सिर रख जार से फफक पडा।

कप्तेन ने धीमे स्वर म फिर पुकारा— 'बेटा, सुनो !'

अपन आसू पोछता सुनील ठाकुर की ओर देखने लगा। कप्तेन बोलते रहे—"धर्म-कर्म लोक परलोक और दुनिया जहान का यही कहना है— 'इसान का फर्ज है परलोक गमन करने वाले की आखिरी ख्वाहिश पूरी करना।' क्या मैं तुमस कुछ आशा करू बेटा !'

'आप ऐसा क्यों कहते हैं पिताजी ! मैंने जबसे होश सभाला तब से माता पिता के रूप म आप दोनो को ही तो पाया। आप आदेश तो करें !"

'बेटा अनिल आज जो कुछ कर रहा है वह जिस रास्ते पर चल रहा है मुझे सब कुछ का पता है ! उसस किसी तरह की अपेक्षा रखना बेकार है। एक तुम्हा हो, जिस पर मैं कुछ भरोसा कर सकता हू ।'

"आप कहें भी तो पिताजी, आपकी क्या इच्छा है ? उसे किसी भी कीमत पर पूरा करूगा ।'

'तो सुनो बेटा, मैंने अपनी पूरी जायदाद की वसीयत कर दी है। *एक भाग का मालिक अनिल एक हिस्सा तुम्हारे नाम और एक-एक भाग* रजनी और तुम्हारी मा के नाम । लेकिन रजनी और तुम्हारी मा नारी हैं और नारी को हर हालत म किसी पुरुष का सरक्षण चाहिए ! मुझे वचन दो बेटा कि मेरे बाद तुम अपनी मा और बहिन की देखभाल जीवन-पर्यन्त करते रहोगे !

घरधान (कविता संग्रह 1984)

सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

"आप निश्चित रहें, पिताजी ! आप नहीं रहेंगे तो भी भाई-बहन और मां-बेटे के रिश्ते में कोई अंतर नहीं आ पाता।"

"अब मैं निश्चित हो गया, बेटा ! मेरे प्राण अब शांति से ।" कहते-कहते कप्तान के प्राण पखेरू सबके देखते-देखते पिंजरा खाली कर गए।

तेरहवीं बीत चुकी थी। बी० ए० फाइनल के सिर्फ दो दिन ही बचे थे। विशाखा आंगन में बैठी दोपहर के भोजन के लिए चावलों के दानों से कंकड़-पत्थर बाहर निकाल रही थी। रजनी पड़ोस में किसी के घर गई हुई थी। मौका अनुकूल देखकर सुनील ने चर्चा चलाई—"मां !"

विशाखा उसकी ओर देखकर बोली—"क्या है बेटा ! कुछ कहना चाहते हो !"

"हां, मां ! फाइनल परीक्षा के सिर्फ दो दिन रह गए हैं। आप कहें तो दोपहर की गाड़ी से मैं इलाहाबाद चला जाऊं।"

"जरूर जाओ, बेटे ! बी० ए० का अंतिम साल है, सिर्फ दो दिन के लिए जिंदगी का मौका खो दो, यह सलाह मैं कैसे दे सकती हूं। तब एक बात जरूर कहूंगी, अन्यथा न समझ लेना। अब तक तुम्हारे पिताजी थे तो कोई चिंता न थी। गृहस्थी का चक्र बड़े आराम से घूम रहा था। लेकिन अब कुछ मुश्किल ही जान पड़ता है। तुम लोगों की आगे की पढ़ाई का खर्च मैं कहां से जुटाऊंगी, यह समझ में नहीं आता ? आखिर एक विधवा नारी की औकात होती ही कितनी है ? इसलिए परीक्षा के बाद कहीं किसी काम धंधे में लग जाने की कोशिश करना।"

"ऐसा ही होगा मां ! आप किसी बात की चिंता न करें !"

"और अनिल यदि मिले तो उसे पिता के परलोकगामी होने की

सूचना देना, साथ ही यह भी कह देना कि वह किसी काम धंधे की तलाश कर ले। कितना उलटा जमाना आ गया। बाप के मरणासन्न होने की खबर पाकर भी बेटा आज तक मुंह दिखाने न आया।"

"और वह शायद ही आए मां।'

"क्या? ऐसी क्या बात हो गई?"

"क्या बतलाऊं मां! आपके सामने उसके बारे में मुंह खोलते हुए भी शर्म आ रही है। और यदि कहता नहीं हूं तो बाद में आप ही मुझे दोषी करार देंगी कि समय रहते मैंने आपको इस बारे में खबर क्यों न दी?

'बोलो, बेटा! आखिर ऐसी क्या बात हो गई जो अनिल इतनी बड़ी घटना घट जाने पर भी आज तक घर न आया?'

सुनील कुछ कहने ही जा रहा था कि बीच में कूद पड़ी रजनी—'खबरदार, मेरे भाई के बारे में यदि तुमने एक शब्द भी कुछ कहा तो? वह कैसा भी है मेरा भाई है! कोई उस पर तोहमत लगाए यह मैं बर्दाश्त नहीं कर सकती?

"रजनी!" विशाखा ने उसे झिड़कते हुए कहा—'सुनील तेरा बड़ा भाई है। अब तू सयानी हो चुकी है। बड़े भाई से इस प्रकार बातें करना तुझे शोभा नहीं देती।

"तुम चुप रहो, मां! तुम्हें कुछ नहीं मालूम इसके बारे में! जिसे तुम बड़ा भाई कहती हो, वह इस खानदान के आस्तिन का सांप है?'

'रजनी आखिर बात क्या है जो सुनील के बारे में इस तरह की उलटी सीधी बके जा रही है। तेरा बाप ही नहीं—सुनील के आचरण व्यवहार से सारा गांव संतुष्ट है। गांव का हर बच्चा बच्चा इसे अपना ही बेटा मानता है।'

"मानता होगा, मां!—सारा गांव इसे अपना बेटा। लेकिन मैं

इसे अच्छी तरह समझ रही हू। यह मेरे खानदान की इज्जत मटियामेट करने पर तुला हुआ है।"

"नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता ! मैं पढ़ी लिखी न सही, लेकिन इतना जानती हू कि चाह और गरज म भ्रम हो सकता है, मेरे सुनील म नहीं !—किन्तु यह भी सच है कि कोई ऐसी बात अवश्य है, जो सुनील तुम्हें कांटो-सा खटक रहा है। " फिर सुनील की ओर देखकर विशाखा बोली—"बेटा, सुनील ! ऐसी क्या बात हो गई जो रजनी तुम्हारे बारे म इस तरह अंट-संट बक रही है।

"कुछ नहीं, मा ! इसम मेरा ही कसूर है।" सुनील ने नम्र स्वरो म कहा।

"नही, बेटा ! बात टालकर मुझे अधकार म न रखो, नही तो यह परिवार बरबाद हो जाएगा। और वह तबाही मैं कभी बरदाश्त नही कर सकती ?"

"आप बेकार ही परेशान हो रही हैं, मा ! रजनी के मन म जो आए उसे बकने दीजिए ! यदि उसने कुछ कह भी दिया तो छोटी बहन है उसकी बात का मुझे कुछ मलाल नही है।" सुनील ने हसकर जवाब दिया।

"तू मलाल करे या न करे, लेकिन यह अपनी हैसियत क्यो भूल रही है ? छोट-बड़े का अतर यह बिलकुल नही जानती ! तू बोलता क्या नही ? आखिर वह कौन-सी बात है जो यह नागिन-सी फुफकार रही है !" विशाखा का स्वर कुछ कठोर हो चला !

"जब बोलने लायक कोई बात ही नही है, तो फिर कहें भी क्या, मा ! एक अदना-सी बात को नाहक तूल दे रही हो !" सुनील ने बात को फिर टाल देने की कोशिश की।

"तू इसे अदना-सी बात कहता है ? मैं बेकार म तूल दे रही हू ?

हरगिज नहा बात जरूर कोई घाटे की है, नही ता वातावरण इतना गभीर कभी नहा होता ! और यह भी समझ रही हू कि इस बारे म तुम दोना म से कोई भी मेरे सामने कुछ कहना नही चाहता ।'

"और यह कहेगा भी नहीं, मा ! अपना—अपना होता है, मा ! और पराया—पराया ! तुमने और पिताजी न इस अनाथ समझकर क्या पाला पोसा—हम भाई-बहन दोनो के रास्ते म एक विषवृक्ष बो दिया, जो हम दोनो के जीवन मे हमेशा जहर ही घोलता मिलेगा ! और अब तो सुना है, इस घर की जायदाद म एक हिस्से का मालिक भी हो चुका है ।

यह आवाज अनिल की थी, जिसने अभी अभी घर म कदम रखते हुए कहा—'सचमुच बडा भाग्यवान है तुम्हारा यह धर्मपुत्र, जो बठे-बिठाए बिना किसी मेहनत क किये परायी दौलत का हकदार बन गया। ऐसा मौका ता सिर्फ किस्मत वाला को ही नसीब होता है।'

अनिल की यह बात विशाखा को तीर की तरह चुभी। यद्यपि वह उसका अपना बेटा था और सुनील उसका पालित पुत्र—लेकिन अनिल क चाल ढाल और उसके आचरण-व्यवहार से पति पत्नी दोनो म से किसी को तनिक भी सतोष न था। फिर पिता की मौत पर, खबर पाकर भी अनिल का न आना उसक हक में घर और समाज दोना की नजरा मे बुरा ही साबित हुआ था। इसी वजह से उसके विष-वमन पर विशाखा तुनककर बोली—'वह जायदाद का हकदार बन गया तो इसका मलाल तुझ क्या हो रहा है। यह जायदाद तेरी मिरजी हुई तो है नही ! आज जो कुछ दिखलाई दे रहा है, सब कप्तेन साहब के परिश्रम से हुआ है— और यह उनकी खुशी, अपनी जायदाद चाहे जिसे द दें ? तू कौन होता है उनके फसले म टाग अडाने वाला ?'

"ठीक कहती हो, मा ! हम कौन होते हैं टाग अडाने वाले ? कप्तेन

प्रयाण (कविता संग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

का असली बेटा तो सडक का यह भिखारी है, जिसे उन्होंने बेटा बनाकर पाला-पोसा ! फिर जायदाद का हकदार यह नहीं होगा तो और कौन होगा ?"

"यह लावारिस हो या भिखारी अतिम समय तो यही काम आया ! तू कैप्टेन का असली बेटा बनता है, अपने को इस जायदाद का असली हकदार कहता है—तो बेटा, उस समय कहा था, जब बाप की चिता मे अग्नि दनी थी, अरथी को कधे का सहारा दना था, कुल-परिपाटी के अनुसार तेरह दिना तक तीर-थाम लेकर अतिम श्राद्ध कम करना था—बेटा क्या बाप की जायदाद का ही मालिक है, बाप की अरथी उठाने का नहा ? कितनी आशा रखता है एक बाप अपने बेटे स—'बेटा जवान होगा, अतिम समय मे उसकी अरथी को कधा दगा लोक-परपरा के मुताबिक उसे पिडदान दगा, उसका श्राद्ध-कम करेगा—उसकी आत्मा को शाति मिलेगी ?' दिया आकर अरथी का कधा—किया पिडदान —पूरा किया श्राद्ध कम—मिली बाप की आत्मा को शाति ? सिफ जायदाद पर हक जतलाने के लिए आज तू बेटा बनता है ? शम नहीं आती तुझे ये सब बातें करत ?"

"बस यही तो मार खा गया, मा ! नही तो यह गाली कटी बातें सुनने को क्यो मिलती ? लकिन इसम भी मेरा कोई कसूर नही ? जब तुम्हारा सदेश मुझे मिला तो मैं तुम्हारे इस लाडले बेटे की तलाश म कहा कहा नहीं भटका ? इसी के कारण मैं मुसीबत मे फस गया। इसके गुडे दोस्तो ने मुझे न जाकर मुझे एक अज्ञात स्थान मे बद कर दिया। इसी कारण मैं मौके पर नही पहुच सका। नही तो—भला तुम्ही सोचो, मेरी मा ! अरथी उठे और मैं मौके पर हाजिर न रहू, यह कैसे हो सकता है, बाप की इस जायदाद का मालिक बनने के लिए ही तुम्हारे इस लावारिस बेटे ने मेरे साथ यह दगा किया। दो दिन हो रहे हैं बदमाशो के चगुल

से किसी तरह निकल भागने में कामयाब हुआ और भागा भागा सीधे तुम्हारे पास पहुचा हूँ।

यह एक ऐसी मनगढ़त कहानी थी, जिस पर विशाखा का यकीन कर लेना स्वाभाविक था। वह सोचने लगी—अनिल की बात किसी हद तक ठीक भी हो सकती है। सुनील में उसकी पटरी कभी नहा बैठी। हो सकता है सुनील ने जायदाद के लोभ में अनिल के मा-बाप की नजरों से गिराने के लिए इसके साथ यह भयानक छल किया हो! यह जरूरी नहीं कि ऊपर से जो व्यक्ति मधुर एव शिष्ट दिखता है, वह भीतर से भी वैसा ही हो। निश्चय ही सुनील का भीतरी मन छल प्रपच में सराबोर हो।

वह तीक्ष्ण दृष्टि से सुनील की ओर देखने लगी। गुस्से से उसकी आखो में सुर्खी उतर आई थी। अपनी ओर मा को कठोर मुद्रा से घूरते देखकर सुनील का अतर कुछ परेशान सा हो उठा। उसने अपने असतुलित मन पर काबू लाते हुए कहा—'क्या बात है, मा! आप मेरी ओर शका की दृष्टि से क्यो देख रही हैं?

"सुनील तुम थोडे से जायदाद के लोभ में इतना बडा छल करोगे, ऐसी उम्मीद न थी! कितने प्यार से कितना बडा हौसला रखकर मैंने तुम्हे अपने बेटे के समान पाला पोसा, पढ़ा लिखाकर जवान किया! मुझे क्या पता था कि तुम इतने बडे कृतघ्न निकलोगे?" विशाखा ने दात पीसते हुए कहा।

'मा जी!"

"खबरदार अब अगर मुझे मा जी कहा तो? रग-ढग और चाल-चलन पर शका तो मुझे तभी हो गई थी, जब रजनी ने तुझे खरी खरी सुनायी और तू चुप रह गया था। निस्सदेह रजनी के साथ भी तूने ऐसी ही कोई हरकत की होगी, नहीं तो बालती क्या बद हो जाती?

'अरी, मा तू नहीं जानती कि इसने मेरे साथ कैसी हरकत की है।

अरघान (कविता सग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

यदि सुन लती तो तू इसे कच्चा ही खा जाती ! कहना तो नहीं चाहती थी, लेकिन जब बात यहां तक आ पहुंची है तो बतला रही हूं—परसों शाम को जब मैं अपनी सखी के घर से लौट रही थी तो गांव के बाहर वाले बगीचे में इसने और इसके दोस्त बसंत ने अकेली पाकर मुझे पकड़ लिया था। भला हो रतन का कि जब मैंने शोर मचाया तो उसने मौके पर पहुंचकर मेरी इज्जत बचाई, नहीं तो इन दोनों ने मुझे किसी लायक नहीं छोड़ा होता ?'

सुनते ही विशाखा आपे से बाहर हो उठी। पास में धरी कुट्टी काटने का गंडासा हाथ में लेकर उसकी ओर झपटी—"कुटिल, कामी, कुत्ते, मैं तुझे जिंदा नहीं छोड़ूंगी। यदि मुझे मालूम होता कि तू इतना बड़ा अधम निकलेगा तो मैं कभी का तेरा गला घोंट देती !'

विशाखा को गंडासा उठाकर अपनी ओर झपटते देख सुनील यदि बगल में न हो गया होता तो मुमकिन था उसके हाथ खून से रंग उठते और वह कानून की गिरफ्त में पड़कर जेल की हवा खाती।

अपना वार खाली जाते देख विशाखा और अधिक बौखला उठी। उसने दूर से ही हाथ का गंडासा सुनील के ऊपर फेंका। सुनील अपनी जगह से फिर एक किनारे हो गया और गंडासा बिना किसी दुर्घटना के जमीन पर गिरा। विशाखा ने झपटकर उसे फिर से उठाना चाहा, लेकिन उससे पहले ही सुनील ने झुककर उसे अपने हाथ में ले लिया और अपनी ओर आती विशाखा को देखकर डपट लगाते स्वर में बोला—"बहुत हो चुका, मां जी ! अब आगे बढ़ने की कोशिश मत कीजिएगा। आपने अपने नालायक बेटे और बदचलन बेटी के बहकावे में आकर मेरे और अपने बीच के 'मां-बेटे' के रिश्ते का बंधन खंड खंड कर दिया। आपने मेरे ऊपर अब तक जितने एहसान किए थे, इस गंडासे के दो-दो वार कर उनका बदला चुका लिया। अब मैं मुक्त रूप कहीं भी जा सकता हूं, लेकिन बदनाम

होकर नही ? आपके बेटे और बेटी ने मुझ पर जो आरोप लगाए हैं, आज ही शाम को गाव वालो के सामने, भरी पचायत के बीच यह साबित कर दूगा कि वे कितने मिथ्या हैं। अब तक मेरी जबान जो बन्द रही है वह भी इस परिवार की इज्जत और भलाई का खयाल करके ही, जिसपर आपके कारण! लेकिन अब 'आप' और 'मैं' के बीच के सबध दूर हो चुके हैं, इसलिए सच्चाई पर से परदा उठाकर खुद को बेकसूर साबित करना मेरा फर्ज हो गया है। रही वसीयतनामे और जायदाद की बात तो उसे भी मैं अपनी पीठ पर लादकर नही ले जाऊगा। हा, इतना जरूर है कि वसीयतनामे के अनुसार इस घर की जायदाद के एक भाग का अब मैं पूरी तरह हकदार बन चुका हू। मैं कप्तेन साहब की भावनाओ को अच्छी तरह समझता था—उस स्वतत्र्य इमान की जायदाद उनका शराबी कबाबी नालायक बेटा सुरा सुदरियो मे लुटाए इससे तो अच्छा यही होगा कि अपने हिस्से की कुल जायदाद इस गाव के स्कूल को दान मे दे दी जाए। इससे कप्तेन साहब की आत्मा को भी शाति मिलेगी।

कहकर वह तुरत उस घर से बाहर हो गया।

सूरज अस्ताचलगामी हो चला था। आसमान के परदे पर उसकी झलक क्षीण मात्र रह गई थी। उन्नत गिरि शिखरो एव विराट वृक्ष शिखाओ पर झिलमिलाती साध्य अरुणिमा बडी मनोरम—बडी चित्ताकर्षक प्रतीत हो रही थी। वन्य चरोखरो से अपने अपने ठिकानो को लौटते पशुओ के खुरो की रगड से उडती धूल, पिदरौका मारते बछडों की 'अम्मा' पुकार से व्यथित विह्वल मन भी पुलक से भर भर उठता था। कितना मनोरम था वह दृश्य—चारे दाने की तलाश मे सुबह के गए विहगो के झुन्ड के झुड किसी दूर की अज्ञात दिशा से झूमते मदमाते

प्रधान (कविता सग्रह 1984)

1 सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

इतराते लौट रहे थे, अपने अपने रैन-बसेरा की ओर—नीड़ों से बाहर निकल राह निहारते, फुदकते चहकते उनके नन्हें-नन्हें शिशुओं के मधुर कलरव से निहाल हो उठा था प्रकृति का आंगन।

धीरे-धीरे सूरज की वह लाली भी लुप्त हो गई। धवल विमल विस्तृत आकाश पर बिछ गई सध्या की निस्सीम नील चादर। गृहस्थी के जंजाल से फुरसत पाकर गांव वाले अभी क्षणिक विश्राम भी नहीं कर पाए थे कि तभी उन्हें सरपच के दरवाजे पर एकत्र होने का संदेश मिला। लोग-बाग एक एक कर पचायत के चबूतरे पर एकत्र होने लगे। देखत-देखत थोडी ही देर में सारा गाव वहां जमा हो गया।

आकर सबके व्यवस्थित बैठ जाने पर सरपच देवीदयाल ने पचायत सेक्रेटरी को मुकदमा पेश किए जाने का आदेश दिया। सक्रेटरी ने सुनील का आवेदन पचो के सामने रखा—"मैं प्रार्थी सुनीलदत्त पचो के सामने अपना प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करते हुए यह निवेदन करता हू कि स्व० कैप्टेन विभूति नारायण सिंह के बेटे और बेटी ने मुझ पर जो कलक लगाए हैं और उनकी विधवा पत्नी विशाखा देवी ने आख बद कर अपनी सतानो के बहकावे में आकर मेरा जो अपमान किया है, उस पर इस गाव के लोग और पच परमेश्वर सूझ बूझ के साथ विचार कर अपना निर्णय सुनाए। यदि इस मामले में मैं सचमुच कसूरवार हू तो पचो द्वारा जो भी दड निश्चित किया जाएगा उसे भोगने को सहर्ष प्रस्तुत हू, यदि कसूरवार नहीं हू तो पचो से प्रार्थना है कि वे मुझे निर्दोष घोषित कर इस गाव से जाने की आज्ञा प्रदान करें।'

इसके बाद सेक्रेटरी ने वह आरोप-पत्र पढ़ा जो सुनील पर मढ़ा गया था। पचो ने कर्नल साहब के बेटे अनिल और बेटी रजनी को अपने सामने हाजिर होकर बयान देने का आदेश दिया। दोनो ही भाई बहनों ने वही पुराने आरोप पचो के सामने दोहराए।

तत्पश्चात पचो के सामने हाजिर होने का आदेश हुआ—सुनील, बसत और रतन को ।

रतन ने आते ही बयान दिया कि उसने बसत और सुनील के हाथो से रजनी की इज्जत बचाई ।

फिर सुनील और बसत का आदेश हुआ सफाई देने का । इसके जवाब म बसत और सुनील ने कहा—उन दोनो पर रतन और रजनी ने जो आरोप लगाए हैं वह उनकी साजिश है। अगर पच सच्चाई जानना चाहते हैं तो सच यह है कि रजनी और रतन के बीच अवैध सबध है । उस दिन हम दोनो ने रतन और रजनी को साथ-साथ देख लिया था । भेद किसी पर प्रकट न होने पाए इस डर से इन दोनो ने मिलकर हम दोनो दोस्तो पर यह आरोप लगाया ।

'इसका सबूत ? सरपच ने पूछा ।

"इसका सबूत यह फोटो है, जो हमने इन दोनो के अनजाने म अपने कैमरे से खीच लिया था ।' कहते हुए बसत ने तस्वीर की एक प्रति सरपच की ओर बढा दी ।

लालटेन की रोशनी म पचो ने देखा— 'रजनी अर्द्धनग्न हालत म रतन के आगोश मे लेटी हुई है और रतन ?

पचायत के आदेश पर फिर उस तसवीर को गाव के वयोवृद्ध लोगो और रजनी की मा विशाखा देवी को दिखलाया गया, ताकि कोई यह न कह सके कि गाव वाले या पचो ने साजिश करके रजनी और रतन को बदनाम किया ।

बाद मे उस तसवीर को पचायत कार्यवाही के अतगत रख लिया गया ।

इसके बाद पचायत ने सुनील को फिर पुकारा, दूसरे अभियोग की सफाई के लिए । बयान देते हुए सुनील ने वह सारा किस्सा पचो और

गाव वालो के सामने व्यक्त कर दिया कि किस प्रकार तार मिलने पर वह अनिल की तलाश करता लखनऊ के कोठे पर पहुचा और वहा शराब के नशे म धुत्त अनिल को शब्बो के साथ हमबिस्तर पर पाया।

सरपच न फिर उसने सबूत पश करने को कहा। सुनील ने अपनी जेब म एक दूसरा चित्र निकालकर सरपच की ओर बढाते हुए कहा—"यह रहा दूसरा सबूत, जिस मरे ही एक साथी ने कैमरे म चित्रबद्ध कर लिया था।'

पचो के अलावा गाव के लोग और विशाखा देवी न भी उस चित्र को देखा। उस चित्र म अनिल एक रूपवती वेश्या के हमबिस्तर हो गलबद्ध पडा था। पचायत ने सबूत के तौर पर इस चित्र को भी पजीबद्ध कर लिया।

दोनो तसवीरो के साक्ष्य ने सुनील के आचरण पर पवित्रता की मुहर लगा दी। बिना किसी लाग-लपेट के पचायत ने उसे और उसके साथी वसत को निर्दोष करार दिया। साथ ही यह आदेश भी हुआ कि "सुनील यदि इस गाव म रहना चाहे तो सम्मान के साथ रह सकता है और नहीं, तो उसे कहीं भी जाने की पूरी छूट है।'

फिर गाव की आवाज पर पचों न विशाखा देवी, रजनी, रतन और रतन के मा-बाप को पचायत के सामने हाजिर होने का आदेश दिया।

सबके हाजिर हो जाने पर पचो न रतन के मा-बाप को सलाह दी कि वे रजनी को अपनी बहू स्वीकार कर अपने घर ले जाए।

रतन के पिता रामलाल ने पचायत के सामने हाथ जोडकर कहा—"पचो, हमारे बाप-दादो से लेकर आज तक की पीढी इस गाव की मिट्टी मे पलती ढलती और सीखती आई है। यह गाव ब्राह्मण ठाकुर घरानो की बस्ती है। हम लोग उनकी प्रजा हैं। सदा से हिल मिलकर रहते और बाँट-बाटकर खाते आए हैं। आज तक हमारे बीच कभी विद्वेष की आग नहीं

लगी, लेकिन इस नालायक छोकरे और इस छोकरी के कारण स्थिति आज यहां तक भी पहुंच गई है। इसे मैं कभी बरदाश्त नहीं कर सकता! इसलिए पंचों से हमारी अर्ज है कि व ठाकुर खानदान की इस लड़की को अपनी पुत्रवधू बनाने के लिए हम मंजूर न करें, जो लड़की जवानी के जोश में अंधी होकर अपनी इज्जत लुटा सकती है, उस पर कैसे विश्वास किया जाए कि कुलवधू बनकर आने पर वह हमारे घर को तबाह नहीं करेगी? सुनील जैसा लड़का यह गांव तो क्या इलाके में भी खोजने से न मिलेगा। पता कितनी नसीब लेकर आई थी यह लड़की, जो इस सुनील जैसा हीरा भाई मिला था। लेकिन इस बदनसीब ने उसे भी कहीं का न छोड़ा। रही रतन की बात तो इस जैसे पतित पुत्र का आज से हमने त्याग किया। पंचायत उसे जो भी सजा देना चाहे दे सकती है।"

इसके बाद पंच कुछ देर के लिए उठकर एकांत में चल गए। वहां से परस्पर विचार विमर्श के बाद उन्होंने अपना फैसला सुनाया—रजनी के भ्रष्ट आचरण के कारण पंचायत उसे समाज से बहिष्कृत करती है और अनिल को आदेश देती है कि वह चौबीस घंटे के भीतर यह गांव हमेशा के लिए छोड़ दे, क्योंकि यदि वह इस गांव में रहता है तो उसकी दुश्चरित्रता का प्रभाव यहां के दूसरे बच्चों पर पड़ेगा और उनका जीवन बरबाद होगा। और रजनी— हालांकि उसका अपराध भी अक्षम्य है, लेकिन वह एक नारी है, इस गांव की इज्जत है इसलिए पंचायत उसे क्षमा दान देती है। साथ ही यह हिदायत भी करती है कि भविष्य में ऐसा आचरण बरते, जिससे कि किसी को उंगली उठाने का मौका न मिले।'

पंचायत के इस फैसले पर गांव वालों ने संतोष व्यक्त किया। मजमा बरखास्त होने ही वाला था कि इसी समय सुनील ने आकर पंचों के सामने प्रार्थना की— स्व० कैप्टेन साहब ने अपनी वसीयत के अनुसार मुझे अपनी

जायदाद के एक हिस्से का वारिस करार दिया था, उस जायदाद का सदुपयोग हो, इसलिए मैंने उस गाव की पाठशाला को दान म द दिया है। मेरी इच्छा है कि आज स उस जायदाद की देख रेख पचायत अपन हाथ मे ले और उसस मिलने वाली आय को स्कूल के विकास म खच करे।' और उसने अपना लिखित दानपत्र एव कप्टेन साहब का वसीयतनामा दोना ही कागजात पचायत को सौप दिए।

पचायत म पचो से लेकर गाव के आबाल वृद्ध वनिता सभी न उसकी भूरि भूरि प्रशसा की और उससे आग्रह किया कि वह उस गाव का ही होकर रह जाए, लेकिन सुनील इसके लिए राजी न हुआ।

पचो और गाव वालो से विदा ले वह भीड भाड से दूर एकात म बठी विशाखा के पास आया और झुककर चरण स्पश करत हुए बोला—"मुझे माफ कर दो, मा! मैं जा रहा हू।

उदास मुख गुमसुम बैठी विशाखा भविष्य की चिता म इतना खो गई थी कि उस सुनील के आकर चरण स्पश करने का आभास तक न मिला। वह तो चौंकी तब, जब सुनील ने उससे क्षमा मागते हुए जाने की इजाजत मागी।

सुनील के चेहरे पर पडते लालटेन के झिलमिल प्रकाश म विशाखा ने देखा—उसकी आखो म आसू की अविरल धारा बह रही है और वह अपने दोनो हाथ जोड अपराध भावना स ग्रस्त उसके आगे खडा है।

विशाखा ने निरतर सोलह वर्षों तक उसे अपनी औलाद के समान पाला-पोसा था। उसने अपने मन म कभी यह विचार पनपने न दिया कि सुनील उसका अपना बेटा नही है। लेकिन आज एक अदना-सी बात पर अपनी नालायक सतानो के बहकावे म आकर अपने इस हीरा बेटे पर आवेश म आकर क्या-क्या जुल्म नही ढाया? उसे लाछित कर घर से निकाल बाहर किया। उसे अपन

पश्चात्ताप हो रहा था। वह यही सोच रही थी—सुनार को किस प्रकार घर वापस लौटाया जाए ?

और एकाएक सुशील को सामने खड़ा देखकर वह अपने को रोक न सकी। उसके भीतर की मां जाग उठी—और, 'बेटा' कहती झपट पड़ी उसकी ओर। अपनी दोनों बाहों में समेट छाती से चिपकाये कभी देर तक आंसू बहाती रही।

उसकी सिसकती आवाज पंचायत का नजारा देखने आई गांव की स्त्रियों के कानों तक पहुंची। वे उठ उठकर उसके पास आईं और काफी प्रयत्नों के बाद उसे समझा-बुझाकर चुप कराया।

उसके स्वस्थ चित्त होने पर सुशील ने फिर कहा— मुझे आशीर्वाद नहीं दोगी मां! क्या, मुझसे अब भी नाराज हो!'

विशाखा आखिर थी तो उसकी मां। बेटे के दयनीय स्वर में माफी मांगने पर उसका हृदय विकल विह्वल चीत्कार उठा और उसे अपने अंक में समेटती हुई बोली—'नहीं बेटा नहीं, मैं तुझ पर नाराज नहीं हूं। मुझे खुद तेरी महानता के आगे टिके रहने में लज्जा आती है। मैं कितनी अंधी हो गई थी जो तुझे समझ न पाई और जाने कितना जुल्म किया। मुझे माफ कर दे, बेटा! मां की भूल को यदि उसका बेटा नहीं क्षमा करेगा, तो दूसरे उसे कभी क्षमा नहीं करेंगे।'

'ऐसा न कहो मां! मां—मां होती है, वह महान होती है। बेटे से उसका दर्जा बहुत ऊंचा है—पूजनीय है। मुझसे क्षमा मांगकर मुझे नरक का भागी न बनाओ! बेटा, बेटा ही रहेगा और मां—मां!'

'तो तूने मुझे माफ कर दिया, बेटा!

'माफी तो मुझे मांगनी चाहिए मां, जिसके कारण आज तुम्हें इतना दुख पहुंचा!'

'नहीं बेटा! आज जो कुछ हुआ अच्छा ही हुआ। इसमें कम से कम

अरधान (कविता संग्रह 1984)

सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

हीरे और कोयले की पहचान तो मिल गई। आज यदि यह घटना न घटती तो मैं जाने कब तक अंधकार में डूबी रहती? ईश्वर जो करता है सब ठीक ही करता है। अच्छा, अब चल घर चलें।"

'नही मां! मुझे जाने दो! देर हो रही है।

"फिर मैं कैसे मान लू, तूने मुझे माफ कर दिया।'

"मुझे गलत न समझो, मां! समय पर यदि पहुचा नही तो परीक्षा कैसे दे सकूगा?"

"तू परीक्षा देगा—और जरूर देगा! लेकिन इस रात में समय नही जाने दूगी। कल एकदम भोर के समय यहां से रवाना हो जाना।' और उसकी बाह पकड़ खींच ले गई घर की ओर।

तीन

जयपुर भारत का राजभवन—बनारसी वक्र और दिल्ली भी फीकी पड़ गई है आज इसके सामने। स्टेशन से बाहर आते ही इसकी लंबी-चौड़ी सपाट सड़कें यात्रियों पर अपने प्रभाव का द्विगुण छाप पहले ही छोड़ती हैं। अपूर्व आकर्षण का केंद्र बिंदु 'अशोक नगर'—जिसके निर्माण में सृष्टि के आधुनिक विश्वकर्मा श्री एम० विश्वेश्वरया ने अपने जीवन की संपूर्ण कला उड़ेल दी। राजपथ प्रतीक 'चौड़ा रास्ता' महानगर के अतीतकालीन उत्कर्ष वैभव का स्मरण आज भी कराता है। 'रामगंज' का चकला—सामने ही अवस्थित जयपुर नरेश के हवा महल से कुछ कम चित्ताकर्षक नहीं ?

बी० ए० फाइनल परीक्षा देकर इलाहाबाद छोड़ने के बाद आठ वर्षों से इसी नगर में निवास कर रहा था सुनील। दैनिक 'राजस्थान समाचार' के विशेष प्रतिनिधि के रूप में उसने अच्छी ख्याति अर्जित कर ली थी। गौरा गांव से उसने अपने संबंध विच्छेद कर लिए हों, ऐसी बात न थी। वेतन मिलते ही वह मां के खर्च के लिए पैसे हर महीने भेज दिया करता था। तब यह बात जरूर थी कि वह जिस दिन से वहां से आया, भेंट मुलाकात के लिए एक दिन को भी न गया। ऐसा उसने जान बूझकर नहीं किया बल्कि उसका काम काज इतना विस्तृत हो चुका था कि कभी अवसर ही न मिला गौरा गांव जाने का। इस बारे में मां विशाखा का जब कभी शिकायत भरा पत्र आता तो अपने व्यस्त जीवन

का उल्लेख करते हुए विनम्र भाव में उत्तर भेज देता। आज मां का पत्र फिर आया था। पत्र के मजमून बहुत ही गंभीर थे, पर अस्पष्ट! आठ वर्षों के अन्तराल में विशाखा ने इतना गंभीर पत्र कभी नहीं भेजा था। लिखा था—'भोजन यहीं करना, हाथ यहीं धोना!'

वह सोच रहा था—"मां ने ऐसा क्या लिखा? उसने आज तक ऐसा पत्र कभी नहीं भेजा। लगता है मां किसी गंभीर संकट में है, अन्यथा ऐसा कभी न लिखतीं—मुझे जाना ही चाहिए—जरूर जाऊंगा! जीवन में प्राण फूंकने वाली जननी की पुकार तो सुननी ही होगी।" और दूसरे ही क्षण वह बिस्तर बांध चल पड़ा गौरा गांव की ओर!

दो दिन की लंबी ट्रेन-यात्रा के बाद वह घर पहुंचा। दिन डूब चुका था। विशाखा को पूरा विश्वास था कि सुनील आएगा जरूर। इसीलिए वह उसका इंतजार करती दरवाजे पर ही बैठी थी। बेटे के आने की प्रतीक्षा वह तीन रोज से कर रही थी। दरवाजे पर तांगा रुकते ही वह झपटकर उसके पास आई। देखा, उसका बेटा नांच से नीचे उतर रहा है। आनंद विभोर मां की ममता नाच उठी। अपना सारा वात्सल्य न्योछावर करने लगी बेटे पर।

सुनील उसका चरण-स्पर्श करने को नीचे की ओर झुका तो मां ने दोनों भुजाएं पसार उसे अपने में समाहित कर लिया। अद्भुत मिलन था मां और बेटे का। दरवाजे पर पास पड़ोस का काफी मजमा जमा हो गया। गुरुजनों ने उसकी मंगल-कामना में अपने आशीर्वचनों की झड़ी लगा दी। यह दृश्य काफी समय तक बना रहा। देर रात गए तक कुशल-क्षेम की बातें होती रहीं।

भीड़ छंट जाने के बाद सुनील की निगाह हवेली की ओर गई। ऊंचा-पूरा मकान अनेक स्थानों से खंडहर बन चुका था। दरवाजे के ढोर डांगर बिक चुके थे। बाग-बगीचा, खेती-बारी महाजनों के हाथ

बेनामी हो चुके थे या रहन। हवेली के बाहर के सिर्फ दो कमरे कुछ अच्छे हालात में थे, जिनमें रजनी के साथ जीवन बिता रही थी विशाखा। गृहस्थी की इस बरबादी का ब्यौरा सुनीत को पता और उसके साथ राह दिखावा।

उद्विग्न और खिन्न मन कुछ शांत होने पर सुनीत ने कहा—"मां यह सब बरबादी आप अपनी आंखों से देखती रहीं और रोकने का जरा भी प्रयत्न न किया ?"

मैं असहाय विधवा नारी कर भी क्या सकती थी, बेटा !'

और यह नौबत आई कैसे ?

"यह सब कुछ अनिल ने किया। उसने बाग-बगीचा, जमीन जायदाद सब कुछ बेच दिया। उसका बस चलता तो यह मकान भी बेच दिया होता, लेकिन मौके पर बंबई से बसंत आ पहुंचा और गांव के कुछ लोगों को साथ लेकर अपनी टांग अड़ा दी। लेकिन दो दिन बाद जब बसंत वापस चला गया तो अनिल ने रात के समय मजदूरों को साथ लेकर इस हवेली का खंडहर बना गया। ये दोनों कमरे भी नहीं बचे होते—संयोग से मेरी आंख खुल गई और मैंने शोर मचा दिया। देखते देखते गांव में जागरण पड़ गया और लोग-बाग दौड़ पड़े इस हवेली की ओर। उमड़ती भीड़ को देखकर अनिल मजदूरों को साथ ले डरकर भागा। तब फिर नहीं आया। पता चला है कि वह आज भी इलाहाबाद में शब्बो नाम की किसी तवायफ के घर रहता है और जायदाद की बिक्री की रकम मुट्ठी खोलकर लुटा रहा है।

लेकिन अनिल को तो पंचों ने गांव से निकाल दिया था।'

हां, जरूर निकाल दिया था। लेकिन इसके खिलाफ अनिल ने कोर्ट में मुकदमा दायर किया। कई महीनों की भागमभाग के बाद अदालत ने उसका निष्कासन रद्द कर दिया।

"इतनी बड़ी घटना घट गई और आपने मुझे भी खबर न दी।"

"पिछला दृश्य मेरी नजरों के सामने था। अनिल अब वह अनिल नहीं रह गया है। वह नामी गुंडा बन चुका है। तुम्हें बुलाने का मतलब होता, अनिल के साथ तुम्हारा युद्ध। इतनी सारी बरबादी के बाद, सिर्फ तुम्हीं बच रहे हो मेरे बुढ़ापे का सहारा। अब मैं कोई ऐसा काम नहीं होने देना चाहती, जिससे मेरा यह सहारा भी छिन जाए। इसीलिए इस बरबादी की भनक तुम्हें न मिलने दी बेटा! लेकिन पानी जब नाक तक आ गया और बांध टूटने से रोक सकना मेरे बूते के बाहर हो गया तो तुम्हें खबर देनी पड़ी।"

"ऐसी क्या बात हो गई, मां जी!" सुनील ने गंभीर मुद्रा में पूछा।

"गोरा गांव छोड़कर तुम्हें गए लगभग आठ साल पूरे होने जा रहे हैं। इन आठ सालों में रतन तीन बार जेल गया और आया। पहली बार यहां की पंचायत ने तुम्हारे ही सामने उसे भिजवाया। दूसरी बार चोरी डकैती और जुआ शराब के धंधे में और तीसरी बार अपने ही चाचा की हत्या के सिलसिले में। अब करीब दो महीना पहले ही वह जेल से छूटकर आया है। आने के तीन-तीन रोज बाद ही वह रजनी को लेकर फरार हो गया। काफी तलाश के बाद इसी हफ्ते में पुलिस की मदद से उसे घर लाने में सफल हुई। बेटा, यदि जल्दी ही इसको, कोई सुपात्र लड़का देखकर ठिकाने न लगाया गया तो इसका जीवन बरबाद हो जाएगा।"

"मुझे क्षमा करेंगी, मां जी! आज जमाना काफी बदल चुका है। जात-पात का भेद भाव आज के आधुनिक समय में कोई नहीं पूछ रहा है। इस रूढ़ परंपरा को दकियानूस खयालों की उपज माना जा रहा है। मेरे विचार में, रजनी यदि रतन के साथ ही घर बसाना चाहती है तो आप इसमें बाधा न डालिए।" सुनील की आवाज पूर्ववत गंभीर थी।

विशाखा ने उसकी सलाह का विरोध तो न किया, लेकिन उसने जो तर्क पेश किया वह सचमुच घोर चिंता की बात थी। उसने कहा—' बेटा, मैं तुम्हारी बात का विरोध नहीं करती क्योंकि कुल खानदान के नाम पर जो धब्बा लगना था वह तो लग चुका। उसे अब कोई मिटाना भी चाहे तो कभी नहीं मिटा सकता। नारी जब एक बार बदनाम हो जाती है तो वह दुनिया की निगाह में जीवन भर उपेक्षा और घृणा की पात्री बनी रहती है। रजनी अब कितनी भी नेक चाल चले, समाज अब उसे कभी आदर-मान नहीं देगा—वह लांछित ही रहेगी। सवाल तो यह है कि तुम्हारे कहने से आधुनिकता के नाम पर यदि मैं इस संबंध को स्वीकार भी कर लूं तो इससे क्या रतन के गंदे संस्कार मिट जाएंगे? रतन का एक पांव जेल के सीखचों के बाहर और एक भीतर रहता है। इससे क्या रजनी का जीवन सुखी हो सकेगा? रतन के संस्कार यदि अच्छे होते तो अपनी ही गली मोहल्ले की किसी बेटी-बहन को लेकर क्यों भागता? ओछे संस्कारों के लोग ऊंचे संस्कार वालों में घुल मिल जाने का सपना तो देखते हैं, लेकिन वे परस्पर में ही छुआछूत का बीज बोए हुए हैं। नाई, धोबी, दरजी, बढ़ई, कुनबी, कुम्हार आदि छोटे तबके के पहले अपने ही बीच के छुआछूत मिटाकर अपने संस्कारों में परिवर्तन क्यों नहीं लाते? क्यों नहीं आपस में रोटी-बेटी का संबंध कायम करते? पहले ये लोग अपने में सुधार लाएं पीछे बड़ी जातियों में मिलने का सपना देखें तो कोई बात भी बने।

'लेकिन रजनी तो इतनी दूर की नहीं सोचती, मां जी!" सुनील ने प्रतिवाद किया।

'हां रजनी इतनी दूर की नहीं सोचती? इसीलिए तो आज उसके माथे पर बदनामी और कलंक का सेहरा बंधा है और आगे का भविष्य भी घोर अंधेरे का शिकार है। इस कुलबोरन बेटी ने अपने को तो नरक

म ढकेला हो, साथ ही हम भी ले डूबो, आर उससे निपटना मुश्किल हो रहा है। अब कौन थामेगा इसका हाथ ? घर म इतनी दौलत जायदाद नही कि धन के बूते पर किसी सुपात्र या गरीब्वर इसके हाथ पीले कर दू।" बोलकर विशाखा गभीर दृष्टि स सुनील की ओर देखने लगा।

सुनील ने गभीर स्वर म जवाब दिया—"माजी, आपने दुनिया देखी है, सामाजिक दुनियादारी को अच्छी तरह समझती हैं। इस सबध म जितना आपका सोचना वाजयाव रहगा, मरा नहो। फिर भी आपने पूछा है तो कुछ जवाब तो देना ही है—रजनी यदि यह समझती है कि रतन के साथ उसका जीवन सुखी-सानद और मर्यादित रह सकेगा तो मैं बार-बार यही सलाह दूगा कि रतन चाहे जसा भी हो, उसके साथ रजनी का घर बसा लेने दीजिए। रही कुल-परपरा की बातें—तो ये सब मनुष्य के रचे भ्रमजाल हैं। कौन कह सकता है, जिस समय इस प्रकार की लोक-मयादा की बुनियाद रखी गई, उस समय देश काल और सामाजिक परिस्थितिया का रूप रखा कैसी थी ? आज हम अनजाने म न तो पिछले रीति रिवाजो की प्रशसा कर सकते हैं और न ही आज की विद्रोही परपरा की निंदा। यदि सूक्ष्म रूप म विचार करें तो परपराए चाहे पुरातन हो या आधुनिक सब एक-दूसरे की पूरक हैं। हम किसका पालन करें किसका नहीं—कुल-परिपाटी और रीति रिवाज परिस्थितियो के अनुरूप बनते बिगडते रहते हैं। आज बहुत जरूरी है कि हम बदली परिस्थितियो के अनुरूप अपनी परपरा की नई बुनियाद रखें। यदि हम पुरातन पुरुषो के आदर्शों को ही लेकर चलें, तो उस हिसाब से भी रजनी और रतन को अपना ससार बसाने का अधिकार मिलना चाहिए।"

यद्यपि विशाखा को मनु का तक कुछ जचा नहा, लेकिन इसके अलावा और कोई उपाय भी नही था। इसलिए मजबूर होकर उसने भी हामी

भर ली। दूसरे दिन उसने रजनी से कहा कि वह रतन को बुला लाए इस सबंध में बातचीत करने के लिए।

रतन के घर जाकर रजनी ने उसे मां का संदेश सुनाया। जवाब में रतन ने कहा—'सुनो, रजनी! पिताजी ने मेरी शादी कहीं और जगह पक्की कर दी है। इसलिए इस संबंध में तुम्हारे घर जाकर बातचीत करने का अब सवाल ही नहीं उठता!

'और आज तक तुम इतना लंबा चौड़ा जो सब्जबाग दिखाते आए उसका क्या होगा रतन?' रजनी ने आहत होकर कहा।

रतन भी कुछ कम न था। उसने तुरंत जवाब दिया—'मैंने तुमको सब्जबाग दिखाया? क्या कहती हो? इतना सफेद झूठ नहीं बोला करते, रजनी!'

"सफेद झूठ, मैं बोल रही हूं?

'और नहीं तो क्या? याद करो अपनी पिछली बातों को, जब तुम अक्सर कहा करती थीं—जवानी है ही हंस-खेलकर बिता लेने के लिए रतन! जो मजा—जो आनन्द इस मुक्त मिलन में है, वह शादी में कहां? शादी—कठोर सामाजिक बंधन का दूसरा नाम है इसमें मनुष्य के उन्मुक्त विचरण पर पाबंदी लग जाती है।'

"परिहास को सचाई में बदलने की कोशिश मत करो, रतन! मैं पके आम की वह गुठली नहीं, जिसका सत्व निचोड़कर लोग फेंक देते हैं कूड़े के ढेर पर।

'सत्व की बात न करो, रजनी! वह तो कबका निचुड़ गया। अब तो तुम प्लास्टिक की बेजान गुड़िया मात्र रह गई हो जिससे मौके-बेमौके सिर्फ मन बहलाया जा सकता है और, तुम्हारा यह अधिकार मेरे पास

उस जनपद का ...
अरघान (कविता संग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

आज भी सुरक्षित है।"

"रतन ।'

"चीखो नहीं, रजनी ! यह तो जानती ही हो कि शादी का मंडप पूजा-स्थल होता है और पूजा में देवता पर ताजा फूल चढ़ता है बासी नहीं।'

"रतन, सोच-समझकर बातें करो ? ऐसा न हो कि जो काटा आज तुम बो रहे हो कल बड़ा होकर तुम्हें ही दंश कर जाए।"

"इसका भी ख्याल तुम्हीं रखो, रजनी ! मैं तो पुरुष हूं—नीलकंठ महादेव ! हर जहर पचा जाने की मुझमें क्षमता है। लेकिन अब तुम्हारा क्या होगा ? कोई भलामानुस अब तैयार भी होगा या नहीं तुम्हें अपनाने को। वह तो सिर्फ मैं एक था—जिसने गले का हार बनाकर अपने हृदय आसन पर बिठा तुम्हें मान-सम्मान के साथ अपनी रानी बनाना चाहा। लेकिन अब ?"

"लेकिन अब क्या ?'

"सारा खेल खतम हो गया, रजनी ! न तो तुम हार बन सकी और न ही रानी।"

'खेल खतम नहीं हुआ, रतन ! सच पूछो तो अब शुरू हुआ है।"

"मतलब ?'

"तुमने अब तक नारी को पुरुष के गले का हार बनते देखा है, नागिन बनते नहीं ? तुमने मेरा एक रूप तो देख लिया, अब दूसरा भी जल्दी ही देखोगे ?'

"उस दिन का भी इंतजार करूंगा।"

"जरूर करना !" बोलकर रजनी तेजी से मुड़ी और घर की ओर चल दी।

रतन ने रजनी से शादी करने से इनकार कर दिया इसकी खबर विशाखा और सुनील दोनो को मिल चुकी थी। दोनो ही उसके भविष्य को लेकर चिंतित थे। रात के भोजन के बाद सुनील जब अपने बिस्तर पर विश्राम के लिए गया तो विशाखा भी आकर उसके पास बैठ गई। काफी देर तक गुमसुम बैठी रही, शायद सुनील कोई चर्चा छेड़े। लेकिन जब उसने देखा कि वह कुछ नही बोल रहा है तो खुद ही बोली—'बेटा सुनील अब क्या होगा रजनी का ?'

'मेरी भी समझ मे कुछ नही आ रहा है, मा जी !" सुनील दुखी स्वर मे बोला।

बेटा अब आशा की सिर्फ एक किरण शेष बची है। यदि वह स्वीकार ले तो रजनी का जीवन बरबाद होने से बच जाएगा।"

'आप किसी लड़के की बात कर रही हैं क्या ?' सुनील ने पूछा।

विशाखा ने गभीर होकर कहा—'हा, रजनी के योग्य एक बहुत अच्छा लडका है और नजदीक ही मे। लेकिन जाने क्यो मेरा ध्यान उस ओर नही गया और ऊल जुलूल के पचडो मे पडकर इधर उधर तैरती परेशान रही।'

'कौन है वह ? कहा रहता है ? क्या करता है ? चौककर सुनील ने एक पर एक कई सवाल जड डाले।

'लेकिन डरती हू कही उसने इनकार कर दिया तो ?"

'इनकार क्या करेगा ? यदि आप लोगो का उस पर थोडा सा भी एहसान है तो इनकार करने का सवाल ही नही उठता।

'एहसान तो उस पर बहुत हैं, बेटे ! लेकिन आज किस पर भरोसा किया जाए—किस पर नही यह कहना बडा कठिन है। अब पहले जैसा समय नही रहा, आज एहसानो को भूल जाते तनिक भी देर नही लगती।'

लेकिन वह लडका कौन है ? उससे एक बार चर्चा चलाकर तो

प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)

सी-50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

देखिए ? बातचीत करके देखने मे हज भी क्या है ?"

"हज तो कुछ भी नही है, तभी तो तुमसे बातें कर रही हू। फिर कभी-कभी यह भी विचार उठता है कि यदि रतन जैसे गिरे हुए इसान के पीछे हम भाग सकते हैं तो तुम क्या बुरे हो जो रजनी का हाथ नही थाम सकते ?"

"मा जी ! " चौंककर बिस्तर से उठ बठा सुनील—"मा जी, आपने यह क्या कह दिया।"

"घबराओ नही, सुनील ! मैंने कुछ बुरा नही कहा। तुमसे बढकर अच्छा और योग्य लडका दूसरा कौन हो सकता है, रजनी के लिए ?'

"बिना समझे-बूझे आपने यह क्या कह दिया, मा जी ! आपने मुझे बेटे की तरह पाला पोसा और जवान बनाया। मेरे शरीर के बूद-बूद रक्त मे प्रवाहित है इस घर का नमक। इस घर के मेरे ऊपर इतने एहसान हैं कि मैं उन्हें कभी चुका नही सकता ? लेकिन इतना सब होते हुए जहा रिश्ते नातो का प्रश्न उठता है, उस खयाल से, आप चाहे जो कुछ समझें, लेकिन मेरी दृष्टि मे रजनी मेरी बहिन है और बहिन के साथ विवाह-सबध नामुमकिन है मा जी ! यह कदम उठाकर मैं पाप का भागी कभी नही बनूगा, मा जी ! पास पडोस और समाज के लोग क्या कहेंगे ? यही न कि इस नमक हराम ने जिस थाली मे खाया उसी म छेद किया।"

"तुम्हारा तर्क अपनी जगह पर किसी सीमा तक ठीक है, बेटा ! लेकिन फिर भी यदि तुम रजनी का हाथ थाम लो तो पाप के भागी कभी नही होगे। रजनी और तुमने सहोदर भाई बहन के रूप म एक कोख स तो जन्म नही लिया ? तुमम और रजनी मे खून के रिश्ते का कोई मेल नही ? यह ठीक है कि तुम दानो पले एक ही घर मे, एक ही अन्न वस्त्र पर। जब कप्तेन साहब तुम्हें इस घर मे लेकर आए तब दुनिया जहान, मैंने या खुद कैप्टेन साहब ने भले ही यह समझा हो कि तुम अनाथ हो, असहाय हो

लेकिन कौन जानता है ईश्वरीय विधान को ? शायद इसी बहाने इस घर का दामाद बनाकर तुम्हें समय से पहले ही यहां भेज दिया गया ! कप्टेन साहब ने अपने जीवन में कभी किसी का दिल नहीं दुखाया, बेटा ! औलाद का घर बसाने से पहले ही उन्हें बुला लिया जाएगा यह बात हम तुम्हें तो नहीं, लेकिन जन्म देने वाले परमपिता को यह बात मालूम थी। इसीलिए उसने तुमको यहां पहले ही भेज दिया, ताकि उस देवता समान कैप्टेन साहब की कन्या अविवाहित न रह जाए। रजनी के साथ तुम्हारा पाणिग्रहण संस्कार दैवी योगायोग है, बेटा ! इसके लिए न तुम पाप के भागी होगे न रजनी और न ही हम या और कोई !'

सुनील ने दीर्घ उसांस ली। उसका अंतर फुसफुसाया— अच्छा पुण्य कमा रही हो मां ! जिसने इस घर का नमक खाया, रजनी को अपनी बहिन माना और तदनुसार ही उसके साथ आचरण-व्यवहार किया उसी के साथ जबरन ब्याह रचा रही हो ! खुद तो घोर पाप में डूब ही रही हो, साथ ही मुझे भी डूबो रही हो ! स्वार्थवश पराभूत व्यक्ति को कौन समझाये कि पाप-पुण्य मनुष्य की सूझ-बूझ से उपजे उसके दुष्कर्म और सत्कर्म के फल हैं।'

एक ओर उसका कर्तव्य पुकार रहा था—'इस घर का नमक खाकर इतने कृतघ्न न बनो कि उसके प्रति अपने फर्ज भी भूल जाओ !'

दूसरी ओर यह स्वर रह-रहकर कानों में झनझना उठते— यह ठीक है कि तूने इस घर का नमक खाया लेकिन फर्ज के नाम पर, अपने माथ पर क्या कलंक का टीका लगवाएगा ? जो कभी धुल न सके ! जिसको तूने आज तक बहिन के रूप में देखा, अब उसी के साथ ब्याह रचायेगा ? छि छि, यह घोर पाप है। अरे कुछ सोच तो सही—यदि तूने ऐसा कर लिया तो तेरे और उन सफेदपोशों में फर्क ही क्या रहा ? सफेदपोश जो दिन के उजाले में जिसको बहिन कहता है—रात के अंधेरे में उसी का

परदा टूटा, आबरू लूटता है।'

विफर उठा मनोद्वेग—'कहा जाए ? ससार मे ऐसा कोई स्थान बचा भी है, जहा पाप-पुण्य, धर्म-कर्म की ओट लेकर इतन जघन्य, क्लीव निंदित दुष्कर्म नही होते हैं। अरे, घर घर की यही कहानी है। लुक छिपकर भाग जाने मे लोग पलायनवादी कहेंगे। कहेंगे—कायर था, कापुरुष था—भाग गया डरकर जीवन सग्राम स।'

भयकर टकराव हुआ कत्तव्य की पुकार और आत्मा के स्वरा म। दोना न एक दूसरे की शक्ति आजमाई। लेकिन हार जीत का फसला अनिर्णीत ही रहा। उसन विशाखा पर अपने मनोभाव प्रकट न कर सिफ इतना ही कहा—"जाने क्या मन इस रिश्ते को स्वीकारने स बिन्ध रहा है।"

'बेटा, अब तुम जवान हो चुके हो। मैं कितना भी चाहू तो तुम्हें बाधकर जबरन्स्ती कोई काम तुमसे नही करा सकती। सिफ इतना जानती हू कि रजनी को समाज पतित घोषित कर चुका है। जिस रतन ने उसे तबाह किया, उसने भी उसका हाथ थामने से इनकार कर दिया। अब यदि तुम भी इनकार करते हो तो रजनी के लिए सिफ आत्महत्या के और कोई रास्ता नही बचा है। इसलिए तुम अपने पर इस खानदान का यदि थोडा भी एहसान मानते हो ता मैं बार-बार यही निवेदन करती हू कि रजनी को बरबाद हाने से बचा लो। इस नेक काम स न केवल एक असहाय नारी बरबाद होने से बच जाएगी, बल्कि इसी बहाने तुम्हे अवसर मिला है इस खानदान के एहसानो का बदला चुका देने का।"

विशाखा की बाता का जवाब देने के लिए सुनील ने अपनी जबान खोली ही थी कि इसी समय वसत ने आकर उस सूचना दी—'भाई सुनील, जल्दी करो।"

'क्या, क्या बात हो गई ?" सुनील ने अकुलाहट के स्वर म पूछा।

"यह सब बाद म पूछना ? अभी तो जल्दी चलो, मेरे साथ।"

सुनील जल्दी से अपने बिस्तर से उठा। पांवों म चप्पलें डालीं और चल पडा वसंत के साथ गाव के बाहर अमराई की ओर।

वहां पहुचने पर उसने जो दृश्य देखा शरीर पसीने-पसीने हो गया। खून से लथपथ रतन औंधा हो जमीन पर पडा था और लंबे फाल वाला एक रक्तरंजित छुरा हाथ मे लिये रजनी उसके पास खडी थी। उसके मुख से बार बार एक ही वाक्य प्रस्फुटित हो रहा था—"कामी, कुत्ते, उठ और बहला ले अपना मन प्लास्टिक की इस बेजान गुडिया से। "

बोलकर वह पुन और दूसरा वार करने ही जा रही थी कि तभी लपककर सुनील ने उसके छुरे वाले हाथ की कलाई मजबूती से पकड ली। रजनी ने पलटकर उसकी ओर देखा और उसकी पकड से अपनी कलाई छुडाने का प्रयत्न करती हुई बोली—"बडे मौके से आए हो तुम दोनों भी। मेरा जीवन बरबाद करने म तुम दोनों ने कोई कसर नही छोडी। लेकिन तुम लोग भी जाओगे कहां बचकर।"

बाग म कोई हादसा हो चुका है, इसकी भनक गाव वालो के कानों तक भी जा पहुची। लोग लाठी, भाला, लालटेन और टार्च आदि से सुसज्जित हो उमड पडे अमराई की ओर। रजनी ने रतन को छुरा मारा, इसका प्रत्यक्ष गवाह वसंत और सुनील को छोडकर कोई न था। इसीलिए दोनों मित्रों ने भरसक चाहा कि रजनी रात के अंधेरे का फायदा उठा खेतों मे चक्कर काटती सुरक्षित घर चली जाए। लेकिन उसके सिर पर तो खून सवार था। उलटा प्रतिशोध युद्ध छेड दिया सुनील और वसंत से। कप्टेन साहब के साथ कुछ दिनों तक बबई म रहकर उसने जूडो और कराटे के जितने भी दाव पेंच सीख रखे थे, तकरीबन सबका उपयोग किया सुनील को मारने मे। लेकिन सुनील भी कुछ कम न था। आखिर उसी घर के अन्न से उसका भी खून तैयार हुआ था। शक्ति और

—उस जनपद का [illegible]
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

साहस म वह रजनी मे वही बढ चढकर था। चाहता ता रजनी का कभी का धून चटा देता। लेकिन छोटी बहिन के नाते रजनी के प्रत्येक वार पर उसन बचाव की लडाई लडी। इसी कारण रजनी के छुरे के वार मे वह कुछ घायल भी हो गया। बीच-बचाव करन म बसन को भी कुछ चोटें आइ। बसत के घायल होन पर सुनील का क्रोध जाग्रत हो उठा। अब उसने जरूरी समझा कि रजनी को कुछ नसीहत दी जाए। पतरा बदल उसने एक हाथ से रजनी की एक कलाई थामी और दूसर हाथ स दूसरी। दोनो कलाइया गिरफ्त मे आते ही रजनी कुछ ढीली पड गई। सुनील ने उसे और शक्तिहीन बना देने के खयाल से एक साथ ही दोना कलाइयो को मरोड दिया। दद से रजनी के मुख से चीख निकल गई और उसके हाथ का छुरा जमीन पर गिर पडा। इसके बाद सुनील ने एक पर एक दनादन कई चाट उसके गाल पर जड दिए। भयकर पीडा स रजनी बिल बिला उठी और सिर थामकर जमीन पर बैठ गई।

उसके बेकाबू होते ही सुनील ने बसत की ओर देखकर कहा—"मित्र, किसी के यहा पहुचने से पहल इसे ले जाओ ? गाव वालो को शायद इस घटना की भनक मिल चुकी है, वे पहुचन ही वाले हैं।"

'लेकिन जानते हो तुम क्या करने जा रहे हो ? " और विस्मित हो बसन उसका मुख निहारन लगा।

"हा, सब कुछ जानता हू और जान-बूझकर खतरा माल ले रहा हू। किसी के एहसानो का बदला चुकाने का मौका बार-बार हाथ नही आता ?"

"नहा, मैं तुम्हें इतना बडा खतरा मोल नही लेन दूगा, सुनील !"

'अगर तुम मुझको अपना दोस्त मानते हो तो मैं तुम्हें उसी दोस्ती का वास्ता दिला रहा हू—तुम रजनी का यहा स लेकर जाओ और खयाल रहे किसी को इसकी भनक न मिलने पाए।'

विवश हो बसत को वहा स रजनी को लकर जाना ही पडा।

चार

गौरा गाव की अमराई म खून म लथपथ पडी थी एक लाश ! पुलिस तहकीकात म लगी थी और गाव वालो से इस हत्या के बारे म पूछताछ कर रही थी। पुलिस के दो जवानो के घेरे म खडा था एक युवक, जिसके एक हाथ म रक्तरजित लबे फाल का एक चाकू था और वह अपने बयान म इस खून की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले रहा था। लेकिन गाव वालो के बयान के अनुसार इस हत्या स सुनील का कोई सबध नही था। वह लाश इलाके के मशहूर गुडे रतन की थी, जिसकी हत्यारिणी थी रजनी। लेकिन मौके पर हत्या करते या हत्या क बाद रजनी को वहा किसी ने नही देखा। गाव वाले और पुलिस के लोग जिस समय वहा पहुचे —घटना-स्थल पर खून-सने चाकू के साथ सिर्फ सुनील का खडे देखा। हालात के मुताबिक मौके की तहकीकात और शिनाख्त से इस हत्या के लिए पुलिस सुनील को जिम्मेदार ठहरा रही थी और सुनील भी इस बात को अपने बयान म स्वीकार कर रहा था। लेकिन गाव वाले रत्ती भर भी यह मानने को तैयार न थे कि हत्यारा सुनील है। और तो और—जब पुलिस को इस बात की जानकारी मिली कि रजनी मिलिट्री के रिटायर कैप्टेन स्व० विभूति नारायण सिंह की बेटी है तो उसने इस बारे मे उनकी विधवा पत्नी विशाखा देवी से पूछताछ की। वह यह सुनकर हैरान हो गई विशाखा देवी के इस बयान पर—' भले ही किसी ने हत्या की वार- के समय या बाद म रजनी को यहा नही देखा, लेकिन मेरा पूरा

जनपद [illegible]
प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

विश्वास है कि यह हत्या सुनील ने नहीं, रजनी ने की है।'

फिर वह सुनील के पास जाकर बोली—"बेटा सुनील, अभी अभी तो तू मेरे पास से उठकर आया था। फिर यह हत्या तू ने कब की ? मैं कभी यह मान नहीं सकती! निस्सन्देह रतन की हत्या रजनी ने की है। तू उसे बचाने की खातिर झूठ बोल रहा है। उस नालायक लड़की के लिए तू अपनी जिंदगी क्यों बरबाद कर रहा है ? तनिक सोच तो सही बेटा, तेरे न रहने पर तेरी इस विधवा मां का क्या होगा ? किसके सहारे जिंदा रहूंगी ? कौन करेगा मेरी परवरिश इस बुढ़ौती में ?' और वह फूट फूटकर रो पड़ी।

"रोओ नहीं, मां! आपको किसी के आगे हाथ फैलाने की जरूरत नहीं है। मेरे पास इतना पैसा है कि मेरे छूटकर आने तक आप आराम से अपना जीवन बिता सकें। फिर मेरा दोस्त बसंत आपके करीब है। उसे भी आप अपना ही बेटा समझें। मेरे न रहने पर वह आपकी देखभाल करता रहेगा। और हां, रजनी को इस बारे में कुछ न कहेंगी। वह मानसिक रूप से एकदम विक्षिप्त है। उसे किसी बात की तकलीफ न होने पाए, ऐसा ही प्रयत्न कीजिएगा!"

इसके बाद पुलिस ने लाश को एम्बुलेंस में रखवाकर उसे पोस्टमार्टम के लिए शहर भिजवा दिया और हत्या के जुर्म में सुनील को बंदी बनाकर वह थाने में लाई।

गांव के सबसे वयोवृद्ध और प्रतिष्ठित व्यक्ति थे बसंत के दादा अवधेश नारायण सिंह। वे अपने समय के दबंग व्यक्ति थे। इलाके के सभी तबके के लोग उन्हें आदर-मान से देखते थे। एक जमाना था जब पुलिस महकमे में उनकी तूती बोलती थी। थे तो डी० एस० पी० ही, लेकिन अपनी कर्त्तव्यपरायणता के कारण आई० जी० आदि बड़े बड़े अधिकारियों में अपना दखल रखते थे। जिस दिन इस पद से रिटायर हुए,

उनकी विदाई समारोह म पुलिस महकमे के अलावा अन्य प्रशासनिक विभागो के बडे बडे अधिकारी भी उपस्थित थे और उन्होंने ठाकुर अवधेश नारायण सिंह के कार्यों की भूरि भूरि प्रशसा करते हुए उन्हें आदर-मान के साथ विदा किया था।

सुनील जसे युवक के लिए इस वयोवृद्ध ठाकुर के मन म बेहद प्यार और लगाव था। अक्सर गाव क दो चार बड़े-बूढ़े जब उनके पास एकत्र होते तो वह इस होनहार युवक की प्रशसा करते कभी थकते नहीं थे। गाव की युवा पीढ़ी को सबोधित कर वह प्राय कहा करते थे— 'मनुष्य-जीवन की सार्थकता के बारे म यदि कुछ जानना चाहते हो तो सुनील की सगति मे जाओ!"

लेकिन वही सुनील आज जब हत्या के जुर्म म गिरफ्तार होकर थाने ले जाया गया तो यह खबर मिलते ही वह कसमसा उठे। इस गिरफ्तारी के बाद गाव के अनेक लोगो म सुनील के विपरीत प्रतिक्रिया नजर आई। कुछ लोगों ने तो उसके विरुद्ध आग उगलते हुए तरह-तरह की छींटाकशी व ताने भी कसे—"जिसे हम बडा शरीफ समझते थे, वह छुपारुस्तम निकला—पूरा बगुला भगत। कुछ बुजुर्गों ने तो अवधेश नारायण सिंह के सामने भी सुनील के बारे म इसी तरह की कुछ अनुचित बातें कहीं और जेल से निकलने के बाद उस गाव मे न घुसने देने की चर्चा की। सुनकर बुजुर्ग अवधेश नारायण मुसकराने लगे।

उन्हें हसते देख मुखिया ने विस्मित होकर कहा— 'आप हस रहे हैं!"

हा, हस रहा हू तुम लोगो की मूर्खतापूर्ण बातो पर!"

'तो क्या हम कुछ गलत बोल गए?

'सौ फीसदी!

'वह कैसे?

प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)

सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

"यह तुम अभी नही समझोगे ? समय आने पर तुम लोगो को पता चलेगा कि उस लडके के बारे म तुम लोगो की धारणा कितनी गलत थी !' बुजुर्ग ठाकुर ने गभीर स्वर म कहा।

"अब समझने को बाकी भी क्या रहा ? जिस घर का नमक खाया, उसी घर की बेटी से—जो रिश्ते म उसकी बहिन होती है, शादी के लिए उत्सुक था। कितना घृणित विचार था उस छोकरे का ? इसके अलावा वह कितना खतरनाक है, यह उसके बयान से ही जाहिर हो गया—जब उसने पुलिस के सामने रतन की हत्या का अपराध स्वीकार किया।"

"झूठ, सरासर झूठ बोल रहे हो ! दोनो बातो म से किसी एक म भी सचाई नही है।"

"क्या कह रहे हैं, आप !' मुखिया को आश्चय हुआ उनकी बात पर—"शादी की बात तो रजनी ने ही बतलाई थी कि वह उससे शादी के लिए रजामद हो गया था—और, रतन की हत्या सबने आखो से देखी—खून म सना छुरा उसके हाथ मे था और पुलिस के सामने अपने बयान में उसने यह बात कबूल भी की कि इस हत्या के लिए वही जिम्मेदार है।'

"शादी की रजामदी की बात तुमसे रजनी ने कही—सुनील ने भी कही क्या ?" अवधेश नारायण सिंह ने पूछा।

"नही ! मुखिया ने जवाब दिया—"लेकिन रजनी झूठ तो नही कहेगी ?'

"रजनी यदि इसी लायक होती तो फिर उस लडके को आज जेल क्या जाना पडता ? और हत्या की जिम्मेदारी उसने अपने पर ले ली है यह बात तुमने ही नही, मैंने भी सुनी है ? और आज इस जुर्म की स्वीकारोक्ति के कारण ही उस लडके का चरित्र महान बन गया है। इतनी छोटी उम्र म सिद्धात का इतना बडा धनी मैंने आज तक कही नही देखा। तुम लोगो ने जो कुछ सुना और देखा सब गलत है !"

"तो फिर सचाइ क्या है ?" सरपच ने जिज्ञासा प्रकट की।

"सचाई यह है कि शादी के लिए रजनी की मा उस पर दवाब डाल रही थी और नमक का वास्ता दिलाकर उसे मजबूर कर रही थी। लेकिन सुनील बार-बार यही कहता रहा कि रजनी उसकी बहिन है।"

फिर ' मुखिया ने उत्सुक होकर पूछा।

' फिर क्या विनाखा ने उसे इस सीमा तक मजबूर किया कि वह 'हा' कर द, या नही तो वह गाव का हमेशा के लिए त्यागकर इस परिवार स अपना सबध तोड ले ? लकिन अचानक इश्वर न उसकी मदद की और वह इस कलक स बच गया ? '

सो कसे ? मुखिया का कौतूहल बढा।

"इसी समय रतन बाग के रास्ते अपने घर आ रहा था। जिस दिन उसने रजनी का ठुकराया, उसी दिन से रजनी उसके खून की प्यासी हो गइ। वह प्रतिशोध की आग म जलने लगी। उस रोज रतन जब बाग म पहुचा तो रजनी एक वृक्ष की ओट म वहा पहल से छिपी बठी थी। रात हो जाने के कारण विशाल अमराई का सूनापन धीरे धीरे गहन हो उठता है और उधर से होकर लोगो का आना जाना प्राय बद हो जाता है। रजनी अपने प्रेमी की हर आदत स परिचित थी। वह नियमपूर्वक इस समय वहा स होकर गुजरता था। अमराई का यह सूनापन रजनी के लिए वरदान साबित हुआ और रतन जैसे ही उस वक्ष के नीचे से गुजरा, पीछे स दबे पाव उसके करीब जाकर रजनी ने छुरे स उस पर हमला कर दिया। उसने तावडतोड तीन बार छुरे मारे और रतन के पट से रक्त का फव्वारा फूट पडा।

आप क्या कह रहे है ? कहा रतन जसा हट्टा-कट्टा नौजवान और कहा छरहरे बदन की रजनी ? विश्वास नही होता ? और वैसे भी, आप जानते ही है कि रतन क नाम का इस गाव तो क्या, इलाके म इतना

प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)
सी 50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

आतक था कि कोई भी उसके नजदीक जाने का साहस नहीं करता था। फिर रजनी ने तीन छुरा मारा और रतन उसका प्रतिरोध न कर सका ? ताज्जुब है।"

"इसमें ताज्जुब करने जैसी कोई बात नहीं ? जाने आप लोगों को याद है या नहीं, लेकिन मुझे अच्छी तरह याद है। जब विभूति नारायण सेना से रिटायर हुए तो उसके दस साल बाद जब चारों ओर युद्ध का-सा वातावरण छा गया, तो आपातकाल घोषित कर उन्हें दो साल के डेपुटेशन पर पुन काम पर बुला लिया गया। इस बार बबई में उनकी नियुक्ति हुई। उनका परिवार भी बबई चला गया। उन्होंने वहीं पर इस लड़की को जूडो और कराटे की ट्रेनिंग दिलवाई। इस जूडो और कराटे के कारण ही रजनी रतन को मारने में सफल रही। यही नहीं, उस पातकी को समाप्त करने के लिए उसमें चंडी रूप भी आ गया।"

"लेकिन रतन की हत्या रजनी ने की यह आपको कैसे मालूम हुआ ?" सरपंच ने पूछा।

"रजनी समझती थी कि वह जो कुछ कर रही है, उसे कोई नहीं देख रहा है। लेकिन उस घटना को मैं अपनी आखों से देख रहा था। मैं लाठी टेकता धीरे धीरे अपने खेतों की ओर से चला आ रहा था, जिस समय बाग में पहुचा, उस समय रतन जमीन पर पड़ा छटपटा रहा था और बार-बार उसके मुख से निकल रहा था—"रजनी, मैंने तेरा क्या बिगाड़ा था, जो तूने इतना घातक प्रतिकार लिया।"

"और रजनी का जवाब था—बड़ी जल्दी भूल गए अपने वे शब्द—मैं तो हम खेलकर समय बिताने वाली एक निर्जीव गुड़िया भर हू। पूजा का वह ताजा फूल नहीं, जो किसी देवता पर चढ़ता है। अब तो तुझे मालूम हुआ कि मैं निर्जीव गुड़िया नहीं, एक सबला नारी हू। तू इस गाव का, इस इलाके का कलक था, उसे मैंने मिटा दिया, ताकि भविष्य में

और कोई बेटी-बहिन तेरी हवस का शिकार न होने पाए।"

"मैं जितनी जल्दी हो सका घर पहुचा और अपने पोते बसत के द्वारा इसकी खबर सुनील तक भिजवाई। लेकिन रजनी सुनील को अपनी बरबादी का कारण मानती है क्योंकि उसने रजनी को उस दिन पचायत के सामने खडा कराकर समाज के सामने बदनाम किया। इसीलिए जब सुनील बाग म पहुचा तो रजनी उसी छुरे से सुनील को मारने के लिए झपटी। लेकिन सुनील पहले से सावधान था। इसीलिए वह रजनी को काबू म लाने म सफल रहा। फिर भी कुछ घायल तो हो ही गया। उसने बसत के द्वारा रजनी को किसी तरह घर भिजवाया और खून का इलजाम अपने सिर पर ले लिया।'

लेकिन सुनील ने यह इलजाम अपने सिर क्यो लिया ?' मुखिया ने पूछा।

'यद्यपि इस बारे म सुनील ने किसी को कुछ बतलाया नही, लेकिन जहा तक मेरा अनुमान है, उसने रजनी को कलकित होने से बचाने के लिए ही ऐसा किया, क्योंकि इतना भयकर काड करने के बाद यदि रजनी समाज की निगाह म आती तो इसका असर उसके शादी विवाह जैसे अहम मसले पर पडता और फिर कोई भी उसे अपनाने को तैयार नही होता। फिर इसी बहाने मौका मिला विशाखा की उस जिद से बचने का, जो वह उस पर दबाव डाल रही थी रजनी के साथ घर बसाने पर। साथ ही सुनील का यह एक सुनहरा मौका हाथ लगा उस खानदान के एहसानो का बदला चुकाने का। ये सब बातें सुनील की महानता ही दर्शाती हैं। आप लोग नाहक उस लडके पर शका न करें। इतने ऊचे विचार और इतने उज्ज्वल चरित्र का उदाहरण शायद ही कही मिलेगा। मैं कल उससे मिलने शहर जा रहा हू आप लोगो म से यदि कोई मेरा साथ देना चाहे तो मेरे साथ चल सकता है।"

प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

ये सब बातें सुनते ही 'हम सब चलेंगे' का सामूहिक स्वर गूज उठा। ठाकुर पूववत बोलते रहे—

"सुनील अपन घर का नही, बल्कि वहा जाए तो इस गाव, इस इलाके भर का लडका है। उसे बचाना हम सबका फज है।'

'लेकिन कैसे ?" मरपच ने पूछा।

"मैं तो बूढा हो गया। इतनी दौड धूप मुझसे मुश्किल है। लेकिन आप लोग जवान हैं—इधर-उधर दौड लगाने म समथ हैं। आप लोग पचायत के माध्यम से एक हस्ताक्षर अभियान चलाए। इलाके के छोटे से बडे सभी लोगो के हस्ताक्षर एकत्र करें। प्राथना पत्र पुलिस और अदालत दोना के नाम हो। उसम लिखें—"रतन इस इलाके का नामी गुडा, बदमाश और लुटेरा इमान था। उससे हर किसी के जान माल का खतरा बराबर बना रहता था। घटना के दिन उसने गाव की एक निर्दोष लडकी की इज्जत लूटनी चाही। उस लडकी की अस्मत का बचाव करने मे वह सुनील के हाथा मारा गया। जान बूझकर उसकी हत्या किसी न नही की।"

"मुझे पूरा भरोसा है—इस प्रकार के प्राथना पत्र से सुनील के मुकदम पर असर पडेगा और वह रिहा हो जाएगा।"

बुजुग ठाकुर अवधेश नारायण सिंह की सलाह गाव के लोगो का जच गइ और उन्हाने दूसरे दिन से ही इस प्रकार के प्राथना पत्र पर हस्ताक्षर अभियान आरभ कर दिया।

कहना उचित होगा कि किसी भी अवाछित तत्त्व के विरुद्ध जब इस प्रकार की सामूहिक कायवाही समाज की ओर से होने लगती है तो कानून और पुलिस को भी विवश होकर अपनी राय जनसाधारण "

बनानी पडती है। यह जानते हुए भी कि सुनील के हाथों रतन की हत्या हुई, इलाके की जनता द्वारा रतन के विरुद्ध कदम उठा लेने से उसका पक्ष एकदम कमजोर पड गया। नतीजा वही हुआ जो आमतौर से इस प्रकार के दूसरे मुकदमो म होता है। वादी पक्ष यह सबूत नही दे सका कि रतन अवाछित व्यक्ति नही, बल्कि एक प्रतिष्ठित सामाजिक व्यक्ति था और उसकी हत्या नियोजित षडयन्त्र का परिणाम था। परिणामस्वरूप कुछ महीनो की पेशा-पेशी और बहस मुबाहिसे के बाद सुनील को निर्दोष बरी कर दिया गया।

जेल से छूटने के बाद सुनील गौरा गाव जाने से कतराने लगा। उसने सोचा कि जब कभी वह गौरा गाव जाता है, वातावरण विषाक्त हो जाता है। वह जितने दिन उस नरक से दूर नौकरी पर रहा उसका शरीर और मन मस्तिष्क सब ठीक ही काम करते रहे। सम्मान की नौकरी थी और अच्छा खासा वेतन मिलता था। कुछ ऊपर से भी लिख लिखाकर कमा लेता था। इस प्रकार आठ दस साल म उसने अच्छी-खासी पूजी जमा कर ली थी। पद्रह सोलह हजार की रकम कुछ कम नही होती। इसी रकम म से उसने अब तक दस हजार रुपये विशाखा को दिए, जिससे मा-बेटी अब तक गुजारा करती रही।

अभी भी छह हजार की पूजी बक मे पडी थी। जेल का मदर द्वार पार कर जब वह बाहर आया तो देखा कि बसत उसे ले जाने के लिए वहा खडा था। वसे तो बसत और भी एक-दो बार उससे मिला था। लेकिन तब के और आज के बसत म बडा अतर था। आज उसका ठाट-बाट देखते ही बनता था। कोट-बूट शूट और टाई म आज वह एक आफि-सर-सा जच रहा था। पास ही एक नये माडल की एम्बेसडर गाडी खडी थी, जिसके ऊपर एक ड्राइवर कपडा फेर रहा था। उसका रोब दाब और रग ढग देखकर सुनील दग रह गया। मूक दृष्टि बडी देर तक निहारते

रहने के बाद उसके मुख से शब्द फूटे—"आज तो तुम जच रहे हो। लगता है जस वही में कोई साहब हो।"

"लगता है नहीं पूरा साहब वहो—पूरा !"

'किसी को मजाक करना न आता हो तो तुमसे सीखे !" बोलकर सुनील जोर से हस पड़ा।

'तुम इम मजाक समझ रहे हो। ये बूट-सूट, टाई और यह मर्सीडिस कार, यह ड्राइवर—यह सब तुम्हे मजाक दिख रहा है ?"

'अरे, छोड भी न यार ! पहली अप्रैल आने मे अभी तीन महीने बाकी हैं। जी भरकर मजाक कर लना उस दिन।"

वसत मायूस होकर बोला—"अब तुम्हे कैसे विश्वास दिलाऊ !"

उसकी मायूसी पर सुनील गभीर हो उठा—'तो क्या तू सचमुच साहब हो गया ?"

"यकीन करो, मेरे दोस्त ! मैं सचमुच साहब हो गया बम्बई की एक काटन मिल का मनजर !"

"तो क्या यह गाडी—यह ड्राइवर ?"

"सब मेरे लिए ! मिल की ओर से मिले हैं।"

"ता फिर, यार ! मेरी एक बात मानगा ?" सुनील गभीर हो उठा।

'तेरी नही मानूगा—तो मानूगा किसकी ! बोल क्या कहता है ?" वसत न मुस्कराकर कहा।

सुनील का स्वर पूववत् गभीर रहा—"तू यहा क्या आया है ?'

"तू तो ऐसी बातें कर रहा है, जैसे कुछ जानता ही नही !"

"तू मेरा बात मजाक म न ल, वसत ! मै सचमुच नही जानता !"

"यह कसी बहकी बहकी बातें कर रहा है ?" वसत का चेहरा भी गभीर हो उठा।

'मैं बहकी-बहकी बात नही कर रहा, वसत ! मैं तेरे ही हित की

कह रहा हू ।

'बडा आया हित चाहने वाला अभी तू यही नही जानता कि मैं यहा क्यो आया हू ! मुझे भय है कि कही तू यह न कह दे कि मुझे पहचानता भी नही !"

'इसमे क्या शक ? मैं तुझे सचमुच नही पहचानता !"

'सुनील !' उसकी बात पर चीख पडा बसत—"तू कही पागल तो नही हो गया ?"

'पागल हो गया होता तब तो कोई बात ही नहीं थी दुख है तो इसी बात का कि अभी तक पागल हुआ क्यो नही ?"

"तू ऐसी बातें क्या कर रहा है, मेरे दोस्त ! आज तुझे हो क्या गया है ?" कहते कहते बसत की आखें भर आइ ।

उसके भरे भरे से नेत्र सुनील से छिपे न रहे, तो भी उसने अपनी बातचीत के तौर-तरीके म कोइ अतर न आने दिया—"तू रोता क्यो है ? क्या इसलिए कि मैंने तुझे पहचानने से इनकार कर दिया ? अरे, पगले ! इसम भी तेरा ही हित है !"

"खाक है मेरा हित ! अब आगे कुछ बोला तो कहे देता हू बस अब और !'

'और आगे कुछ सुनना नही चाहता ! वह तो तुझे सुनना पडेगा ! लेकिन जरा धीरे बोल, तेरा ड्राइवर कही कुछ सुन न ले ! मैंने तुझे पहचानने से इनकार किया सो ठीक किया तू एक मिल का मनेजर हो गया है और म ? एक एसी चारदीवारी से बाहर आ रहा हू, जहा सिर्फ अपराधी बसते हैं बातें होती हैं अपराधो की दुनिया की मैं तेरे साथ इस गाडी म बठू तेरा दोस्त बनकर देखने म यह बडी मामूली सी बात है लेकिन कल यह मामूली सी बात तेरे हक मे बडी खतरनाक साबित होगी, जब यह ड्राइवर वहा जाकर यह कहेगा कि

अरघान (कविता सग्रह 1984)
सी 50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

साहब की दोस्ती खतरनाक गुडो, वदमाशा मे है उस समय तेरा सिर लोगो के सामने लज्जा और ग्लानि से झुक जाएगा तेरा मान सम्मान सब नष्ट हो जाएगा । और तेरे ऊपर इतना कुछ गुजरे, मैं इसे बरदाश्त नही कर पाऊगा। मेरी बात मान, तू इस समय अकेला घर चला जा । और हा, एक काम और करना—इस समय कुछ रुपये तुम्हारे पास हो तो मुझे दे देना। मेरी छह हजार रुपये आखिरी पूजी बक मे है। उसे निकालने के लिए मैं एक चेक दे देता हू। तुम एक हजार रोककर, पाच हजार मा जी को दे देना । मैं जल्दी ही बबई पहुचने की कोशिश करूगा। हो सके तो मेरे लिए किसी काम की व्यवस्था करके रखना, लेकिन अपने मिन मे नही, कहीं और।"

"तो क्या तुम गौरा नही आ रहे हो ?" वसत ने विस्मित होकर पूछा।

"नहीं, अब मैं वहा कभी नही जाऊगा। मैं जब वहा जाता हू, मुझे घुटन सी होने लगती है।'

'आखिर म मैं भी यही कहने वाला था कि तुम्हारा गौरा जाना अब ठीक नही है।"

'क्या ? क्या हो गया ? कोई विशेष बात ?" बोलकर उसने प्रश्नसूचक दृष्टि डाली वसत के चेहरे पर।

'लगभग दो माह होने को आए, रजनी घर से लापता है।"

"क्या—कहा गई ?" सुनील ने पूछा।

"यह किसी को नही मालूम। सिफ इतनी जानकारी मिली है कि उस रात मा बेटी के बीच किसी बात पर जमकर झगडा हुआ था। दूसरे दिन सवेरे वह गायब थी।"

सुनकर सुनील गभीर हो गया। वह बोले भी तो क्या बोले ? कुछ सुझाई नहा दे रहा था। उसे चुप देख वसत ने ही पूछा—"अभी कहा

जाओगे ?'

"सोच रहा हूं इलाहाबाद होते हुए एक बार दिल्ली जाने की।" सुनील ने जवाब दिया।

'ठीक है। दिल्ली पहुंचकर खबर देना, बंबई के पते पर।' और उसने जेब से अपने नाम का छपा हुआ कार्ड एवं कुछ रुपये उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—"यह रहा मेरा पता। और इस समय मेरे पास कुल पांच सौ रुपये हैं इन्हें रख लो। फिलहाल तो काम चल ही जाएगा। इलाहाबाद या दिल्ली पहुंचने पर खबर कर देना, कुछ और रुपये भेज दूंगा।'

"बस बस, इतना काफी है। वहां पहुंच जाने पर पैसों की कमी नहीं पड़ेगी। सुनील ने कहा।

"फिर यही तय रहा कि हमारी मुलाकात अब बंबई में होगी।" बोलकर वसंत अपनी गाड़ी की ओर बढ़ गया।

पीछे-पीछे पैदल पथ नापता एकाकी सुनील चला जा रहा था स्टेशन की ओर।

जीवन में एक दो झटके लगने पर संभलने की गुंजाइश रहती है। लेकिन झटके जब बार बार लगते हैं तो मन मस्तिष्क विकृतियों के दास हो जाते हैं। इस स्थिति में कोमलता की जगह कठोरता का आ जाना स्वाभाविक है।

जिंदगी में बार बार के उतार चढ़ाव से रजनी का मन मस्तिष्क भी विकृतियों का शिकार हो चला। मन इतना खिन्न रहने लगा कि किसी की भली बातें भी उसे जहर के समान लगने लगीं। अब वह बात-बात में लड़ाई झगड़े पर उतारू हो जाती। रोज रोज की इस किच-किच से विशाखा

प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

भी तग आ गई थी । उम दिन वह जेल म सुनील से मुलाकात के लिए जाना चाहती थी। उसन रजनी से सिफ इतना ही कहा—"यदि वह कुछ अच्छा सा भोजन बना दे तो सुनील के लिए भी थोडा बहुत ले जाया जा सकता है।"

विशाखा का इतना कहना था कि रजनी ने आसमान सिर पर उठा लिया—"तो बना क्या नही लेती, किसन रोक रखा है तुम्हारा हाथ। जब देखो तब उस कलमुहे के नाम की माला जपा करती हो। जसे ससार म वही एक सोने का बना है, बाकी सब तो पत्थर के हैं।"

विशाखा के भी तन मन मे आग सुलग उठी। उसे इस प्रकार की उल्टी-सीधी बातो स बहुत चिढ थी। वह रजनी को डाट पिलाती हुई बोली—"नहा बनाना है तो मत बना! लेकिन उस पीठ पीछे गालिया क्यो बक रही है? शम आनी चाहिए तुझे। आज उसी का किया खाकर जिंदा है, उसी के कारण घर की इज्जत ढकी हुई है। बाप के मरने के बाद, यदि वह निर्दोष न रहा होता तो जाने कहा होती तू। आज तरे कुकृत्यो के कारण वह नरक भोग रहा है।"

"हा हा, कर ले उसके नाम का गीता पाठ। उसी के चलाये तो सारी सष्टि चल रही है। किसने कहा उससे कि वह हमारा घर चलाए? हमने तो कभी नहा कहा। तूने ही मागी होगी भीख उसके आग आचल पसार कर। किसन कहा मरे लिए नरक भोगे? अपने आप ही तो कूदा इस आग मे—और जब कूदा तो भोगेगा कौन? यदि कोई जान-बूझकर ऊखल मे अपना मिर द तो इसम मूसल का क्या दोष?" बोलते बोलते रजनी का स्वर रुआसा हो उठा।

पर विशाखा भी कहा थमने वाली थी? वह और भी गरम हो उठी—"मैं कहती हू चुप हो जा पिशाचिनी! हाथ धोकर क्यो पडी है मेरे पीछे? जब कुछ करने धरने का भसोट नही है तो बठी बठी गाल क्यो

बजाती है ?

मा के तीखे व्यग्य स रजना कुछ ज्यादा ही तिलमिला उटी—' हा-हा, बजाऊगी गाल—हिम्मत हा ता राककर दख ल ।"

विशाखा अब और अधिक बरदाश्त न कर सकी । वह कमरे से निकल कर बाहर आ गई और पडोस के एक लडके से बसन्त के पास खबर भिजवाई । उसके आने पर भी रजनी की जबान बस ही चलती रही । उसको सीमा से बाहर जाते दख बसन्त ने भी उस डाटा ।

रजनी को अपने घरेलू मामले म किसी बाहरी व्यक्ति का हस्तक्षेप बिलकुल बरदाश्त नहा था । उसने तुरत जवाब दिया—"यह हमारा घरेलू मामला है, किसी बाहरी व्यक्ति को दखल देने का काई अधिकार नहा है ।"

बसन्त को रजनी का यह व्यवहार एकदम असभ्यतापूर्ण एव बबर लगा । वह भी आवेश मे आ गया—' तेरी निगाह म छोटे-बडे का कोई भेद नही है । तू सिर्फ डण्डे की भाषा समझती है । समझाना-बुझाना तेरे आगे कोई अहमियत नहा रखता । ता सुन, अगर तूने फिर जबान खोली तो जिस भाषा को तू समझती है मैं उसी का प्रयोग करूगा ।'

बसन्त के अतिम वाक्य का अर्थ समझते रजनी को देर न लगी । वह अच्छी तरह जान गई कि आग कुछ भी बोलने का मतलब है बसन्त के हाथा पिट जाना । इस डर से उसने अपनी जबान बन्द ही रखी ।

धीरे-धीरे सध्या घिर आई । विशाखा ने खाना पकाया और रजनी से खाने को कहा । लेकिन रजनी अपनी जगह से नही हिली । उसने हा ना का कोई जवाब भी न दिया और कुछ देर बाद जाकर बिस्तर पर सो गई । विशाखा का मा का हृदय था । अपनी अभागी बेटी पर उसे सचमुच तरस आता था । क्रोध म वह बहुत कुछ कह गई लेकिन बाद म उसकी ममता पछताने लगी । न जाने उसके लालन-पालन म कहा कमी आ गई थी कि सब कुछ बरबाद हो गयी ।

उस जनपद का आम...
प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

दूसरे दिन भोर के समय विशाखा की जब आंख खुली तो उसने देखा रजनी अपने बिस्तर पर नहीं है। उसने उसके सामान पर दृष्टि दौड़ाई। सब कुछ ज्यों का त्यों पड़ा था, सिर्फ अटैची गायब थी। विशाखा ने तुरंत ताड़ लिया कि रजनी घर छोड़कर कहीं चली गई। पड़ोसियों ने जब इस बारे में जानकारी चाही तो विशाखा ने तुरंत जवाब दिया, वह लड़ाई-झगड़ा करके अपनी मौसी के घर इंदौर चली गई।

इस संयोग कहें या भविष्यवाणी कि अजाने में रजनी के बारे में विशाखा ने जो कहा वह सच निकला। तीन दिन बाद इंदौर से मौसा जी का पत्र आया—"घबराने की कोई बात नहीं, रजनी सकुशल मेरे पास पहुंच गई है।"

इसके दो चार दिन बाद जब रजनी का चित्त कुछ ठिकाने आया तो मौसा जयराम ने उससे कहा—यदि वह चाहे तो गौरा भिजवा सकते हैं। लेकिन रजनी ने घर जाने से बिलकुल इन्कार कर दिया। उसने मौसा जी से कहा—"वह नौकरी के विचार में इंदौर आई है। वह उसके लिए कोई काम तलाश दें।"

जयराम उसके चिड़चिड़े दिमाग से अच्छी तरह वाकिफ थे। इसलिए उन्होंने दोबारा घर का नाम न लिया। नौकरी के बारे में सिर्फ इतना कहकर चुप हो गए कि—"नौकरी मिल तो जाएगी, लेकिन कुछ समय लगेगा।'

रजनी भी इस बात को अच्छी तरह जानती थी कि नौकरी चाकरी के मामले में बहुत कठिनाई है, इसलिए उस तलाश में कुछ समय तो लगेगा ही। यह सोचकर ही उसने जल्दी नहीं मचाई। लेकिन जब पन्द्रह-बीस दिन बीत गए तो उसके सब्र का बांध टूटने लगा। उसने मौसा जी पर दबाव डालते हुए कहा—"मौसा जी, मुझे इंदौर आए पन्द्रह-बीस दिन बीत गए, लेकिन आप एकदम निश्चिंत हैं।"

"नहीं, मैं निश्चित नहीं हूं। कई एक स्थानों में चर्चा चला दी है। लेकिन अब पहला समय तो रहा नहीं कि जब चाहते थे तभी नौकरियां मिल जाती थीं। आज जनसंख्या बढ़ गई है, लोगों में बेशुमार बेकारी है। कहीं एक जगह खाली होती है तो उसके लिए सैंकड़ों उम्मीदवार मैदान में उतर आते हैं। फिर मैं एक बात और भी सोच रहा हूं, जंचे तो बतला देना—मेरे खयाल में अच्छा होगा यदि तुम नर्स ट्रेनिंग कर लो। दो साल का कोर्स है, जिन्दगी बन जाएगी। लेकिन यदि तुमने ट्रेनिंग पूरी नहीं की, बीच में ही उसे छोड़ दिया, तो याद रहे, ट्रेनिंग काल में जितना तुम पर सरकार खर्च करेगी ब्याज सहित रकम वापस जमा करनी होगी। इस विषय में खूब स्थिरचित्त से विचार करो, फिर मुझे अपना इरादा बतलाओ।"

इसके दो दिन बाद जब मौसाजी ने इस बारे उसका अभिमत जानना चाहा तो उसने ट्रेनिंग कोर्स पूरा करने की हामी भरी। फिर क्या पूछना—इंदौर में ही भरती होनी थी और वहां ट्रेनिंग कोर्स करना था। शर्त सिर्फ एक थी—ट्रेनिंग काल में छात्रावास में रहना आवश्यक था।

घर से वह निकली थी अपने पैरों पर खड़ी होकर शांतिमय स्वावलम्बी जीवन जीने। यों तो शांति और सुख-संतोष की तलाश सभी को रहती है।

रजनी ने भी अपने जीवन में स्थायित्व लाने के लिए एक सोपान का चुनाव तो कर लिया, लेकिन चित्त की स्थिरता उसे यहां भी न मिली। इंदौर जैसा रमणीक स्थान भी उसे शांति न दे सका। वर्ष बीतने पर आए, पहली वार्षिक परीक्षा का समय निकट आ गया, लेकिन चित्त डावांडोल ही रहा। चिकित्सालय के अधिकारियों एवं प्रशिक्षण के लिए आई दूसरी लड़कियों के साथ उसकी खटपट चलती ही रहती थी।

छात्रावास में भोजनालय की ओर से मिलने वाला भोजन बड़ा घटिया

अरघान (कविता संग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

किस्म का था। भोजन प्रबंध में सुधार के प्रश्न को लेकर प्रशिक्षणार्थी नर्सों में दो दल हो गए। कुछ नर्सें रजनी के नेतृत्व में सजन पक्ष तक आ धमकीं। वातावरण गरम हो उठा। स्थिति तोड़ फोड़ तक आ पहुंची। सजन ने जिलाधीश और पुलिस कप्तान को सूचना दी। वहां पहुंचने पर दोनों जिलाधिकारी स्थिति देख, सन्नाटे में आ गए। पुलिस-कप्तान की राय थी—उद्दंड, अनुशासनहीन लड़कियों को प्रशिक्षण से वंचित कर दिया जाय। लेकिन जिलाधीश इस मत से एकदम सहमत न हुए। उन्होंने कहा—'केवल अधिकार और बल प्रयोग से किसी समस्या का समाधान नहीं होता। शांति और सुरक्षा के लिए दूसरे पक्ष की शिकायतों और उनकी मांगों पर भी ध्यान देना जरूरी है। विपक्ष को कुचलकर कोई प्रशासन सफल नहीं हुआ है।"

'ऐसा करने से प्रशासनिक क्षेत्र प्रभावित होगा और अनुशासनहीनता को प्रोत्साहन मिलेगा।" पुलिस-कप्तान ने कहा

'नहीं, अनुशासनहीनता को प्रोत्साहन कभी नहीं मिलेगा।" जिलाधीश ने हंसते हुए कहा—"हां, आप यह कह सकते हैं कि वैधानिकता को चुनौतियों से गुजरना पड़ेगा और जब ऐसा होगा तभी प्रशासन एवं प्रशासक में स्वच्छता आएगी। लड़कियों के आरोप के पीछे कुछ रहस्य अवश्य है। विधिवत जांच के बाद ही कोई निर्णय लिया जा सकता है।"

जिलाधीश के इस सशक्त तर्क का पुलिस कप्तान ने विरोध नहीं किया। जिलाधीश ने आरोपों की जांच की। प्रबंधकों पर लगाए गए आरोप सत्य की कसौटी पर खरे मिले। उन्होंने सजन को आदेश दिया कि 'छात्रावास भोजनालय प्रबंध' की सारी जिम्मेदारी प्रशिक्षणार्थी नर्सों को सौंप दी जाए और उन नर्सों को आदेश दिया कि मासिक आय व्यय का ब्योरा वे विधिवत् तैयार कर सजन के सामने प्रस्तुत करें।

जिलाधीश के परामर्श का नर्सों ने स्वागत किया। सजन को विवश

होकर यह निणय मानना पडा। अब तक यह बोझ सभाले हुए था छात्रा-वास सचालिका सुधा मल्होत्रा। लेकिन इस फसले के बाद इसकी जिम्मेदारी आ पडी रजना और उसकी दो सहेलिया पर।

भोजन प्रबध की घटना को सामान्य असतोष कहकर, दबाने म सफलता तो मिल गई लेकिन इससे भयानक असतोष को न दबाया जा सका जो सुधा मल्होत्रा के जघन्य कमीने कर्मो पर प्रकाश डालता था।

शीत सद रात हो वर्षा ऋतु का निविड अधकार अथवा ग्रीष्म का भयानक तूफान—प्रत्येक रात छात्रावास की कोई न कोई लडकी अपने बिस्तर स लापता रहती थी। यह व्यापार वर्षों स चला आ रहा था। नोटो की गड्डिया का लेन-देन और माल सप्लाई करने का माध्यम थी सुधा मल्होत्रा। यह अनतिक व्यापार जाने कब तक चलता रहता, और रहस्य रहस्य ही बना रहता लेकिन उस दिन इस व्यापार क लिए भूल स एक ऐसी लडकी का चुना गया, जिसने सुधा रानी के दुष्कर्मो पर पडी नकाब उलट दी।

सुधा रानी आज भी उजागर न होती, यदि अनजाने म उनम यह भूल न हुई होती। लेकिन इस भूल नही, अति कहना चाहिए। किसी बात की जब अति होती है तो उसका विस्फोट होता ही है।

घटना स एक दिन पहल सुधा रानी ने सेठ गिरधरदास स पाच सौ रुपए का सौदा किया। सौदे के मुताबिक घटना वाले दिन सुधा रानी प्रशिक्षण के लिए दिल्ली स आई एक भद्रकुल की युवती माला को साथ लेकर ठीक समय पर सेठजी क पास पहुची। आगत स्वागत क बाद सेठजी इधर उधर की बातें करते-करते माला की प्रशसा पर उतर आए। सुधा रानी माला से यह कहती हुई उठ खडी हुई कि 'तुम यही बठो मैं दस मिनट म आती हू—' लेकिन दस मिनट तो क्या, जब घटा भर बीत गया तो माला भी अपनी जगह से उठने लगी। लेकिन उससे पहले ही उठकर

प्रयाण (कविता सग्रह 1984)
150 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

सेठजी द्वार पर पहुंच गए । माला ने सेठजी के खोटे इरादों की थाह लगा ली। वह भी फुरती से दबे पाव उनके पीछे-पीछे ही दरवाजे तक चली गई। सेठजी ने द्वार बन्द करने के इरादे से जैसे ही हाथ आगे को बढाया, माला ने पीछे से अपनी पूरी ताकत से एक जोरदार धक्का दिया। अचानक इस प्रकार की किसी घटना के लिए सेठजी पहले से तैयार न थे। परिणाम स्वरूप वे मुंह के बल दरवाजे से बाहर वाले बरामदे में गिरे। उन्हें चोट इतनी जबरदस्त लगी कि उनकी नाक से खून के फव्वारे फूट पड़े और सामने के दो तीन दांत टूट गए। भयानक दर्द के कारण वे जोर से चीख पड़े। लोग-बाग वहां जब तक एकत्र हों, रास्ता साफ देखकर माला उनसे पहले ही निकल भागी।

उस दिन दिन दौर में जोरदार बारिश हुई थी। वाहनों के प्रबल आवागमन के कारण सड़क जगह-जगह से खराब हो चली थी और उसमें छोटे-बड़े अनगिनत खड्डे निकल आए थे, जिनमें बरसात का गंदा पानी जमा हुआ था।

दुकान से बाहर निकलते ही माला ने छात्रावास की ओर जाने वाली सड़क पर दौड़ लगा दी। वह बतहाशा भागी जा रही थी। बरसात के कारण सड़क के किनारे लगे बिजली के खंभों से जहां-तहां की रोशनी गायब थी। जिन खंभों में प्रकाश था वे भी पावर हाउस और बिजली कर्मचारियों की मौत में मर्सिया गा रहे थे। यदि कहा जाय कि पूरी सड़क ही अंधकार में डूबी हुई थी तो कुछ अनुचित नहीं होगा। दौड़ते में उसके पांव जहां कहीं खड्डे में पड़ते तो बरसात का जमा गंदा जल उछल कर उसकी सलवार और कुरती को रंग डालता। सेठ की दुकान से छात्रावास तक डेढ़ दो किलोमीटर का रास्ता उसने निरंतर दौड़ लगाकर तय किया। छात्रावास के दरवाजे तक आते आते उसका वह दम पूरी तरह निकल चुका था। लड़खड़ाते कदम आकर वह अपने कमरे में खड़ी हुई। उसकी रूम पार्टनर

रजनी अभी तक जगी हुई थी।

माला के कपडो और उसके शरीर का दुदशा देख उसने पूछा—"क्या हुआ ? यह तेरे कपडे कैसे खराब हुए ? तू तो सुधाजी के साथ बाजार गई थी न ?'

"अरे बाबा, जरा धीरज रख ! पहले मुझे कपडे बदलकर सुस्थिर हो लेने दे, फिर पूछ—सब बताऊगी।' माला ने हाफते हुए जवाब दिया और तुरत बाथरूम की ओर चली गई। करीब बीस मिनट बाद जब वह लौटी तो काफी स्वस्थ दिखी। फिर इत्मीनान से अपने बिस्तर पर बैठकर उसने रजनी को आद्योपात सारी दास्तान सुना दी।

यह बात आसानी से उडा दी जाने वाली न थी। उसकी रूम पार्टनर ने अपनी गोष्ठी की सभी लडकियो को एकत्र किया। एक बन्द कमरे मे उनकी लुकी छिपी एक मीटिंग हुई। दूसरे दिन इस घटना की चर्चा जगल के दावानल के समान चारो ओर फैल गई। इस घृणित व्यापार के विरोध मे आवाज बुलन्द करने वाली लडकियो को व्यापक जन समर्थन मिला। विक्षुब्ध वातावरण शात करने के ख्याल से सुधा मल्होत्रा को उच्चस्थ अधिकारियो ने परामर्श दिया कि वह लम्बी छुट्टी पर घर अथवा किसी और दूसरे स्थान मे चली जाए।

इस घटना के लिए छोटे से लेकर मजन तबके तक के सभी अधिकारी समान रूप से जिम्मेदार थे। इसका प्रभाव उन लडकियो पर व्यापक पडा जो सुधा मल्होत्रा के इस घिनौने व्यापार का शिकार बन चुकी थी। सभी ने इस घृणित व्यापार को तरह-तरह की अपमानजनक सज्ञा से विभूषित किया। प्रतिरोध उबल पडा।

इतनी बडी अपमानजनक बात भला सुधा रानी कब बरदाश्त कर सकती थी। उन्होने अपने इर्द गिर्द घूमने वाली कुछ चापलूस लडकियो की गुप्त मीटिंग बुलाई। मीटिंग मे सुधा ने प्रतिशोध भावना से प्रेरित होकर

अरधान (कविता सग्रह 1984)

सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

एक भयानक निर्णय लिया। उन्होंने अपनी एक मराठी शिष्या को सिखा-पढ़ाकर तैयार कर लिया कि रात में चुपके से रजनी की आंखों पर तेजाब डालकर वह उसे अंधी बना दे।

योजना की रूपरेखा तैयार हो जाने के तीन दिन बाद सुधा की चमची दो शिष्याओं ने दिन में रजनी के साथ जान-बूझकर विवाद किया और रात में मौन समय उसकी आंख को लक्ष्य कर उस पर एसिड फेंका और उलटे पांव भागकर गायब हो गई। इधर जलन की भीषण पीड़ा से चीत्कार उठी रजनी।

उसका आर्तनाद इतना तीक्ष्ण था कि पास-पड़ोस के कमरे की अन्य छात्राओं की नींद उचट गई। अपने-अपने बिस्तर से उठकर सब रजनी के कमरे की ओर भागीं। तुरंत अस्पताल के इमरजेंसी वार्ड में भरती कर जिलाधीश और पुलिस-कप्तान को सूचना दी गई। दोनों अधिकारियों के आ जाने पर रजनी ने अपना बयान देते हुए मांग की—"उसे प्रशिक्षण से मुक्ति दे दी जाय।"

घटना चक्र पर दृष्टिपात करते हुए जिलाधीश ने सजन को सलाह दी—"यदि वह जाना चाहती है तो उसे स्वास्थ्य प्रशासन के प्रतिबंधित कार्य से मुक्ति दे दी जाए। घटना को विकृत होने से बचाने के लिए यह उचित भी है।"

सजन ने इस सुझाव का स्वागत तो किया, लेकिन इस शर्त पर कि वह पुलिस से अपनी रिपोर्ट वापस ले ले।

रजनी ने सजन की मांग को अनुचित कहा। लेकिन जिलाधीश के समझाने-बुझाने पर वह मान गई और अपना बयान वापस ले लिया। जिलाधीश की ही मध्यस्थता में एक संधि पत्र तैयार हुआ, जिस पर रजनी और सजन के हस्ताक्षर हुए। बाद में वह संधि-पत्र मुख्यालय में पंजीबद्ध कर लिया गया और रजनी छात्रावास से निकलकर चली आई अपने मौसा के घर।

पाच

आदिकाल से लेकर विदेशी शासन काल तक जाने कितने के आसन हिले—कितने बने—कितने बिगडे आज तक, लेकिन पत्थरो, ईटो और सीमेण्ट चूना निर्मित दिल्ली का सिर गर्वो नत रहा। झुके भी तो कैसे? झुकानेवाला कोई आज तक न मिला।

इसी दिल्ली मे नित्य की चकाचौंध, तडक भडक और शोर शराबे से दूर यमुना-तट पर स्थित एक 'खेर महल' मे रह रहा था सुनील। झोपडी से कुछ हटकर बनी एक दोमंजिला हवेली थी। उसमे रहता था एक कुलीन ब्राह्मण परिवार। कुटुब के मुखिया नर्मदा पाण्डेय पहले हींगनघाट के निवासी थे। जाने किस कारण से वह स्थान छोड, अपने बीवी बच्चो के साथ आ बसे इसी शहर मे।

वह रात बडी भयावह थी। घनघोर घटाओ के निर्बाध छलकते घट रीतने का नाम न ले रहे थे। यद्यपि रात कुछ अधिक न गुजरी थी, लेकिन अनवरत वर्षा के कारण आसपास के बगलों मे गहरा सन्नाटा छाया हुआ था। सिर्फ नर्मदा बाबू की ही एक ऐसी हवेली थी, जहा से रेडियो पर बजते फिल्मी गीतो के रिकार्ड और उनके बच्चो का कलरव सुनाई पड रहा था। बीच बीच मे उनकी पत्नी तारा की आवाज भी आकर कानो से टकरा जाती थी, जो बच्चो को डाट डपटकर सुलाने की कोशिश कर रही थी। अपने शयन कक्ष मे बिस्तर पर लेटे लेटे ही नर्मदा बाबू किसी उपन्यास के पन्नो मे डूबे हुए थे। आकाश अभी भी फटा पड रहा था और

प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
मो 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

तन बदन कपानेवाली पुरवा के सनसनाते याके अभी तक जारी थे। बडे बडे वक्षा मे डालिया टूट-टूटकर राह बाट पर अवरोध वन विछी पडी थी, जिससे छाटे वडे सभी किस्म के वाहनो का आवागमन ठप्प था। चारो ओर जल ही जल नजर आ रहा था। इसी समय किसी की चीख का ददनाक क्षीण स्वर सुनाई पडा—"नही रजनी नही मुझे मत मारो। मैंने तुम्हारा क्या बिगाडा था!"

और, फिर कुछ ही पल मे यह तडप यह चीख शात हो गई।

चीख इतनी आत्त थी कि पास पडोस की हवेलिया जो अब तक गहरे सन्नाटे म डूबी थी, सब की सब चौंक पडी। सार बगलो की बत्तिया जल उठी। लोग खिडकियो के दरवाजे खोल-खोलकर आहट लेने लग आवाज की ध्वनि दिशा की। मुहल्ले के कुत्ते भौंक भौंक कर जमीन आसमान एक किय जा रहे थे।

चीख की आवाज नमदा बाबू के कानो से भी टकराई। वह उछलकर अपन बिस्तर स जमीन पर आ खडे हुए। पुस्तक हाथ स छूटकर नीचे गिर पडी। खिडकी का दरवाजा खोलते हुए उन्होने आवाज दी—"अजी, सुनती हो तारा यशु निशीथ! जाने कहा मर गए सब के सब!"

"क्यो, रात म भी तुमको चैन नही मिलता!" दरवाजा खोलकर उनके कमरे म प्रवेश करती तारा बोली।

तुमको चैन की पडी है—और यहा जान जा रही है।"

किसकी जान जा रही है, तुम्हारी? क्या हो गया?"

'अरे, भागवान, मेरी नही—पडोस मे ही किसी के चीखने की आवाज आई है। बडी दद भरी आवाज थी, तारा! क्या तुमने कुछ नही सुना?"

रेडियो और बच्चो के शोर से मै कुछ नही सुन सकी।' तारा ने जवाब दिया।

'इस सनसनाती हवा के कारण अधिक तो कुछ नही सुन सका सिर्फ अंतिम आवाज जो बड़ी ही दारुण थी कानो में आई। कोई बड़ी दीनता से कराहते हुए कह रहा था—'ये तूने क्या किया रजनी! मैंने तेरा क्या बिगाड़ा था मुझे मत मार!' और भी जाने क्या-क्या बोला, लेकिन सिर्फ इतना ही और वह भी अस्पष्ट कान में पड़ा।

'तुमने अभी क्या कहा? उसने रजनी नाम लिया? स्वर किसी आदमी का था क्या?"

'हां, आवाज किसी पुरुष-कंठ की थी और उसने 'रजनी' नाम लिया था।'

"तो फिर निश्चय ही यह आवाज भैया की थी। जल्दी करो?'

"कौन भैया? तू किसकी बात कर रही है? तू क्या रजनी' को जानती है?'

"यह सब बाद मे बतलाऊंगी! पहले नीचे चलो! पता नहीं वह जिंदा भी हैं, या ?'

'कहां चलें? किसके यहां चलें? तू बतलाती क्यों नहीं?"नर्मदा ने विह्वल स्वर में कहा।

'हो तुम वाकई बड़े मूर्ख! दिल्ली में तो मेरा सिर्फ एक ही भाई है और तुम जानते हुए भी अनजान बन रहे हो?'

'अरे, तू किसकी बात कर रही है सुनील की?

'तब और किसकी? यहां और कौन है मेरा भाई?'

'मुझे माफ करना तारा! अचानक की इस घटना के कारण सचमुच मेरा दिमाग काम नहीं कर रहा है। उर्मिला को जल्दी जगा दो नहीं तो निशीथ डरेगा। टामी की साकल खोल दो क्योंकि घर सूना रहेगा।

नर्मदा और तारा सीढ़ियां उतर जल्दी से नीचे आए और टाव की

रोशनी फेंकते हुए झापडी के पास आए। दरवाजा खुला हुआ था। नमदा न टाच की रोशनी कमरे मे फेंकी। सुनील का आधा धड कुरसी क नीचे लटक रहा था और पीठ म लम्बे फाल का एक छुरा धसा हुआ था। टेबिल जमीन पर लुढका पडा था और शीशा चूर-चूर हो चुका था। फाउटेन पेन जमीन पर खुला पडा था और टबिल के कागजात जहा-तहा बिखरे पडे थे। मेज पर एक लिफाफाबद एक पत्र भी पडा था, जिसपर सुनील का पता लिखा था। शरीर स काफी खून निकलकर जमीन पर जम गया था और जख्म वाले स्थान से अभी रिसना जारी था। कुरसी से आधे लटकते शरीर को देखकर यह अनुमान लगाना कठिन था कि वह जिदा है या मत।

सुनील की हालत देख तारा जोर स चीत्कार उठी—"भइया!"

बौखलाहट म मुमकिन था कि वह उसके शरीर पर ही गिर पडती, लेकिन नमदा ने उसे नजदीक जाने मे रोक लिया क्योंकि मामला बहुत सगीन नजर आ रहा था। तारा अभी भी चीखती ही जा रही थी—"मुझे छोड दो मुझे जाने दो मया के पास जाने दो!"

और नमदा बाबू उसे समझाने का प्रयत्न कर रहे थे—"तारा! होश म आ तारा शाति से काम ल पुलिस के आने से पहले सुनील के करीब जाना ठीक नही! धीरज रख मुझे पुलिस को खबर करने दे!"

लेकिन सुनील का खून देखकर तारा अपने होश मे न थी। नमदा बाबू पुलिस को तुरत खबर देना चाहते थे, लेकिन पत्नी की विक्षिप्तता के कारण कुछ नही कर पा रहे थे।

तभी तारा की चीख पुकार से पास-पडोस के लोग वहा जमा हो गए। उन्ही म स किसी ने फोन से पुलिस को इस घटना की सूचना दे दी।

खबर मिलते ही पुलिस आई और तहकीकात शुरू हो गई। नमदा और तारा ने सुनील के अभिभावक रूप मे अपना परिचय दिया। सुनील

के नाम टेबिल पर पड़े बंद लिफाफे को पुलिस ने अपने कब्जे में ले लिया। पत्र खोलकर देखने से पता चला— उसे छुरा किसी औरत ने मारा है। लिखने वाले ने साफ लिखा था—

'सुनील, तुम कहीं जाओ, मेरी नजरों से छिप नहीं रह सकते! मेरी बरबादी के लिए जिम्मेदार तुम हो। बस मेरी लिस्ट में एक नाम और था— रतन! उसे अपने किए का फल मिल गया, यह तुम अच्छी तरह जानते हो! समाज की नजरों में आज मैं जिंदा हूं, चल फिर रही हूं लेकिन एक जिंदा लाश के रूप में। अपनी आत्मा का खात्मा मैंने कब का कर लिया होता, फिर तुम्हारे किये की तुमको सजा कौन देता? इसीलिए मैंने अब तक आत्महत्या नहीं की। जब तक यह पत्र तुम्हारे हाथों में होगा मैं दिल्ली पहुंच जाऊंगी। दुनिया यही जानती है, और मेरी मां यही कहती है तुम मेरे भाई हो! होगे! उनकी निगाह में लेकिन मेरे लिए तो तुम वह जहरीले नाग हो, जिसका जहर मेरे शरीर को धीरे धीरे गलाता जा रहा है। इसका प्रतिशोध जब तक न चुका लूं, मुझे चैन नहीं मिलेगा।"

'रजनी'

सुनील की नाड़ी अभी चल रही थी। उसमें जीवन की अभी पूरी आशा थी। इन्सपेक्टर ने उसे एम्बुलेंस पर रखवाकर तुरंत अस्पताल भिजवाया। कोठी के इर्द गिर्द दो सिपाहियों का पहरा बिठाकर इंस्पेक्टर नमदा बाबू की हवेली में जा पहुंचे। कुरसी पर बैठते हुए उन्होंने नमदा बाबू से पूछा— यह रजनी कौन है? आपको पता है कुछ इसके बारे में?

जवाब में नमदा बाबू ने नकारात्मक रूप से सिर हिलाया। उन्हें चुप देख तारा ने कहा— इंस्पेक्टर साहब रजनी के बारे में इनको कुछ नहीं मालूम। भैया ने उसके बारे में इनको कुछ नहीं बतलाया। लेकिन मुझको

उन्होंने सब कुछ बतला दिया था। वह भैया पर किसी दिन भी प्राणघातक हमला कर सकती है, यह बात उन्होंने मुझसे कई बार कही थी"—और फिर तारा ने रजनी और उसके परिवार की पूरी कहानी इंस्पेक्टर को सुना दी।

सुनकर इंस्पेक्टर हैरान रह गया—"इतने आरोह-अवरोह के बाद भी यह युवक उस परिवार के प्रति वफादार है? ताज्जुब है! और कोई होता तो कब का त्याग देता इस परिवार को? सबसे बड़ी विस्मय की बात तो यह है कि यह पत्र पोस्ट आफिस के द्वारा मिला है, फिर इस युवक ने इसे खोला क्यों नहीं? खोल लेने पर कम से कम इस खतरे से सावधान तो हो जाता।" इंस्पेक्टर ने कुछ रुककर फिर कहा—"मि० पाण्डेय, आप दोनों में से कोई एक यदि अस्पताल चला जाए तो अच्छा ही होगा। आप लोगों के मौजूद रहने से, होश में आने पर वह अपने को कम से कम अकेला तो नहीं महसूस करेगा। और हां, पुलिस को आप लोगों की मदद की जरूरत पड़ सकती है। मुझे उम्मीद है आप उसे पूरा-पूरा सहयोग देंगे।" बोलकर इंस्पेक्टर कमरे से बाहर चला गया।

उसके जाने के बाद पाण्डेय दम्पती ने आपस में विचार विमर्श किया—अस्पताल में सुनील की तीमारदारी में किसे जाना चाहिए। काफी ऊहापोह के बाद नर्मदा बाबू ने कहा—"तुम अस्पताल चली जाओ, तारा! बच्चों की चिंता तुम मत करो। उन्हें मैं सम्भाल लूंगा। मदद के लिए नौकरानी है ही।"

पति की बातों का तारा ने कोई जवाब न दिया। वह दूसरे कमरे में जाकर अस्पताल के लिए तैयारी करने लगी।

डाक्टरों की सतकता और तारा की एकनिष्ठ सेवा से सुनील के प्राणों की रक्षा हुई । लगभग तीन महीने तक उसे अस्पताल मे रहना पडा । इस बीच पुलिस ने उसे अपना बयान देने को कहा और वह पत्र भी उसे दिखलाया गया, जिसे रजनी ने लिखा था । सब कुछ सुन लेने के बाद जब पुलिस ने रजनी के खिलाफ मुकदमा चलाने की बात की तो उसने मामले को वही दबा देने का परामश दिया । सुनकर इस्पेक्टर ने कहा—"इतनी बडी घटना के बाद भी यदि कुछ न किया गया, तो उसे अपराधो की दुनिया की ओर आगे बढने म शह मिलेगी ।'

"अभी बच्ची है जब उसे अपनी भूल का पता चलेगा तो खुद ही संभल जायेगी ।" सुनील ने बात यही समाप्त कर दी ।

इस केस म सुनील की चुप्पी से पुलिस ने मामला दाखिल दफ्तर कर दिया । पुलिस के अलावा नमदा और तारा आदि सबने राय यही दी थी कि उसे रजनी पर केस दायर करना चाहिए, लेकिन सुनील ने सबकी राय की उपेक्षा कर दी ।

शरीर म कमजोरी काफी आ गई थी । घाव भी अभी पूरी तरह नही भर पाए थे । इसलिए उसे अस्पताल से अभी छुट्टी नही मिली थी ।

इसी समय एक दिन अचानक उसे गौरा गाव से लिखा मा विशाखा का पत्र मिला । लिखा था—

बेटा सुनील,

दिल्ली जाने के बाद से तुमने अपनी इस बूढी मा को एक भी पत्र नही लिखा । लगता है—मुझसे, गौरा गाव से तुम्हारा मन बिलकुल ही उचट गया है । बीच म, कुछ दिन पहले बबई से वसत आया था । बातचीत के सिलसिले म उसी ने बतलाया कि अब तुम गौरा कभी नही आओगे । बेटा वसत ने जो कुछ कहा है क्या वह सच है ? जहा तक मुझे याद है मैंने ऐसी-वैसी कोई बात नही की, जिससे तुम्हें इतना कठोर

निणय लेने पर मजबूर होना पडा है। इस मसले पर एक बार और विचार करना बेटा, कम से कम जब तक मैं जिंदा हू।

बेटा! दो वर्षों की चहलकदमी के बाद जाने कहा कहा का, किस किस घाट-बाट की रोटी तोडती—पानी पीती हुई रजनी गौरा गाव आई है। उसे आए करीब दस-बारह रोज हो रहे हैं। वह कहा कहा रही, क्या करती रही—पूछने पर कुछ नही बतलाती है। ज्यादा जोर देकर कुछ पूछो तो कमर कसकर झगडा करने पर उतर आती है। मैंने तो अब बात करना भी छोड दिया है। इन दो वर्षों म रजनी ने और कुछ किया हो या नही, मेरे लिए एक बवाल जरूर पाल लाई है।

उन दो वर्षों के आरभिक दिनो म वह जब घर से भागी तो सीधे अपने मौसा जयराम जी के पास इदौर गई। इसके बहुत कहने-सुनने पर जयराम जी ने इसे इदौर अस्पताल मे मिडवाइफ कोर्स की ट्रेनिंग म भरती करा दिया। लेकिन यह लडकी अपनी आदत से वहा भी मजबूर रही और साल बीतते-बीतते स्टाफ की ट्रेनीज लडकियो एव मेडिकल ऑफिसरो मे लडाई-झगडा कर बैठी। परिणामस्वरूप कोर्स पूरा किए बगैर ही ट्रेनिंग से बाहर निकल आई।

इसके आने के चार दिन बाद इदौर मेडिकल कालेज से एक नोटिस मिला है—उसके अनुसार रजनी के दस माह के ट्रेनिंग काल मे सरकार ने इस पर लगभग साढे तीन हजार रुपये बाड सहित व्यय किया था। वह रुपया वापस जमा करने का आदेश हुआ है। बाड मे अभिभावक के रूप मे श्री जयरामदास जी ने जिम्मेदारी ली थी।

बेटा, जयरामदास जी बाल बच्चेदार आदमी हैं। उनकी माली हालत—रोज कुआ खोदो रोज पानी पियो जसी है। साढे तीन हजार रुपये जुटा पाना उनके लिए असम्भव है। यदि रुपया समय पर जमा नही हुआ, तो जयरामदास जी का घर-द्वार सब कुछ नीलाम हो जाएगा।

बेटा, यदि ऐसा हुआ तो बेचारे गरीब जयरामदास जी के बाल बच्चे रास्ते के भिखारी बन जाएंगे। नोटिस में सिर्फ पन्द्रह दिन का समय मिला है।

मेरे पास भी रुपये पैसे नही है अन्यथा इस संबंध में कुछ करती अवश्य। लाचार होकर यह खबर तुम्हें दे रही हूं। शायद कोई रास्ता निकाल सको तो जल्दी करने का प्रयत्न करना।

तुम्हारी मा—विशाखा"

पत्र का एक एक शब्द उस पर घन की तरह बरस रहा था। कहा से लाए साढे तीन हजार? इन दो बरसो के भीतर, जहा तक उसे याद है किसी भी महीने में ठीक से साढे तीन सौ की भी आमदनी नही हुई। इनकार करना उसके स्वभाव में न था। इस संबंध में अब वह वसंत को भी नहीं लिख सकता था, क्योंकि वसंत ने अब तक उस पर इतने रुपये खर्च कर दिए थे कि उनका उसने कोई हिसाब किताब ही नहीं रखा। इलाहाबाद में था तो इस बार उसका सारा खर्च शबनम चलाती रही। तो फिर वह किसके दरवाजे पर जाकर साढे तीन हजार रुपयों की भीख मांगे?

इसी उधेडबुन में चिन्ताकुल था कि उसी समय उससे मिलने के लिए दैनिक 'स्वदेश' के प्रधान संपादक श्री भाटिया जी तलाश करते करते अस्पताल पहुंचे। उन्होने आते ही शिकायत की— सुनील जी भई आपने अपना दैनिक कालम 'रोजमर्रा की जिंदगी' क्या बंद कर दिया? तीन महीने हो गए, पाठकों के पत्र पर पत्र आ रहे हैं—मैं उन्हें 'हा' 'ना' का कोई जवाब नही दे पा रहा हू। और आप हैं कि दर्शन ही दुर्लभ हो रहा है। और तो और, आपके पिछले लेखों के चेक आफिस में पडे हुए है। उन्हें न तो आप लेने आए और न ही आपने ऐसा कोई पता ठिकाना लिखा, जहा भेजे जा सकें। क्या बात है? यहा आने पर बडी मुश्किल से

प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

आपकी तलाश कर मका ! और यह अस्पताल मे कस ?"

"इस बारे म ता कुछ न पूछा, भाई ! इसे जीवन का एक भयानक हादसा कह सकत हो।

"लेकिन हुआ कैसे ?" भाटिया जी ने पुन पूछा।

फिर सुनील न आद्योपात उन्हे सारा किस्सा सुना दिया। लेकिन साथ ही उन्हें इस बात से सावधान भी किया कि वह इस समाचार को अपने अखबार का चटपटा मसाला न बना लें।

भाटिया जी ने हसत हुए जवाब दिया—"भरोसा रखो ! और पाठका को क्या जवाब द ? कालम आते सप्ताह म चालू ?"

"जरूर ! और हा, भाटिया जी, जरा सुनिए ता।'

भाटिया जाते जाते फिर वापस लौट आए—"कोई खास बात ?"

"हा, खास ही समझिए ! एक धम-सकट मे फस गया हू।"

"कैसा धम-सकट ?"

"मुझे कुछ रुपयो की सख्त जरूरत है।"

"कितना ?"

'यही कोइ चार हजार'

'कब चाहिए ?"

"आप कब दे सकेंगे ?"

"शाम को।"

"ठीक है !"

दूसरे दिन दैनिक 'स्वदेश' और उसके दूसरे दिन दश के और अन्य समाचारपत्रो की माटी मोटी सुर्खिया म पढने का मिला— 'दैनिक स्वदश' के स्तम्भ 'रोजमरा की जिंदगी' के यशस्वी लखक व पत्रकार सुनील जी

पर प्राणघातक हमला—हत्यारा फरार—सुनील जी राजधानी के मेडिकल कालेज म दाखिल। इस नापाक साज़िश म 'रजनी नाम की एक युवती का हाथ !

फिर तो यह समाचार शहरा से कस्बो और कस्बो से गाव गाव म जा पहुचा। जहा सुनो यही चर्चा— हद हो गइ बडी दुस्साहसी थी वह लडकी ! एक सीधे-सादे पत्रकार पर भी हमला करन से बाज न आई ! "

इस समाचार का लेकर गौरा गाव की तो स्थिति ही विचित्र हो गई थी। घर घर के जवान और बडे बूढे, स्त्री पुरुष सभी तबके के लोग दो-दो, चार चार के जत्थे म चले आते ये सात्वना देन विशाखा के दरवाजे पर। जब से यह खबर विशाखा को मिली थी रोते रोत उसका बुरा हाल हो चला था। वह बार बार कोस उठती रजनी को—' चुडल, इतना बडा काड करके इस गाव मे मुह दिखान तू आई कसे ? शम नही आई तुझे यहा आते हुए ?'

रजनी ने विशाखा का जवाब देने की कोशिश जरूर की, लेकिन विशाखा ने एक ही धमकी म उसकी बोलती बद कर दी— 'यदि तूने उलझन की कोशिश की तो मैं सीधे पुलिस स्टेशन जाऊगी। जो काम सुनील न नही किया, उस मैं पूरा करूगी।

पुलिस का नाम सुनते ही रजनी आतकित हो उठी। वह अच्छी तरह समझ रही थी कि सुनील के बारे म कोई भी उलटी-सीधी बात मा नही सुनगी और जरूरत हुई तो वह पुलिस की मदद ले सकती है। इसलिए उसन इस सबध म जबान खोलकर विवाद बढाना अच्छा नही समझा।

विशाखा को सात्वना प्रदान करन का गाव के मुखिया और सरपच भी उसके दरवाजे पर आए। उन्हाने रोती विशाखा को धीरज बधाया और हौसला बुलद रखन की प्रेरणा दी। उसका उत्साह बढाते हुए उन्हाने कहा— धन्य हो विशाखा—सचमुच तुम धन्य हो, जो तुम्हें सुनील जसा

प्रधान (कविता सग्रह 1984)

मा 50 गोरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

पुत्र मिला। आज हम और हमारा गाव ही नही, सारा देश उसके गुण गा रहा है और थूक रहा है रजनी के नाम पर।"

"मुखिया जी ! " उनकी बात काटते हुए विशाखा ने कहा।

"कहो, कुछ कहना चाहती हो !"

"हा, आप मुझे मेरे बेटे के पास नही ले चल सकते ?"

'क्यो नही ? चलोगी !"

"चलना तो चाहती हू, मुखिया जी ! सुनती हू वह अस्पताल मे है। दुनिया भर के लोग उससे मिल रहे हैं। ऐसे मौके पर मा होकर यदि मैं न पहुची तो क्या सोचेगा वह अपने मन म ? और, लोग क्या कहेंगे ? यही न, सिर्फ कमाई खाने के लिए मैं मा हू और जब उस पर मुसीबत आई तो उसे देखने तक न गई।"

"तुम्हारा सोचना ठीक है, भाभी ! ऐसी मुसीबत की घडी मे तुम्हें वहा पहुचना ही चाहिए। अच्छा, तो चलना ही तय रहा। सरपच की भी यही इच्छा है। तो हरि इच्छा इसी बहाने दिल्ली का दशन भी हो जाएगा। तब जो कुछ तैयारी करनी हो, आज रात तक कर लेना। भोर होते ही निकल पडेंगे।"

बोलकर मुखिया और सरपच अपने-अपने घर चले गए।

१ दिल्ली मेडिकल कॉलेज के प्राइवेट वार्ड के एक कमरे मे बिस्तर पर लेटा था सुनील। उसे घेर हुए चारो ओर बैठा था पत्रकारो और बडी-बडी सामाजिक सस्थाओ के प्रतिष्ठित कायकर्ताओ का एक विराट समूह। पूरा कमरा दशनार्थियो और मुलाकातियो से भरा पडा था। सुनील बोल रहा था—"भाटिया साहब, मैंने इसीलिए आपको मना किया था कि यह समाचार आप अखबार की सुर्खिया म न आने दें ! देखा आपने !

मेरे कारण कितने लोगो को परेशानी हो रही है। जाने क्या बीतती होगी मेरी मा पर इस समाचार को सुनकर। एक तो वृद्धावस्था, दूसरे शरीर से वह यो ही हमेशा किसी न किसी बीमारी से परेशान रहती हैं। मुझे डर है वह रो रोकर कहीं अपनी आखें न अधी कर ले। आपने अपनी समझ से तो यह अच्छा ही किया, लेकिन फिर भी यह अच्छा नहीं हुआ।

"अरे, नही यार! मैंने जो कुछ किया, ठीक किया। तुम ठहरे सीधे आदमी। पुलिस तक को तुमने कारवाई से रोक दिया। यदि मैं इस घटना को अखबार मे भी न देता तो इससे अपराधी को शह मिलती और वह फिर तुम पर इसी प्रकार घातक हमला करता। इस घटना के समाचारपत्र मे आ जाने से अपराधी बेनकाब हुआ है। अब वह जो कुछ भी करेगा, करने से पहले उसे काफी सोचना विचारना पड़ेगा।"

इसी समय बाहर पहरे पर बैठे पुलिस के एक सिपाही ने अंदर सूचना दी—'साहब एक अधेड उम्र औरत और कुछ और भी बडे-बूढे बुजुर्ग आपसे मिलने आए हैं। क्या उन्हे अदर भेज दें?'

"कौन है वे लोग? कुछ पूछा नही?"

'वे अपने को गौरा गाव का निवासी बतलाते हैं।

'गौरा के रहने वाले हैं? कौन हो सकते है?' इतनी दूर से भला कौन आ सकता है? वह काफी समय तक सोचता रहा। फिर बोला—'अच्छा उन्हें अन्दर भेज दो!"

परदा हटाकर एक औरत के साथ तीन चार आदमियो ने जैसे ही भीतर प्रवेश किया, देखकर वह चकित रह गया—

'माजी, आप!' और उठकर चाहा कि निकट जा मा के चरणों मे अपना सिर टेके, लेकिन उठ न सका। जैसे ही वह खडा हुआ कि सिर मे चक्कर सा आने लगा। करीब-करीब उसकी स्थिति

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
प्रधान (कविता संग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

चारपाई पर गिरने जसी हो गई। पाव थरथरा रहे थे। तभी झपटकर एक युवती ने उसे सभाला—"तुम लेट जाओ, सुनील !"

सुनील को आवाज जानी पहचानी-सी लगी। उसने पलटकर पीछे की ओर देखा। चेहरे पर दृष्टि पड़ते ही वह चकित रह गया—"शबनम, तुम !"

"हा पहले तुम लेट जाओ ! फिर बातें करना !"

"लेकिन, मा ! "

मा की दशा भी बेटे से कुछ कम करुण न थी। वह तो सुनील का चेहरा देखते ही ठगी ठगी-सी रह गई थी। पाव मे जैसे पाला मार गया। वह आगे बढकर बेटे को अपने आचल म छिपा लेने को आतुर थी, लेकिन बढ न पाई। आखें फाडकर एकटक बेटे की सूरत ही निहारती रही। उन्हें अवाक, विस्मित, ठगी-सी खडी देख सुनील ने कहा—"शबनम, तुम मा को देख रही हो ? उसे जल्दी मेरे पास लाओ, नहा तो उसकी हालत खराब हो जाएगी।"

"ला रहा हू, मेरे दोस्त ! तुम चिन्ता न करो ! मैं भी अब पहुच गया हू। किसी का कुछ नही होगा !"

"अरे, वसन्त ! तुम कब आए ?"

"अभी चला ही आ रहा हू ! शबनम के साथ !"

'अखबारो मे जसे ही पढा, उसी क्षण बम्बई मे रवाना हो गया। सीधे गाव गया। सोचा मा को भी लेता चलू। लेकिन पता चला, मा एक दिन पहले ही मुखिया और सरपच चाचा के साथ दिल्ली के लिए रवाना हो गई है। फिर मैंने उलटे पाव स्टेशन पर आकर गाडी पकडी। रास्ते मे सयोग से उसी डिब्बे मे शबनम भी आ गई।' कहते हुए उसने मा को ले जाकर सुनील के पलग पर बिठा दिया।

अदभुत था मा बेटे का यह मिलन। दोनो ही एक दूसरे का अपने

आलिगन मे समेटे फूट फूटकर रो पड़े। शबनम और वसत ने मा-बेटे दोनो को शात कराने की चेष्टा की। लेकिन वे रोते रहे तो रोते ही रहे। लगा—जाने कितने वर्षों बाद मिल रहे है मा-बेटे ! दृश्य निहार वहा उपस्थित सभी की पलकें डबडबा आइ। वातावरण एकदम गभीर हो उठा।

इसी समय भाटिया ने उठकर उपस्थित लोगो से निवेदन किया—'बधुओ ! सुनील जी के गाव से उनकी माताजी व और दूसरे सबधी मिलने आ गए हैं। इसलिए उचित यही होगा कि हम न्हे अब एकात दे दें। वसे हम लाग तो सुनील जी के करीब ही हैं, मुलाकातें फिर होगी ही। लेकिन ये लोग दूर दराज से आ रहे ह बार-बार तो आएग नही !

भाटिया के अनुरोध पर लोग एक एक कर खिसकने लगे। सबसे अत म जब भाटिया ने चलना चाहा तो सुनील ने उसका हाथ थाम बिठाते हुए कहा—' लकिन तुम कहा चले ?

"अरे, भाई ! दखत नही, मा आ रही है गाव से। और भी कितने बुजुग साथ आए हैं भेंट मुलाकात का फिर मैं यहा रहकर तुम लोगा के बीच दाल भात म मूसलचन्द क्या बनू ? मैंने सोचा !

बात काटते हुए सुनील ने कहा—'हा हा, मैं भी समझता हू तुम क्या सोच रहे हो। अब यहा बठो, तुम्हारी जरूरत है। '

'अच्छा भाई, तुम कहते हो तो बठ जाता हू।'

"बठना तो पडेगा ही। जब आग तुमने लगाई है तो तुम्ही को बुझाना भी पडेगा।

'अरे, बेटा ! ऐसा नहा कहते किसी को ! यह लडका तो मुझे बडा भला, बडा समझदार लगा। कौन है यह ?' मा ने सुनील की बात काटते हुए कहा।

"यह ! यह दनिक 'स्वदेश का मालिक है मा ! यानी मेरा भी

उस जनपद का कवि हू (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

मालिक ! यह खबर अखबार मे देकर, इस जरा सी वात का इतना तूल इसी ने दिया, मा ! इसने सबको परेशान किया !"

"सुन रही हो न, मा ! इतनी वडी घटना घट गई और यह छोटी-सी बात कहता है और तो और, मा ! हम लोग यही थे और इसने खबर तक न दी गनीमत हुई कि मैं तलाश करता अचानक आ पहुचा तो पता चला कि इसके साथ इतना बडा हादसा हुआ है। नही तो जाने क्या हो जाता !"

'सचमुच बेटा, कितनी बडी भूल तूने की। अगर कुछ ऐसी-वसी बात हो जाती तो ?"

"कुछ नही होता, मा ! तुम तो नाहक घबरा रही हो ! और हा, यार भाटिया ! मैंने तुमसे कुछ रुपए के लिए कहा था, अब उसकी जरूरत है। मा को चाहिए !"

"रुपए तो मैं लाया हू !" और बैग से निकालकर नोटो के बडल उसकी ओर बढाते हुए कहा—"यह ले, पूरे चार हजार हैं ! लेकिन मेरी समझ मे नही आता—माजी अकेली है न, फिर इतने रुपए एक साथ लेकर क्या करेंगे वह ?"

मा ने लम्बी सास खीचकर कहा—"अरे बेटा, कुछ न पूछ ! उस कलमुही औलाद ने मुझे क्या-क्या नाच नही नचाया !"

"किसकी वात कर रही हो, मा ! क्या किया उसने ?" भाटिया ने गभीर होकर पूछा।

"उसी रजनी की बात है, बेटा ! जो आज सुनील जैसा हीरा भाई पाकर भी, इसकी जान की गाहक बनी हुई है " और मा ने पूरी दास्तान सुना दी।

सुनकर भाटिया जी भी गभीर हो गए। काफी देर बाद बोले—"यह रुपए तो तुम रखो, मा ! इस किसी को देने या कही जमा करने की

जरूरत नहीं है। इंदौर वाला केस मैं खत्म करा देता हूं। मुझ पर भरोसा रखो! स्वास्थ्य मंत्रालय से मैं आज ही बातचीत कर लूंगा! एक तिनके की भी नीलामी नहीं होगी!"

"सच, बेटा!"

"हां, मां! आप बिलकुल चिंता न करें! अच्छा, अब मैं चलता हूं। आप लोग बातचीत करें," बोलकर भाटिया भी चले गए।

उनके जाने के बाद सुनील ने शबनम की ओर देखकर कहा—"शबनम, मां से आशीर्वाद नहीं लोगी!"

उठकर शबनम मां का चरण स्पर्श करने के लिए आगे बढ़ी। चांद जैसे मुखड़े पर दृष्टि पड़ते ही मां भाव विभोर निहारती हुई बोली—'कैसा आशीर्वाद, रे? कौन है यह? अब तक तूने पहचान भी नहीं कराई?'

'ऐसी कोई खास बात नहीं है, मां! तुम पहली बार आई हो न, इसलिए कहा।'

"नहीं मां! यह तुमसे छिपा रहा है! शरमा रहा है बतलाने में!" वसंत बोला।

'क्या बात है, बेटा सुनील? भला मां से कैसी शरम रे!'

'कुछ नहीं, मां! यह ऐसे ही बक रहा है!' सुनील ने झेंपते हुए कहा।

अच्छा, बेटा! मैं ऐसे ही बक रहा हूं? मां, यह तुमसे कभी नहीं बतलाएगा!" वसंत बोला।

'फिर तुम ही बतला दो ना? मुझे चक्कर में क्यों डाल रहे हो तुम दोनों?' विशाखा बोली।

मैं चक्कर में नहीं डाल रहा, मां!" वसंत ने कहा—'तुम्हें याद है कुछ दिन पहले तुमने सुनील के लिए एक बार मुझसे बहू की चर्चा

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

की थी।"

"हां, याद है। लेकिन सुनील कहा सुनता है मेरी ! लगता है यह इच्छा मन ही मन दवाए मैं इस दुनिया से कूच कर जाऊंगी !" बोलकर विशाखा न एक जोर की लबी सास ली।

"निराश क्यो होती हो, मा ! खूब अच्छी तरह देख लो अपनी बहू को यही है सुनील की जीवन सगिनी और मेरी भाभी !" फिर वसत जोर से हस पडा सुनील की ओर देखकर।

सुनील को कुछ झेंप सी आ गई। उसने शबनम को आख से इशारा किया। शबनम ने झुककर अपना सिर मा के चरणो म रख दिया। मा ने शबनम को नजर भर देख तो पहले ही लिया था। फिर यह सुनकर कि वही उसकी बहू है, फूली न समाई। शबनम का सिर उठा, वह बार बार उसका माथा चूमने लगी।

तभी वसत ने फिर टोका— 'लेकिन, मा ! तुमने बहू की जात बात नही पूछी !"

"बेटा, जीवन म जिन हादसो से गुजरना पडा, उन्होने मुझे बहुत बडी शिक्षा दी ! मेरी आखें खुल चुकी हैं। मुझे जात पात, छुआछूत से अब कोई मतलब नही ! बस, शबनम मेरी बहू है यही काफी है कितनी सुदर जोडी है दोनो की !"

"बहुत अच्छी है, मा जी ! मैंने कितनी बार कहा भैया स, घर बसा लो ! घरवाली आ जाएगी और उसके हाथ का बना भोजन जब समय से पट म जाएगा तो सेहत सुधर जाएगी। लेकिन ध्यान ही नही देते !" तारा न हा म हा मिलाई।

"क्या रे, ठीक ही तो कह रही है, तारा ! कब कर रहा है शादी ?' विशाखा ने पूछा।

"इतनी जल्दी भी क्या है, मा ! समय आने पर सब अपने आप हो

जाएगा।' सुनील बाला।

समय इसी तरह की बातो म बेमतलब नष्ट हो रहा था। सुनील ने बात को मोड देते हुए वसत से कहा—"दोस्त, मुखिया और सरपच चाचा इतनी दूर स आए हैं। न जान फिर कभी इन लोगो का यहा आना होगा भी या नही, इसलिए तुम इन्ह दिल्ली-दशन करा दो तो अच्छा है। माता जी और शबनम को भी साथ ल लो।'

'नही, मैं नही जाती! तुम मिल गए बस मेरे लिए यही काफी है।' विशाखा बोली।

"चली जाइए न, माता जी! दिल बहल जाएगा। यहा अकेली बैठे-बैठे ऊब जाइएगा।' सुनील ने आग्रह किया।

'अकेली क्यो? तारा मरे साथ है। फिर अब मेरी बहू भी मेरे पास है बातचीत क लिए क्या बहू, तू ता रहगी न मेरे पास?'

'जरूर रहूगी, मा जी! आप पहली बार तो मिली हैं। भला, आपको छोडकर कैसे जा सकती हू?'

'तो फिर एसा कीजिए, आप लोग मेरे घर चले! वहा इत्मीनान से नहाना धोना और भोजन भी हो जाएगा और कुछ आराम कर लगी तो यात्रा की थकान जाती रहेगी।' तारा न सुझाव दिया।

'हा, बेटी, यह तुमन मतलब की बात कही।

और इसके बाद सभी लाग प्राग्राम क मुताबिक अपनी अपनी गतव्य-दिशा की ओर चल दिए।

उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

छह

भाटिया ने स्वास्थ्य सचिव मेनन के द्वार पर जाकर तीन बार दस्तक दी। लेकिन हर बार उन्हें यही उत्तर मिला—"साहब रक्तचाप से पीडित हैं। डाक्टरा ने उनको किसी से मिलने और बातचीत करने से मना कर दिया है।

इस भाग-दौड मे सध्या के चार बज गए। युद्ध म पराजित घायल सनिक की भाति थके मादे, क्लान्त घर आकर निराशाजन्य नि श्वास छाडते हुए व आरामकुर्सी पर लेट गए। उनके हाव-भाव से ही ममता ने उनकी असफलता का ताड लिया। लेकिन यह उनपर तनिक भी जाहिर न होने दिया। निकट आकर पखे का स्विच ऑफ करती हुई बोली—"क्या हुआ ?"

भाटिया ने सपूण कहानी सुनाते हुए कहा—' मैंने मा जी को वचन दिया है कि केस विभागीय कायवाही कराकर खतम करा दूगा। नीलामी के सिफ चौबीस घटे बाकी रह गए हैं। मेनन से मेरी मुलाकात हो नही पा रही है, नही तो मामला कब का रफा-दफा हो गया होता।

ममता ने कहा—"स्वास्थ्य सचिव से मिलने का काम आप मुझ पर छोड दीजिए। आप फिलहाल इदौर के कलक्टर से दूरभाप पर बातें कर स्थिति से निबटने की कोशिश कीजिए। मैं अभी मेनन साहब के बगल पर जा रही हू।"

बाहर आकर ममता ने गैरेज से गाडी निकलवाई

ठहरने का आदेश देकर वह स्वयं ड्राइव करती हुई मेनन साहब के बगले की ओर रवाना हो गई।

बगले पर पहुचकर उसने घंटी बजाई। नौकर बाहर आया। ममता इस बात को पहले ही भाप चुकी थी कि मेनन से सीधा संपर्क होना मुश्किल है। इसलिए जैसे ही नौकर ने कहा— 'साहब से मुलाकात होना मुश्किल है।'

'सुनो, मैं साहब से नही, मेमसाहब से मिलने आई हू।" ममता ने कहा।

'ठीक है आप बैठिए । मैं मेम साहब से पूछता हू।" और उसने ममता को बैठने के लिए बरामदे म पड़ी बेंत की कुर्सियों की ओर इशारा किया।

थोड़ी ही देर म नौकर बाहर आया और बोला—"मेम साहब आपको भीतर बुला रही हैं।'

ममता सेवक के पीछे पीछे भीतरी बैठक म दाखिल हुई। स्वागत सत्कार के बाद बातचीत के प्रसंग म श्रीमती मेनन ने उलाहना के स्वर मे कहा— 'कितनी बार खबर भिजवाई, लेकिन आपने आने का नाम ही न लिया।"

ममता ने मधुर स्वर म उत्तर दिया—"समाज कल्याण बोर्ड के रचनात्मक कामो म कुछ अधिक उलझ जाने से इतना अवसर ही नहीं मिलता कि कही जाना आना हो सके। आपकी ही नहीं, बहुतो की यही शिकायत है। लेकिन क्या करू यदि इधर उधर जाती हू तो बोर्ड का काम चौपट होता है। और देखिए न, आज भी अगर जरूरी काम न आ पड़ता तो कहा आई होती ?

ममता की हा म हा मिलाते हुए श्रीमती मेनन बोली—"ऐसा कौन सा काम आ पड़ा कि आपको इतना कष्ट उठाना पड़ा ?'

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
अरथान (कविता संग्रह 1984)
, 50 गोरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

ममता ने आद्योपात पूरा ब्योरा सुनाते हुए मेनन साहब के पूर्व आश्वासन की याद दिलाई—"भाटिया साहब जब उनसे पिछली बार मिले थे तो साहब ने कहा था—नीलामी वापस ले ली जाएगी—लेकिन कल नीलामी की आखिरी तारीख है। जब घर और जायदाद नीलाम ही हो जायेंगे तो फिर साहब के आश्वासन की कीमत ही क्या रही ?"

स्थिति की गंभीरता को स्वीकार करते हुए श्रीमती मेनन ने कहा—"आप बैठें, मैं साहब से बात करती हू।' और वह उठकर मेनन साहब के कमरे म चली गइ।

शाम के प्राय छ बज रहे थे। रक्तचाप का दौरा कुछ कम होने से मेनन साहब प्रसन्नचित्त अपने बिस्तर पर लेटे थे। दरवाजे पर डाक्टर के आदेशानुसार परिचारिका सजग प्रहरी की भाति कुरसी डाले उस पर बठी हुई थी। श्रीमती मेनन पति के पास आकर बोली—"अब कैसी है तबीयत ?'

"अभी तो कुछ ठीक हू।' श्री मेनन ने लेटे-लेटे ही धीमे स्वर म कहा—"क्यो, क्या बात है ?"

"समाज कल्याण बोर्ड की सचालिका श्रीमती ममता देवी आई हैं। बोल रही हैं, जब कल नौ बजे सवेरे इदौर के जयरामदास जी का घर नीलाम हो ही जाएगा तो फिर साहब के आश्वासन का मतलब ही क्या रहा ?"

"अरे यह तो मैं भूल ही गया।" और उन्होंने तुरत अपना हाथ फोन की ओर बढाया। लेकिन रिसीवर हाथ म लेने स पहले ही उन्ह कुछ ऐसा महसूस हुआ जसे उनका मज फिर उभर रहा है।

इसी समय उनकी देखभाल करने वाले डाक्टर ने किया। देखा, वह कुछ बेचैन से हैं। तुरत बोला—

कैसे बिगड़ी ?"

"सर ! ' और उसने श्रीमती मेनन की ओर संकेत कर दिया।

डाक्टर कुछ बोलने ही जा रहा था कि श्री मेनन जो वास्तव में पत्नी की बात से कुछ मर्माहत से हो उठे थे, अपने को संभालते हुए बोले— 'मुझे कुछ नहीं हुआ है, डाक्टर साहब ! आइए बैठिए !" और उन्होंने पूरी दास्तान डाक्टर को सुनाते हुए श्रीमती ममता देवी को अपने पास बुलवाने का आग्रह किया।

डाक्टर ने उनके निवेदन की उपेक्षा करते हुए कहा—"आपके स्वास्थ्य को देखते हुए, मैं आपकी इस बात से सहमत नहीं हूं।"

डाक्टर के बेलाग उत्तर ने श्री मेनन को बेचैन बना दिया। वह व्यथित-विह्वल स्वर में बोले— डाक्टर, मेरा जीवन इतना कीमती नहीं, जितनी कीमत उस गरीब की झोपड़ी की है। उसमें गुजारा करने वाले अनेक प्राणी आज फुटपाथ पर आ जाने की स्थिति में पहुंच गए हैं। मैं अपने अकेले के सुख के लिए उन निर्दोष प्राणियों का अभिशाप नहीं लेना चाहता। निर्दोषों के अभिशाप से मुझे सुख कभी नहीं मिलेगा।' वे खिन्न मुद्रा में डाक्टर की ओर देखकर आगे बोले—' डाक्टर माना कि आप एक डाक्टर की हैसियत से कर्तव्य पालन कर रहे हैं। लेकिन आप सोचिए, हम जिनकी सेवा के लिए सचिव बनाए गए अगर मेरे रहते हुए उनका कुछ नुकसान हो तो इसका लाभ मुझे क्या मिलेगा ? '

फिर वह पत्नी की ओर देखकर बोले— 'आप ममता देवी को मेरे पास लाए !

श्री मेनन कोयम्बतूर के एक कुलीन ब्राह्मण परिवार से संबंध रखते थे। भौतिक जगत में पलकर भी आध्यात्मिकता के प्रबल समर्थक थे। उनका कहना था कि "मानवी कानून से भी बड़ा एक कानून है जिसके सामने एक दिन सभी प्राणियों को जवाब देना पड़ता है। विज्ञान के

उस जनपद का कवि हूं (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
10 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

स्नातक होकर भी उन्हें प्रकृति के चमत्कारो मे अदृश्य सत्ता की एक झलक मिलती थी। मित्रो के बीच वार्तालाप के समय प्राय कहा करते थे—"प्रकृति यानी ईश्वर की सत्ता का समर्थन उस दिन त्याग दूगा, जिस दिन विज्ञान जीव जगत को अक्षुण्ण अमरता का अभयदान दे देगा।"

ममता देवी के आ जाने पर उन्होंने डाक्टरी आदेश की परवाह न कर कहा—'आप जिलाधीश इन्दौर से दूरभाष पर सपर्क स्थापित करें और उन्हें अच्छी तरह बोध करा दें कि आप जो कुछ बोल रही हैं, वे सभी शब्द मेरे हैं।"

ममता ने जिलाधीश से सपर्क कायम किया और उन्हें श्री मेनन का सदेश सुनाया—"कल रजनी के अभिभावक इदौर निवासी जयरामदास जी की सम्पत्ति नीलामी पर न चढाई जाये। घटना से सबधित सम्पूर्ण कागजात इसी समय तहसीलदार के पास से वापस मगा लिए जाए। श्री मेनन साहब विभागीय स्तर पर छानबीन के द्वारा इसका समाधान निकालने के पक्ष मे हैं।"

पास से वापस मंगवा लिए गए। तहसील कार्यालय में नोटिस बोर्ड पर लगा नीलामी नोटिस फाड़कर फेंक दिया गया। नीलामी रद्द होने की सूचना मौसा जयरामदास के पास भिजवा दी गई। लेकिन दूध का जला मुंह छाछ भी फूंक फूंककर पीता है। रजनी के क्षण क्षण के बदलते रंग ढंग के कारण इस पर किसी को विश्वास नहीं हो रहा था। दूसरे दिन यानी नीलामी की घोषित तारीख पर जब तहसील ऑफिस का कोई भी कर्मचारी नीलामी के नाम पर मौसा जयरामदास के दरवाजे पर न पहुंचा तो सबकी जान में जान आई।

इसके दो दिन बाद स्वास्थ्य मंत्रालय का लिखित आदेश भी जिलाधीश इंदौर को प्राप्त हो गया।

सुनील अस्पताल से मुक्ति पाकर पुनः अपने उसी यमुना किनारे के खेरमहल में लौट गया। अखबार में उसने फिर से स्थायी स्तम्भ लिखने आरंभ कर दिए। लेकिन इसी समय भाटिया ने उसे एक दिन बड़ा मनहूस समाचार दिया—'पिछले दिनों सरकार की नीति रीति के संबंध में उसने लगातार कई दिनों तक जो स्तम्भ लिखे, उससे प्रशासक वर्ग एकदम क्षुब्ध हो गया है। उन्होंने पत्र के विरुद्ध कठोर कार्यवाही की धमकी भी दी है। इतना ही नहीं, इसी कारण आजकल उनके अखबार का सरकारी विज्ञापन मिलने बंद हो गए हैं।

"यद्यपि जन साधारण की रुचि उस स्तंभ के प्रति है और उस स्तंभ के कारण ही पिछले दिनों से पत्र का सर्कुलेशन कुछ बढ़ भी गया है। लेकिन मात्र सरकुलेशन बढ़ने से ही अखबार की प्रिंटिंग, लेबर और कागज आदि का खर्च तो नहीं निकल जाता। इन सब खर्चों को पूरा करने के लिए विज्ञापन का मिलना बहुत जरूरी है। विज्ञापन न मिलने से प्रति-

उस जनपद का कवि हूं (कविता संग्रह 1981)
अरघान (कविता संग्रह 1984)
...नगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

दिन पत्र को आर्थिक दृष्टि से बहुत जबरदस्त घाटा बरदाश्त करना पड रहा है। यदि यही स्थिति कुछ दिना तक चलती रही तो हम मजबूर होकर पत्र का प्रकाशन बद करना पडेगा और यदि पत्र बद हुआ तो सैकडो लोग बे-रोजगार हो जाएगे, अतएव हमने अब यह स्तभ बद करने का निश्चय कर लिया है।

तुम मेरी सूचना को अ यथा न लेना। कलम के सिपाही हो मेरे अखबार म न सही किसी और के यहा ही सही, कुछ-न-कुछ लिख पढकर अपनी जीविका ता चला ही लोगे। लकिन जहा तक मरा खयाल है—मेरी तरह तुम भी यह कभी नही चाहाग कि तुम्हार एक के कारण सैकडो लोगो की रोजी-रोटी पर आच पहुचे।"

भाटिया के इस पत्र से सुनील को सचमुच बडा धक्का लगा। 'स्वदेश' ही एक ऐसा पत्र था, जो निष्पक्ष एव स्वतत्र विचारा का निर्भीक पोषक था और यही कारण था कि वह सुनील की उस आग बरसती कलम को निभय होकर अपने कालमा मे स्थान देता था। लकिन वहाँ स जवाब मिल जाने के बाद, अब दिल्ली म एक भी एसा समाचार पत्र न था जो तटस्थ एव निष्पक्ष नीतिया का पोषक हा। अधिकाश दनिक, साप्ताहिक एव मासिक दिखलाने को तो अपने पत्र के मुखपष्ठ पर यही लिखते थे कि वे निष्पक्ष एव स्वतत्र विचारो के पोषक हैं—लकिन वास्तविकता यह थी कि करीब करीब सभी सरकार के पिटठू थे। कुछ सरकार विरोधी पत्र अवश्य थे—लेकिन वे भी किसी-न किसी गुट विशष स सबद्ध थे इसलिए उनके निष्पक्ष एव स्वतत्र होने का सवाल ही पैदा नहा था।

कहावत है, गाठ म पसा है तो दहात भी शहर लगता और गाठ मे पैसा नहीं तो शहर भी दहात म ... से सपक टूट जाने से सुनील की मानो हालत एकदम

अब वह यह सोचने के लिए विवश हो गया कि दिल्ली में रहे या कहीं और चला जाए? लेकिन कहा?' मन असतुलित विकल विगलित हो उठा। इसी मन स्थिति मे उसे इलाहाबाद से शबनम का भेजा गया पत्र मिला, जिसने उसे और अधिक वौखला दिया और बिना कुछ सोचे विचारे वह रवाना हो गया इलाहाबाद के लिए।

दिल्ली से लौटकर शबनम जब इलाहाबाद पहुची तो देखा, उसकी मा जछन उस पर तीर कमान ताने बैठी है। शबनम पूरी तरह यात्रा की थकान भी न मिटा पाई थी कि जछन ने आकर पहला विस्फोट किया—
"छोकरी, बिना किसी सूचना के कहा थी इतने दिनो तक?"

'दिल्ली गई थी।'

'ऐसा कौन-सा काम आ पडा कि बिना किसी को खबर किए अचानक तुझे दिल्ली जाने का फितूर सवार हो गया?"

'सुनील के पास। उसको किसी ने छुरा मार दिया था। हालत काफी चिंताजनक हो गई थी। शबनम ने बिना किसी लाग लपेट के नम्र स्वर मे जवाब दिया।

सुनील सुनील सुनील! सुनते-सुनते कान पक गए। जब देखो तब उसी के गीत गाती रहती है। वेश्या की औलाद होकर महलो के ख्वाब देख रही है।"

मैं महलो के ख्वाब तो नहीं देख रही हू, मा! लेकिन जिस नरक मे तुम पलती आ रही हो, उसी मे धकेलने का सपना तुम जरूर देख रही हो! तुमने ऊची से ऊची तालीम दिलवाई, क्या इसी नरक के लिए? लोग तालीम ग्रहण करते हैं जीवन-स्तर उठाने के लिए, शराफत का जीवन जीने के लिए लेकिन तुम्हारी नजरो मे इनकी कोई कीमत

उस जनपद का कवि हू (कविता संग्रह 1981)
परधान (कविता संग्रह 1934)
८० मोतीनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

नहीं ? कीमत है तो सिर्फ नरक की जिंदगी की ! लेकिन कान खोलकर सुन लो, मां ! मैं तुम्हारे इस नरक पर थूकती हूं। मैं एक शरीफ इंसान की तरह जिंदगी बिताना चाहती हूं और मेरे इरादे में किसी ने दखल देने की कोशिश की तो मुझसे बुरा कोई न होगा। मां होकर, कहां बेटी की इज्जत की हिफाजत करनी चाहिए, लेकिन वह तो हुआ नहीं, उलटे नगर सेठ से मेरी नथ उतरवाने का सौदा कर रही हो ! छि छि—धिक्कार है ऐसी मां को !" शबनम का स्वर एकाएक कठोर हो उठा।

लेकिन जछन भी कुछ कम न थी। जीवन में उसने कभी किसी की दो बातें नहीं सुनी। किसी ने दो कहीं तो उसने उसी दम उसे दस सुनाई। फिर उसी की औलाद उससे जबान लड़ाए, भला वह कब बरदाश्त कर सकती थी ? दहाड़कर बोली—"हां हां, इसी दिन के लिए तैयार किया ! वेश्या की औलाद, वेश्या नहीं बनेगी तो क्या महलों की रानी बनेगी ? सुना नहीं तूने, वेश्या की कोख से जब कोई लड़का जन्म लेता है तो वह रोती है—शोक मनाती है। लेकिन जब लड़की जन्म लेती है तो दरवाजे पर शहनाइयां बजती हैं—मिठाइयां बंटती हैं। लड़की उसकी बुढ़ौती का सहारा है, उसका भविष्य है। और, तुझे भी मैंने इसी आशा पर पाला है। आज से पन्द्रह बीस दिन बाद तेरी नथ उतार ली जाएगी, यहां के नगर सेठ द्वारा। बीस हजार दे रहा है कुछ कम नहीं है।"

"तुम्हारा यह सपना, सपना ही रहेगा, जछनबाई। तुम बीस हजार की बात करती हो, लेकिन तुम्हारे नसीब में बीस पैसे भी नहीं हैं। तुम पन्द्रह बीस दिन में मेरी नथ उतरवाने की बात करती हो और पन्द्रह बीस दिन बीत चुके दिल्ली में सुनील से मेरी कोर्ट मैरिज हो चुकी है। सुनील अब मेरा पति है और मैं उसकी पत्नी ! दुनिया की कोई ताकत हमें एक-दूसरे से जुदा नहीं कर सकती !" और वह नाक से नथ उतारकर जछनबाई की ओर फेंकती हुई बोली—"और दे दे उस कामुक, वेश्या-

गामी-मावदान के कीडे नगरसेठ को और ले-ले उससे बीस हजार रुपये !

और हा सेठ से यह भी वह दना, सोच-समझकर आएगा किसी की पत्नी की इज्जत पर हाथ डालने ! तुझे तो अब मा कहते हुए भी मुझे लज्जा आती है। अब तू मा नही, सिफ जछन है जछन !" बोलकर शबनम अपने कमरे म चली गई और अपना सामान सूटकेस म भरने लगी।

जछन की एक एक बात हथौडे सी सिर पर बरस रही थी—शूल बनकर कलेजे को बीध रही थी। क्या-क्या मनसूबे नही बाधे थे उसने शबनम को लेकर। सोचा था—सेठ की जिस कोठी म आज वह बासी बरसो स रहती आ रही है शबनम की नथ उतरने के बाद उसके रूप-जाल मे फासकर धीरे धीरे वह उस पर कब्जा कर लेगी। लेकिन आज उसके सारे सोच विचार, सारे मनसूबो पर पानी फिरता नजर आ रहा था। वह सिर पर हाथ रखे चिंता म डूबी हुई थी कि शब्बो न, जिसे वह जाने कहा स लाकर अपनी लडकी बना उसस धधे करा रही थी, आकर खबर दी—'मम्मी, आपा जा रही हैं ! '

सुनते ही जछन को पावो के नीचे की जमीन खिसकती नजर आई। वह लपटकर शबनम के कमरे म गई और दहाडकर बोली—'कहा जा रही है ?'

'यह भी कोई पूछने की बात है ? अपने घर, अपने पति के पास जा रही हू और वहा जाऊगी ? ' शबनम ने निर्भीक होकर जवाब दिया।

"तू नही जाएगी ! वेश्या का कोई घर नही होता ? उसके लिए वेश्यालय ही उसका मायका है, उसकी समुराल है !" जछन तेज होकर बोली।

"यह उक्ति तेरी जैसी वेश्या पर लागू होती है, मर ऊपर नहा। तू कौन होती है मुझे रोकने वाली ?"

11

उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1934)
150 गोरनगर, मागर वि विद्यालय, सागर—470003

"तो तू सीधी तरह नही मानेगी !" और उसने शब्बो को आवाज दी। उसके आने पर बोली—"रहीमा को बुला तो !"

शब्बो चली गई रहीमा को बुलाने।

रहीमा का नाम सुनकर शबनम काप उठी। रहीमा वेश्या मुहल्लो मे वेश्याओ के खर्चे पर पलने वाला गुडा था। उसका काम ही था, वेश्याओ से पसे लेना और उनके इशारे पर काम करना। खबर मिलते ही वह तुरत जछन की कोठी पर पहुचा। जछन ने उसे सारा हाल सुना दिया और आदेश दिया कि उसे पीछे वाले कमरे मे बद कर दे !

रहीमा जछन के हुक्म का गुलाम था। आदश मिलते ही उसने शबनम को घसीटकर कोठी के पीछे वाल कमरे म ले जाना चाहा। शबनम ने उसे डाटकर अपना हाथ झटका—"खबरदार, रहीमा ! मुझे हाथ लगाया तो ! यदि मुझे कुछ हुआ तो मत सोच कि तू बच जाएगा ! लगता है यह जछन अपने साथ तुझे भी खाएगी।"

लेकिन रहीमा कहा मानने वाला था। शबनम ने हिदायत दते हुए फिर कहा—"जछन बाई, मत समझो कि मेरे ऊपर अत्याचार करके तुम बच जाओगी ! आज तीन दिन से तुमने मरे ऊपर तूफान मचा रखा है। याद रखो, इसकी खबर सुनील तक जा चुकी है, आज नही तो दो दिन बाद वह मेरी तलाश म आएगा जरूर। यदि मुझे कुछ हुआ तो तुम और तुम्हारा यह रहीमा इस कोठी म सही सलामत जीवन नही बिता सकोगे।"

लेकिन जछन ने उसके कथन पर रत्ती भर भी ध्यान नहा दिया और रहीमा ने जबरन घसीटते हुए ले जाकर शबनम को पीछे वाली कोठरी म डाल बाहर से ताला डाल दिया।

उसी रात जछन ने आनन फानन मे नगर सेठ से सपर्क साधा और आग्रह किया कि आने वाली दूसरी रात को वह शबनम की नथ उतार लें,

अन्यथा लड़की किसी और की हो जाएगी।

शबनम और सुनील के विवाह की बात जछन ने अपने तक ही रखी। सेठ की निगाह तो जाने कब से शबनम की सुंदरता और यौवन पर थी। भला उसे क्या एतराज हो सकता था। पैसे की कमी तो कुछ थी नहीं। उसने तुरंत जछन को दस हजार रुपए अग्रिम दे दिए। बाकी का दस हजार नथ उतारने के बाद देने का तय हुआ।

दूसरे दिन की सध्या आई। जछन की कोठी लाल, पीली और हरी-नीली बत्तियों मे जगमगा उठी। तोरण और बंदनवारों से कोठी के हर कमरे का द्वार शीघ्रता मे जितना और जो कुछ हो सकता था सजाया गया। कोठी के बैठकखाने में शाम से ही महफिल जम गई थी। गजल और ठुमरी के ताल-ताल पर नर्तकों के पावों के घुंघरू खनक रहे थे। रात आठ बजे के बाद शबनम के कमरे का ताला खोल दिया गया और पड़ोस की कुछ युवा वेश्यायें उसे दुलहन के रूप में सजाने के लिए कमरे में आई। कोठी की सजावट और महफिल का रंग-ढंग देखकर ही शबनम ने अनुमान लगा लिया कि आज उसकी नथ उतारी जाएगी। आई हुई युवा वेश्याओं को देखकर शबनम मन ही मन मुस्कराई और बोली—'क्या आई हो तुम लोग? मुझे दुलहन बनाने?'

शबनम की बात सुनकर एक वेश्या युवती नखरे की अदा में मटकती हुई बोली—'हाय दइया! यह तो पहले से तैयार बैठी है!'

'और नहीं तो क्या? सुहागरात की घड़ी तो जीवन में सिर्फ एक रोज ही आती है। तुम सब आज मुझे ऐसी सजा—ऐसी सजा दो कि मेरा स्वामी भी एक बार मुझे देखकर दंग रह जाए! कौन जाने, इसके बाद वह इस रूप में मुझे देख भी पाएगा या नहीं!'

इसके बाद वह एकदम मौन हो गई। क्षण भर पहले का उसका हंसता-मुस्कराता चेहरा एकदम गंभीर हो उठा। पलकें बंद कर वह डूब

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
अरघान (कविता संग्रह 1984)
गो 50 गौरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

गई जाने किन स्मतियो मे ? अनायास फूट पडे शब्द उसकी जबान से—"मेरे स्वामी ! मुझे क्षमा कर देना !" और उसकी आखो से दोनो गालो को स्पश करते ढलक पडे दो मोती ।

उसकी आखो से गिरते आसू उसकी एक सहेली की निगाह म पड गए। उसने विस्मित हो पूछा—"यह क्या शबनम ? एसे मौके पर आसू ? क्या बात है ?"

"नही, रे ! एसी कोई बात नही है। त्याग की घडिया आने पर खुशी के ये आसू तो गिरते ही हैं। तू सब चिता न कर। अपना काम कर।" आसू पोछती हुई शबनम बोली।

शबनम ने फिर कुछ न कहा। सहेलिया अपने अपने हुनर के अनुरूप उसे सजाती गइ—सजाती गईं—सजाती गइ। शबनम चुपचाप बैठी रही—डूबी रही अपने स्वामी की स्मति म ! दो-ढाई घटो की कठोर मेहनत के बाद सहेलिया उस उरेहने म सफल हुइ एक अप्सरा के साचे म। इसके बाद उसे शादी का जोडा जामा और गहने पहनाकर वे कमरे से बाहर आ गइ। उनके जाते ही शबनम ने भीतर से कमरे का द्वार बद कर लिया। फिर आदमकद आईने के सामने जाकर वह अपना बनाव शृगार अपनी आखो से निहारने लगी। वह देख रही थी, उसकी रूप-सज्जा मे कही कोई कमी तो नही रह गई। बडी देर बाद उसे याद आया—"हा, एक कमी रह गई। और वह तुरत अपने प्रसाधन बक्स के पास पहुची। उसम से एक छोटी-सी गाल डब्बी हाथ मे लेकर पुन शीशे के सामने आ गई। डब्बी म और कुछ नही उसके सुहाग का सिंदूर था। शबनम ने चुटकी भर सिंदूर अपने हाथ म लिया और आईने म देखकर अपनी माग भरी। फिर अपने रूप को निहारती हुई वह मन ही मन हसी—"हा, अब ठीक ! अब वह पूरी तरह सुहागन है। अब, जब स्वामी देखेंगे तो उन्हें कोई गिला—कोई शिकवा

शिकायत नहीं रहेगी मुझसे ! और यह नथ ? इसकी कोई जरूरत नहीं।' और उसने उसे अपने हाथ से उतारकर अलग रख दिया। उसकी जगह नाक म डाल ली सोन की एक लौंग।

फिर अपनी जगह पर बैठकर काफी देर तक एक कागज के ऊपर जान क्या क्या लिखती रही वह। पूरा पेज भर जाने के बाद उसन उस कागज को एक लिफाफे म रखकर उसे बद कर अपने सिरहाने के नीचे रख दिया। फिर कमरे के बीचोबीच खडी हो काफी देर तक ऊपर छत की ओर देखती रही जसे कोई हिसाब किताब का अनुमान लगा रही हो। छत के चारो कोनों पर गौर करते-करते उसकी निगाह सीलिंग पखे पर आकर अटक गई। लेकिन वह जमीन से काफी ऊचा था। इतना कि टेबिल पर खडे होने पर भी उसकी पखडी हाथ ऊचा करने पर पकड मे न आए। उसका अनुमान सही था। तो यही ठीक है।' उसने कोन म रखे टेबिल का सामान एक एक कर जमीन पर रख दिया। फिर उस बिना आवाज किए धीरे धीरे सरकाकर पखे के केंद्र म लाई। उसके ऊपर उसने एक कुरसी रखी। फिर हाथ म अपनी कुछ देर पहले की बदली साडी लेकर ऊपर चढ गई। उस रस्सी के समान उमेठकर पखे स बाध दिया। बधन की मजबूती की जाच कर लेने के बाद कुरसी पर खडी-खडी ही उसने अपने पति का ध्यान करते हुए एक बार फिर क्षमा याचना की—'मुझे क्षमा करना, स्वामी ! जा रही हू हमेशा-हमेशा के लिए दूर—बहुत दूर, जहा से लौटना कभी सभव नहा !'

और दूसरा लटकता छोर गले म बाध, पावों से कुरसी को ठेलकर नीचे गिरा दिया। कुरसी के गिरते ही उसकी काया अवलबित हो गई साडी के बधन पर। गले की फास कसती गई कसती गई कसती गई और फिर, वह आकर ठहर गई अतिम कसाव पर। और शबनम ? समाज के कामनालोलुप कुत्तों म रमा के लिए बलि चढ गई अपनी

उस जनपद का कवि हूं (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता सग्रह 19-4)
1 40 गौरनगर सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

अस्मत और मान मर्यादा के नाम पर।

गजल ठुमरी के ताल पर थिरकते पावो के घुघरुओ की झनकार मे डूबी रही वह महफिल। तबले पर थाप पडती रही पीने पिलाने का दौर चलता रहा। दस ग्यारह धीरे धीरे बारह बजने पर आए। जछन बाई ने सेठ के सामने आकर आदाब बजाया—"हुजूर, समय हो गया। सिफ आपका इतजार है।'

"शबनम आ गई ?" सेठ ने पूछा।

"आप सज पर चलें, हुजूर, हम उसे ला रहे हैं।' जछन ने मुस्कराते हुए जवाब दिया।

शबनम की सहेलियो को उसे लाने का आदेश देकर खुद सेठ को लेकर सज की ओर बढ गई।

दरवाजे पर पहुचकर सहेलियो ने कई आवाजें दी—"आपा! आपा!! दरवाजा खोलो, आपा!!! समय हो गया।

" ।" कोई उत्तर नही दिया शबनम ने।

इस तरह जाने कितनी देर तक पुकार होती रही शबनम की। लेकिन शबनम ने किसी भी पुकार पर जवाब न दिया।

विलब जब सीमा पार करने लगा तो जछन खुद आई और बेटी, बेटी—कहकर जाने कितनी बार उसे पुकारा। लेकिन शबनम पहले के समान ही गुमसुम बनी रही।

जब भीतर से शबनम ने कोई आवाज न दी तो जछन ने दरवाजा तोड देने का आदेश दे दिया।

दरवाजा तोडकर अन्दर जाने पर वहा का दश्य देख जछन चीख पडी—"अरे, इस छोकरी ने तो सत्यानाश कर दिया रे! सब किए-कराए

पर पानी फेर दिया ! ' और वह डाढें फाड फाडकर चीख पडी ।

शब्बा दूसरी ओर अलग आसू बहा रही थी। रहीमा आखें फाडें हक्का बक्का सिफ पखे से लटकती शबनम की लाश निहार रहा था।

जछन की चीख पुकार स महफिल मे रग मे भग पड गया और लोग भाग भाग शबनम के कमरे के पास पहुचे। सुहागरात का लोभी बूढा भौंरा नगर सेठ भी जछन का दद सहलाने 'क्या हुआ ? क्या हुआ ?' कहता सुहागरात की सेज स उठकर शबनम के कमरे क पास पहुच गया। भीतर का दश्य देख उसका तन-बदन पसीना पसीना हो गया और हाथ-पाव की पिंडलिया थरथराने लगी। उसे भापते देर न लगी कि जब इतना बडा हादसा हुआ है तो पुलिस भी आएगी ही। खरियत इसी मे है कि वह वहा से खिसक ले। मन म इस तरह के विचार आते ही नगर सेठ लोगों की नजरें बचा, चुपके स वहा से खिसक लिया।

आधी रात का सन्नाटा—जवाहर स्क्वायर तो क्या सारे इलाहाबाद की सडकें सुनसान हो चली थी। यदा-कदा इक्के दुक्के राहगीर और उन्ह देखकर गली कूचे तथा फुटपाथो पर लावारिस पडे भौंकते कुत्ते नजर आ जाते थे। वस भी रात के सन्नाटे की आवाज बडी दूर दूर तक गूजती सुनाई देती है। फिर जछन की चीख पुकार किसी को कसे सुनाई देती ? जछन की आवाज स पास पडोस का सारा माहौल अशात हो गया। लोगो की नींद उचट गई और वे अपना-अपना बिस्तर छोड उसकी कोठी की ओर भागे। देखते-देखते भारी मजमा एकत्र हो गया जछन के बगल पर।

पुलिस के पहुचते ही यद्यपि जछन ने रो रोकर अपनी ओर से सफाई दी कि छोकरी ने खुदकुशी कर ली, लेकिन पुलिस तुरत यह निणय कम ले सकती थी कि मामला हत्या का है या आत्महत्या का ?

पखे म लटकती लाश पुलिस न नीचे उतरवाई और जछन, रहीमा

तुम अनवर का कवि हूं (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)
1 80, गौरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

कसर न उठा रखेगा।

इन सब सबूतों के आधार पर पुलिस ने उसी रात नगर सेठ को भी अपनी गिरफ्त में ले लिया और कोतवाली में पूछताछ के बाद सबका चालान शीट तयार कर दूसरे दिन सबको केंद्रीय कारागार भेज दिया गया।

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
2 50 गोरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

सात

वसत का उपाकाल !

उस दिन भी हमेशा की तरह इसी प्रभाती वेला म वह जगा रहा था निद्रित कलियों को ! उसका नित्य का यह क्रम उसके दैनदिन जीवन का अविभाज्य अग बन चुका था। अब तो ये पुष्प—ये कलिया—नानाविध रगो मे सवरी सजी प्रकृति की य छटाए ही उसके अनुत्तरित जीवन का समाधान थी। दारुण व्यथा कथा स विदग्ध विगलित मन जब कभी विषादपूर्ण अतिरेक से भर उठता तो इ ही सुमनो—इ ही कलियो के बीच आकर उनसे बातें करता—उ हे हसता हसाता। मूक बधिर लता कुजो के य उनीद्र उ मीलित जीव भला बोलते भी क्या ? भला समझता भी कौन उनके वनस्पति शास्त्र की भाषा परिभाषा को ? लेकिन, नही

'करत करत अभ्यास के जडमति होत सुजान !
रसरी आवत जात ही सिल पर परत निसान !!'

रोज रोज की रगड रोज रोज की सत्सगति मे अब तो वह इन वानस्पतिक जीवो की भाषा-परिभाषा भी समझने और बोलने लगा था।

वह एक एक कर चुनने लगा—पयटको द्वारा फेंके गए कागजो मे लिपटे सिमटे मिष्टा नो के पुलिदो को ! फिर झाडने-पोछने लगा शिरा से चिपचिपाते पुलिदो पर सने चिपके धूल-कणो को।

शिमला के नेहरू-उद्यान मे पयटको के लिए रात्रि विश्राम की व्यवस्था भी थी। सवेरा हुआ कुछ पयटक जाने को प्रस्तुत हुए। विदाई के

समय औपचारिक दस्तूर के मुताबिक कुछ दूर तक वह उनके साथ आया। वे चले गए तो वह भी पीछे की ओर मुड़ा। देखा—कुछ नवागतुक पर्यटक उद्यान में प्रवेश की लालसा से द्वार पर खड़े हैं। देखने में सभी सभ्य-सुसंस्कृत और एक ही परिवार के जान पड़ते थे। लंबे-लंबे डग रखता वह उनके पास आया और बोला—'नमस्कार, श्रीमानजी! आइए, पधारिए!

'नमस्कार जी! मैं श्यामलाल हूं—बंबई का एक व्यापारी! और यह मेरी भतीजी है सरिता। गरमियों के दिन मन नहीं लगा सोचा, चला कहीं घूम फिर आएं। वैसे इसकी भी बहुत दिनों से इच्छा थी शिमला देखने की! सो, चली आई साथ में। सच पूछिए तो मैं शिमला आया भी इसी का खयाल कर अन्यथा मैं तो जाने कितनी बार शिमला आया गया।"

"हां हां क्यों नहीं! शौक से देखिए दिखाइए शिमला! जगह है भी तो देखने लायक! एक बार जो देख गया तो बार बार आने की इच्छा बनी ही रहती है। आप ही जैसे उदारमना लोगों से बरकरार हैं शिमला की ये वादियां!'

"आप यहां के रहने वाले हैं?' पूछा सेठ श्यामलाल की भतीजी सरिता ने।

'मतलब?'

"मतलब—आप यहां नौकरी करते हैं या हम लोगों की ही तरह कोई पर्यटक हैं?" सरिता ने फिर पूछा।

"अजी, पर्यटन की तो बात मत पूछिए! पर्यटन करते करते जिंदगी पक गई। यदि यह कहें कि जिंदगी ही पर्यटन बन गई तो उचित होगा! अब तो आप भद्रजनों की सेवा के लिए यह सेवक स्थायी रूप से जमकर बैठ गया है।

उस अनागत का कवि हूं (कविता संग्रह 1981)
परधान (कविता संग्रह 1984)
१० गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

"बड़े जिंदादिल—दिलचस्प आदमी जान पड़ते हैं !"

"सो तो है और न भी रहूं तो बनना पड़ता है, आप लोगों के लिए !" कहते हुए वह सरिता और सेठ श्यामलाल जी की ओर देखकर मुस्करा पड़ा। उसकी नफासत पर चचा भतीजी भी मुस्करा पड़े।

एक हाथ में श्यामलाल जी से उनकी अटैची और दूसरे हाथ में सरिता के हाथ से हैंडबैग लेकर पूछा, "आप लोगों का प्रोग्राम यहीं ठहरने का है या फिर किसी और ठिकाने पर ?"

"इस बारे में हम लोगों ने अभी तक कुछ सोचा ही नहीं। गाड़ी से उतरकर सीधा यहीं चले आ रहे हैं। लेकिन बस भी यदि कहीं और का प्रोग्राम होता तो हम उसे जरूर रद्द कर देते। आपसे हुई पहली मुलाकात में ही हम इतने प्रभावित हुए हैं कि कहीं और जाने का प्रश्न ही नहीं उठता !' सरिता बोली।

"शुक्रगुजार हूं, आपके इस फैसले पर ! बंदे को आपने इस काबिल समझा और सेवा का मौका तो दिया ! जीवन में आज पहली बार आप जैसा दरियादिल यात्री मिला है, जिसने मेरा सही-सही मूल्यांकन किया !"

सरिता का मुख लज्जा से लाल हो उठा।

कनखियों से एक हलकी नजर उसने सरिता के चेहरे पर डाली और होंठों होंठों में ही मुस्कराते हुए बोला—"तो आइए, अब आप लोगों का कमरा दिखा दूं।

और वह उनको साथ लेकर बढ़ चला विश्रामगृह की ओर।

चलते चलते सरिता ने टोका—'इस अल्प मुलाकात में ही हमने एक दूसरे के बारे में बहुत कुछ जानकारी हासिल कर ली। लेकिन अब तक मैंने आपसे आपका नाम तो पूछा ही नहीं !"

"वैसे तो लोग सेवक को सुनील के नाम से जानते-पहचानते हैं। लेकिन आपकी दृष्टि में जो उचित जान पड़े उसी नाम से पुकार

लीजिएगा।

"वाह ! वाह ! यह भी आपने काबिल गौर बात कही ! आपकी जितनी प्रशंसा की जाए थोडी ही है।"

इसमें प्रशंसा जैसी कोई बात नहीं ? सीधी सी बात है, राम को रहीम और रहीम को राम कह देने से क्या फर्क पडता है ? नाक पकडनी है, चाहे हाथ घुमाकर पकड लें या सीधा—हर तरह से मतलब एक ही होगा।" सुनील ने मुस्कराते हुए कहा।

इसके जवाब में सरिता कुछ कहने ही जा रही थी कि विश्रामगृह आ गया। उसने जेब से चाबी निकाली और एक कमरे का दरवाजा खोलते हुए कहा— 'यह रहा आपका कमरा। मेरा खयाल है इसमें आप लोगों को कोई परेशानी नहीं होगी। एक इंसान की आवश्यकता के लगभग सभी साधन इसमें उपलब्ध हैं। फिर भी यह है तो एक विश्रामगृह ही और मनुष्य की आवश्यकताएं उसकी अपनी इच्छानुसार हुआ करती हैं। संभव है, किसी बात की कमी रह ही गई हो तो ऊपर वाले कमरे में मेरा निवास है, जरूरत पडने पर आप मुझे किसी भी समय आवाज दे सकती हैं।'

"क्या आप यहां अकेले हैं ? ' सरिता ने पूछा।

'मतलब ? '

"मेरा मतलब छोटे-मोटे कामों के लिए कोई और ऐसा नौकर चाकर नहीं है ?'

"नहीं ऐसी बात तो नहीं है। इस उद्यान और विश्रामगृह की देखरेख के लिए दो आदमी और भी हैं। लेकिन आप लोग ऐसे मौके में आए हैं कि दुर्भाग्य से दोनों इस समय छुट्टी पर चले गए हैं। उनमें से कुछ लंबे अवकाश पर है लेकिन एक कल तक आ जाएगा। लेकिन उनके रहने, न रहने से आप लोगों के लिए कोई फर्क नहीं पडता मैं जो हूं। इस

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
अरघान (कविता संग्रह 1934)
40 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

समय मुझे आप यहा का सब कुछ समझ लीजिए—नौकर, माली और व्यवस्थापक भी। मेरे लिए अब आप लोग यहा के यात्री तो रह नही, बल्कि मेहमान हैं और मेहमान की सेवा के लिए मैं स्वय हाजिर हू। हा, इस समय सभव है आप लोगो को व्यक्तियो के अभाव म यहा का सूनापन कुछ खटकता हो, लेकिन कल मेरा एक मित्र जो बम्बई म एक काटन मिल का प्रबधक है, उसका पत्र आया है कि वह मुझसे मिलने आ रहा है। फिर आप लोगो को बातचीत की दृष्टि स भी मनबहलाव का अभाव नही खलेगा।" सुनील ने विनम्र स्वर म कहा।

'नही, बेटे!" श्यामलाल जी न जवाब दिया—"जब तुमने हम अपना मेहमान कहा तो अब हमारे और तुम्हारे बीच दूरी ही कहा रह गई? तुम न कहो तो भी मैं तुम्हे अपन परिवार का ही एक अग मानता हू, अपने पुत्र समान! अब देखो न, पहल हम दो थ—बाप (चाचा), बेटी और अब हमारे बीच मे तीसरा एक बेटा भी आ गया। फिर बातचीत के लिए भी अब व्यक्तियो का अभाव भी कहा रहा? मैंने तुम्हे अपना पुत्र कहा, मेरी यह बात तुम्हे कुछ बुरी तो नही लगी?"

"कैसी बात करते है, चाचाजी! यह तो मेरा सौभाग्य है कि आप जैसे सज्जन व्यक्ति ने मुझे इतना बडा सम्मान दिया। अच्छा, तो मैं चलू, आप लोगो के लिए चाय नाश्ता और भोजन आदि की कोई व्यवस्था करू। तब तक बगल मे यह बाथरूम है। आप लोग स्नानादि से निवृत्त हो कुछ स्वस्थ हो लें। यात्रा की थकान मिट जाएगी।'

बबई से बसत आया था आज पूरे दो वर्षों के अतराल के बाद दोनो मित्रो का मिलन हुआ था। उसकी एक ही शिकायत थी से—"इतना मर्मस्पर्शी हादसा हुआ तुम्हारे साथ और तुमन

दी किसी को ?'

खबर देकर भी तो कोई लाभ न था, बसंत ! तुम्हारी यह शिकायत जायज है लेकिन उसमे सिफ तुम्हें परेशान करने के और क्या था। हाँ तुम्हारे आने से मेरे घावो पर क्षणिक मरहम का लेप हो जाता। किंतु जानते ही हो क्षणिक तो क्षणिक ही होता है उसके गुजर जाने पर फिर वही दशा। भला इसमे तुम क्या करोगे और मै क्या करूँगा ? हानी को कौन रोक सकता है न तो पौरुष रोक सकता है, न ही किसी की कर्म-निष्ठा ? दुख है तो सिफ एक ही—माजी ने कितना कहा था शबनम से, वह उनके साथ गौरा चली जाए इलाहाबाद न जाए ! लेकिन उसने अपनी माँ से मिलने और विवाह की खुशखबरी देने का अपना हठ न छोड़ा। अब तो इसकी चर्चा ही छोड़ दो तुम इतने अरसे बाद मिले, लेकिन अपने बारे मे तो तुमने कुछ कहा ही नही ? गाव गए थे, माजी कैसी हैं ? उनके बारे मे तुमने अब तक कुछ नहीं बतलाया ? रजनी क्या कर रही है ? उसमे कुछ सुधार आया, या पहले जैसी ही है !'

माँ और रजनी के बारे मे सुनील ने जो प्रश्न पूछा, उससे बसंत एका एक चौंक पड़ा। वह सोचने लगा—माँ के बारे मे सुनील से कुछ कहना, क्या ठीक रहेगा ? अभी-अभी एक भयंकर हादसे से गुजरा है उस पर तुरंत इस समाचार का क्या असर पड़ेगा ? इसीलिए उसने टालने के लिए बात को दूसरी ओर मोड़ दिया— सुनील, एक बात तो बताओ दोस्त, तुम लेखक और पत्रकार होकर कैसे जी रहे हो उद्यान प्रबंधक' की जिंदगी ? कहाँ दिल्ली के पत्रकारों के बीच का माहौल ? और कहाँ यह नितांत एकाकीपन ?

सुनील हँसा, बसंत के इस सवाल पर। बोला— मित्र, तुम्हारा कहना बिलकुल जायज है। सचमुच यह काम मेरे योग्य नहीं है। लेकिन जीवन मे हादसे पर हादसा होते रहने से दिल अब एकदम टूट चुका है

उस अनागत का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
अरमान (कविता संग्रह 1984)
1 ६0 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

दुनिया की भीडभाड से। अब मुझे अपनी ही हसी काट खाने को दौडती-सी जान पडती है। उस घुटन और ऊब से बचने के लिए ही इस एकात पहाडी स्थल का चुनाव किया। आरभ मे सचमुच ही यह काम बडा अरुचिकर सा लगा था, लेकिन धीरे धीरे अभ्यस्त हो गया—इतना कि अब यहा से कहीं जाने की इच्छा ही नही होती। लेकिन तुमने मेरे प्रश्न का जवाब न देकर, मुझे इस तरह की बेमतलब की बातो मे क्यो उलझा लिया ? लगता है, कोई अनहोनी गौरा मे मा जी के साथ भी घटित हुई है, जिसे तुम मुझे सुनाना नही चाहते। तुम शायद इसलिए नही कहना चाहते हो कि अभी अभी शबनम की मौत का हादसा हुआ है, तुरत ही यदि माजी के बारे मे कुछ ऐसा-वसा समाचार सुना देने मे मुझे कुछ हो गया तो ? अरे, मित्र ! मेरे बारे मे इस तरह की शका करना एकदम निर्मूल है। आघात पर आघात सहते सहते मेरा हृदय वज्र बन चुका है। अब उस पर आघातो का कठिन से कठिन प्रहार भी करो तो कोई फर्क पडने वाला नही है।'

सुनील से जवाब पाकर बसत आश्वस्त हो गया असमजसता की सीमा रखा से। मन पर सकोच का जो बोझ था उसे उतार फेंकते हुए बोला— दोस्त सचमुच ही कुछ ऐसी ही बात है, जिसे मैं टालना चाहता था, तुम्हारी दशा देखकर। इसीलिए मन मे भयकर ऊहापोह भरा हुआ था। लेकिन अब नहीं। करीब-करीब साल पूरा होने वाला है, माजी इस ससार मे नहीं हैं। इस समाचार से तुम्हे बहुत बडा सदमा पहुचता, इसी डर से अब तक कुछ कहते नही बनता था।'

और सचमुच बसत ने देखा—सुनील की मन स्थिति कुछ विचित्र-सी हो गई है। लगा जैसे सारे शरीर को पाला मार गया हो। वह निवाक् हो शून्य की ओर देखने लगा। काफी देर बाद उसके मुख से शब्द फूटे—"क्या हुआ था माजी को ?"

'होन का ता कुछ नहीं हुआ। वह भली चगी था। गाव वालो को सन्देह है कि सोते म रजनी न उनका गला घाट दिया, क्योंकि उसी दिन से रजनी फरार है। कहा गई ? क्या कर रही है ? किसी को कुछ मालूम नही ? सभी गाव वाले तुमसे मिलने को बहुत इच्छुक थे, लेकिन तुम्हारा जब कोई पता ठिकाना हो तब तो !"

'अब गौरा म मरा कौन धरा है दोस्त ! माजी ही तो एक रह गई था, जिनके बहाने से कभी कभार वहा चला जाता था। लेकिन अब तो वह बहाना भी जाता रहा। अब तो जहा रम जाऊ वह धरती ही मेरा घर द्वार है। बालकर सुनील ने दीर्घोच्छ्वास छोडी।

'नहीं दोस्त ऐसा न कहो ! अभी मैं जिंदा हू और जब तक हू तुम्हारे लिए गौरा भी यही सलामत है। और आज नही तो कल आखिर रजनी भी तो लौटकर गौरा ही आएगी।" बसन्त ने कहा।

"अब रजनी का नाम न लो दोस्त ! बम्बई स मेरे दो मेहमान आए हुए हैं सेठ श्यामलाल जी और उनकी भतीजी सरिता। इन लोगों का जरा सी भी भनक न मिलने पाए रजनी की। रजनी अब पूरी तरह अपराधी जीवन जी रही है। उससे अपना सबध व्यक्त करने का अर्थ है, खुद की बदनामी मोल लेना। वे लोग इधर ही आ रहे है, अब यह चर्चा बद कर देना ही उचित है।'

इतने म श्यामलाल जी और सरिता उनके पास आ गए। सुनील ने उनके लिए बेंच पर जगह बनाते हुए कहा—"आइए, चाचाजी ! बैठिए !"

यो तो श्यामलालजी कई बार शिमला आ चुके थे। अच्छे-अच्छे व्यक्तियों म उनका परिचय भी हुआ था। बर्फ म ढकी शोभित घाटिया और नीचे पानी की झीलें भी देखी था। मन को बडा सतोष मिला था। लेकिन इस बार जैसा आनंद उन्हें कभी नहा आया था। उनके नैसर्गिक

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
50 गोपालगंज, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

आनन्द की यह गहमागहमी महज सुनील की वजह से थी। सुनील को भी एक ऐसे बिन्दु की तलाश थी जिस पर उसकी आखें अधिकार के साथ टिक सकें।

आज चार दिन बीत गए थे श्यामलाल जी और सरिता को बबई से आए, लेकिन सरिता की तबीयत नही भरी। कभी बास गार्डन, कभी स्नाहिल, कभी नजरबाग तो कभी कुछ। कभी श्यामलाल जी जब चलने को कहते तो उन्हे सुनने को मिलता—"मैं तो यहा पहली बार आई हू। कौन जाने, फिर कभी इधर आना हो, या न हो! ठीक से सब कुछ देख-परख तो लेने दीजिए। आपका क्या? आप तो बराबर ही इधर आते ही रहते हैं।"

"सच ही तो कह रही है, सरिता!" यह सोचकर श्यामलाल जी चुप लगा जाते।

श्यामलाल जी और वसत बेंच पर बैठे हुए थे तथा सुनील और सरिता हरी-हरी घनी दूब पर। सबको चुप देखकर सुनील ने श्यामलाल जी से वसत का परिचय कराया—"चाचाजी, यह हैं मेरे अभिन्न मित्र वसत कुमार जी। बम्बई के एक कॉटन मिल के महाप्रबधक है।"

"बडी खशी हुई आपसे मिलकर! फिर तो बम्बई में हमारी मुलाकात अब होती ही रहेगी।" श्यामलाल जी ने हाथ मिलाते हुए कहा।

"जरूर जरूर!" वसत ने बडी आत्मीयता से कहा।

"वसे आप क्या बबई के ही रहने वाले हैं?" श्यामलाल जी ने पूछा।

"नही, मैं रहने वाला तो नासिक का हू। बबई में सिर्फ सर्विस करता हू।" वसत बोला।

"चलिए बबई और नासिक में फर्क ही कितना है! सुबह गए शाम लौट आए।"

"बेशक ! बेशक ! लेकिन काम का इतना बोझ सिर पर लदा रहता है कि सुबह से शाम तक दम मारने की भी फुरसत नही मिलती ।" बसंत ने कहा।

'लीजिए, अब यह भी कोई कहने वाली बात है ? एक काटन मिल के मैनेजर की कितनी बडी जिम्मेदारी होती है यह भी किसी से छिपा है क्या ?' श्यामलाल जी बोले—"नासिक आने जाने वाली बात तो मैं इसलिए बता रहा था कि यह मेरी भतीजी है सरिता, इसका ननिहाल नासिक के पास 'चालीसगाँव' में है। इसकी शिक्षा ननिहाल में ही हुई है। इसी के लिए मुझे बराबर वहा जाना पडता था। लेकिन सुबह जाता था और शाम को लौट आता था। कोई परेशानी नहीं होती थी।" श्यामलाल जी बोले।

'जब आप लोगो ने नासिक और 'चालीसगाव' की बात छेड दी है तो मुझे भी अब कुछ कुछ याद आने लगी है" सरिता बोली—"नासिक के ही किसी गाव की ?—ठीक-ठीक याद नही आता किस गाव की—रजनी नाम की मेरी एक सहेली थी। हम दोनो एक ही कक्षा मे पढते थे। बडी तेज-तर्रार थी। विद्यालय की अध्यापिकाएं भी उससे घबराती थीं। जवाब देने मे एकदम मुहफट ! भगवान बचाए ऐसी लडकी से वहा के लडको के तो यही स्वर थे।

'फिर आपसे कैसे निभती थी उसकी ?" पूछा सुनील ने।

'आज जब सोचती हू तो मुझे भी बडा आश्चर्य होता है इस पर। मेरे साथ उसने कभी बेअदबी का कोई बरताव नही किया। सरिता ने जवाब दिया।

'तब से बिछुडी आप फिर कभी न मिली ?' सुनील ने फिर पूछा।

'संयोग कुछ ऐसा हुआ कि मैं बी० ए० करने के बाद जो बबई आई तो फिर कभी उधर जाना ही न हुआ मुलाकात होती भी कैसे ? जाने

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1981)
150 गोपालगंज, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

इम समय कहा होगी ? अब तो मेरा खयाल है उसकी शादी वादी भी हो गई होगी।" सरिता बाली।

"आपने यह कसे सोच लिया ? भला ऐसी लडकी के साथ अपना घर कौन बसाएगा ?" सुनील न पहल की।

सरिता बोली—"आप ता ऐस कह रहे है जसे उसे जानते हो ?"

सरिता की इस बात पर सुनील चौंका। वह मन ही मन पछताने भी लगा कि उसने ऐसा कहा भी क्यो ? लेकिन तुरत ही स्थिति को सभालते हुए बोला—"अजी, मुझ निखटटू को पूछना भी कौन है, जो आपकी रजनी जी से परिचय करने लगा ? वह तो अभी कुछ देर पहले ही आपने कहा था—"बडी तेज-तर्रार थी, विद्यालय की अध्यापिकाए भी उससे भय खाती थी इमी आधार पर मैं बोल पडा—ऐसो को साथ लेकर गहस्थी बसाने से सभी घबराते हैं।'

"सो तो मैंने उसके बारे म जो कुछ कहा ठीक ही कहा।' सरिता ने कहा— लेकिन सुनील जी, आप तो डबल हो चुके है न, फिर यहा अकेले क्या रहत हैं ?"

"आपने मरे बारे मे कुछ गलत अनुमान लगा लिया। वैसे भी मैंने आपको इसका जवाब तो पहले ही दे दिया—मैं एक निखटटू इन्मान हू, मुझे पूछना भी कौन है ? और वसे ऊपर वाला भी कुछ नाराज है मेरे ऊपर तभी आज तक किसी ने ।" बोलकर सुनील ने आह भरी एक लम्बी सास ली।

'क्यो, आपम ऐसी क्या बुराई है ? आपको कोई क्यो नही पसद करेगा ?' सरिता ने कहा।

सुनील ने कोई जवाब नही दिया।

उसे चुप देख बसत बाला—"सरिता जी, यही इसके अदर बुराई है। हर कलात्मक गुण इसमे जन्मजात है। लेकिन इसका जीवन कुछ

ऐसे हादसों से गुजर चुका है कि अब यह इंसान की छाया से भी दूर भागता फिर रहा है। जानती है शायद आपको इसका सही परिचय मालूम न हो—दिल्ली के पत्रकारों में सम्मानित स्थान रखने वाला एक पत्रकार दैनिक 'स्वदेश' का प्रसिद्ध 'व्यंग्य स्तम्भ' लेखक, पुरस्कृत गीतकार कहानीकार कौन सी कला नहीं है इसके अंदर लेकिन जाने क्या आज इंसान तो इंसान, खुद अपनी ही छाया से कन्नी काट रहा है।'

'क्या कहते हैं, आप? कहीं य वही व्यंग्यकार तो नहीं, जिनके व्यंग्य लेखन से प्रशासन तंत्र की मशीनरी भी कांप उठी थी और अखबार को मजबूरन व्यंग्य स्तंभ' का प्रकाशन बंद करना पड़ा? सरिता ने आश्चर्य से पूछा।

"हां, यही हैं वह व्यंग्यकार।' वसंत ने जवाब दिया—"सिर्फ व्यंग्य ही नहीं, इसके गीतों के एक एक शब्द गली-कूचों में लोगों के मुख से सुनाई पड़ते थे।'

'हां हां आपने खूब याद दिलाई। इनके गीत तो आज भी मनोहर हैं और आज भी लोग यदा कदा गुनगुनाया करते हैं।' सरिता विस्मित स्वर में बोली।

'और आपके बगल में इस समय खोया खोया बैठा है उन लोकप्रिय गीतों का लेखक! अपने गीतों के लिए यह पुरस्कृत भी हो चुका है! लेकिन जानती हैं इसके गीतों में वही दर्द—वही व्यथा—वही टीस भरी हुई है, जिस हादसे, जिस सदमे से गुजर चुका है जब कभी इस तरह की कोई चर्चा होती है, इसी प्रकार यह खोया-खोया, विक्षिप्त सा नजर आने लगता है। कितनी बार मैंने इससे यह जानने की कोशिश की, लेकिन आज तक कुछ नहीं बतलाया।

लेकिन क्यों? आखिर वह कौन-सा हादसा था, वह कौन सा सदमा था जिसने इनको विनाश के कगार पर ला खड़ा किया? सरिता

उस अजनबी का कवि हूँ (कविता संग्रह 19[illegible]1)
मरुस्थान (कविता संग्रह 1984)
[illegible] गौरनगर सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

ने पूछा।

"मैंने तो कई कोशिशें कर देख ली, निराशा ही हाथ लगी। हां, शायद आपके पूछने पर कुछ बतला दे! लेकिन इस समय तो आप इस प्रसग को छोड ही दीजिए। कभी मूड म हो तो आपका पूछना ठीक रहेगा।"

सरिता ने सिर हिलाकर वसत के कथन का समथन किया। लेकिन वह मन-ही मन विचार करती रही सुनील की इस मन स्थिति पर।

श्यामलाल जी ने बात का रुख मोडते हुए कहा—"अच्छा सुनील, छोडो, इन सब बातो को। यह बतलाओ, तुम्हे बबई कैसी लगती है?"

"भला मैं इस बारे म क्या बोल सकता हू, चाचाजी! जो बबई के सान्निध्य म है, वही उसके बारे म कुछ बतला सकते हैं।" सुनील न नम्र स्वर म जवाब दिया।

वसत बोला—"साहब, सुनील भाई मुख से कम कहते है, भावो स अधिक। ये तो मेरे बुलाने पर भी बबई नही आते हैं। कहते है बबई का कृत्रिम सौन्दय मुझे पसद नही।"

सरिता न चहकते हुए कहा—"बेशक वह सुनील को भला क्या अच्छी लगने लगी? कहा शिमला की श्वेत बर्फाच्छादित धवल विमल ऊची ऊची पवतीय चोटिया, अपने अक मे झरनो का स्वच्छ निमल जल समटती हरी भरी मनोरम घाटिया और कहा बबई की रूखी सूखी जमीन और उसे घेरे लहराता समुद्र! दोनो के सौन्दय म जमीन आसमान का अतर है। निस्सदेह शिमला का सौदय प्राकृतिक है।

"क्या, सुनील! है न यही बात?" श्यामलाल जी बोले।

"जहा पहुच नही सकता, वहा के विषय म यही कहकर जी को समझा लेता हू।" अपना पक्ष प्रबल करते हुए सुनील ने कहा।

"माना, लेकिन आवश्यक भी तो नही कि तुम यहा ही रहो!" यहा

से चला भी तो जा सकता है। वैसे भी यह विद्वानों का ही कहना है—'चलते रहने का नाम ही तो जीवन है।'' वसंत बोला।

सरिता के मन में आया कि वह दे—"हाँ, यही सच्चाई है।' काफी देर तक ऊहापोह मचा रहा उसके मन में। कभी-कभी सुनील के उदास और खोया-खोया सा हो जाने से भी अनुमान उसने यही लगाया कि निश्चय ही सुनील को किसी ने धोखा दिया है और अब इसका दिल इतना टूट चुका है कि यह दुनिया की भीड़ भाड़ से दूर भाग रहा है। इसे जरूरत है इस समय किसी के मदुल प्यार की, जिसके मधुर स्पर्श से इसके दिल के घाव भर सकें। लेकिन मन के ये भाव व्यक्त करने में वह बड़ा दर से झिझक रही थी! लेकिन कब तक? अंत में साहस करके उसने कह दिया—"जैसे हम बंबई से यहाँ आए, वैसे ही तुम भी तो वहाँ आ सकते हो? यहाँ की अपेक्षा वहाँ की चीजें कुछ भिन्न जरूर नजर आएंगी तुम्हें और मेरा विश्वास है, तुम्हारा मन भी लग जाएगा।'

"यदि छोटे शहरों के सभी लोग इसी तरह बंबई चले जाएंगे, तो उन छोटे शहरों की क्या दशा होगी, यह भी तो सोचो?" कहते हुए सुनील ने सरिता की ओर देखा।

उसे अपनी ओर निहारते देख, वह हँसी और अपनी दृष्टि दूसरी ओर फेर ली।

उस अनगन का कवि हूँ (कविता संग्रह 1931)
प्रयाण (कविता संग्रह 1984)
गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

आठ

विश्राम के क्षण सब लोग अलग अलग लेटे हुए थे। वसंत की वेश-भूषा और उसकी संपन्नता देखकर सुनील के मन में पिछली बातें एक एक कर स्मरण आने लगीं। वह किन परिस्थितियों में नेहरू उद्यान में नौकर हुआ था। वसंत उससे कैसे बिछड़ा था। कैप्टेन साहब को वह किन परिस्थितियों में मिला था। किस प्रकार उन्होंने पाल पोसकर उसे बड़ा किया और जब उनके प्रति वह अपना कर्त्तव्य निभाने के योग्य हुआ तो किस प्रकार एक दिन अचानक ही वह उसे निराश्रित छोड़कर इस संसार से विदा हो गए। उनके बाद मां विशाखा का स्नेह ही उसके जीवन का संबल था। मां उससे शिक्षाप्रद बातें करती थी। वह हमेशा कहा करती थी—

"बेटा, पुरुष वही है जो विपत्ति और संघर्ष के क्षणों में घबराए नहीं। विषमताओं को लांघता हुआ अपने लक्ष्य को प्राप्त करे, दुनिया उसी इंसान को इज्जत और सम्मान देती है।"

मां की इन प्रेरणास्पद बातों से ही सुनील प्रसन्न रहता था। अपनी खुद की संतानें अनिल और रजनी के किनारा कर जाने के बाद मां को अब सिर्फ सुनील का सहारा रह गया था। इसीलिए विशाखा का हर प्रयत्न अब सुनील के भविष्य निर्माण में लगा रहता था। मां जानती थी कि उसका यह बेटा एक दिन उसके श्रम का मूल्य अवश्य चुकाएगा। इसीलिए उसका सारा ध्यान अब सुनील की ओर केंद्रित था। लेकिन ऐसे ही समय

मे एक दिन अचानक मा भी उसे छोडकर चली गई और वह जिस प्रकार इस ससार म अकेला आया था, उसी तरह अकेला का अकेला ही रह गया।

दूसरे दिन सुबह वसत के पास ववई कॉटन मिल से फोन आया। उसको अविलव बुलाया गया था। वह आने की तैयारी करते करते बोला—'तुमसे मिलने की इच्छा तो पूरी हुई, लेकिन तुम्हे इतनी जल्दी छोडने को जी नही चाहता था, लेकिन "

बात काटती हुई सरिता बीच म ही बोल पडी—"परवशता कहती है चलो, क्योकि नौकरी का प्रश्न जो ठहरा!"

'हा, कुछ ऐसी ही बात है। सुनील ने कहा और फिर दोनो मित्र एक साथ हा हस पडे।

'लकिन हमको भी तो चलना है।' सरिता बोली।

"जाना ही चाहती हैं तो आप भी जाइए। लेकिन मुझे तो इसी के साथ म जीवन गुजारना है। ईश्वरेच्छा, कभी अवसर मिला तो जरूर मिलेंगे।" सुनील उदास भाव से बोला।

'ईश्वरेच्छा, अवसर मिला तभी मिलोगे—मतलब? बोलकर सरिता ने प्रश्नसूचक दृष्टि स उसकी ओर देखा।

सुनील ने सरिता के शब्दो के स्नेहिल भाव के उतार चढाव से ही उसके मन की गहराई या ली। बहुत सोच विचार कर अपनी हैसियत को पढ़ते हुए बोला—

कहाँ एक धनी सेठ की पुत्री और कहा एक कगाल बुद्धिजीवी? दोनों म जमीन आसमान का अन्तर है सरिता देवी! आपसे परिचय हुआ और चार छ दिनों तक आपका साथ मिला, यही क्या कम है?

सुनील! मित्रता किसी की अमीरी और गरीबी पर निर्भर नही होती। इस बारे म ऐसा यदि तुमने सोच लिया है तो यह तुम्हारी भूल है।

उस अनगढ़ का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
59 गोपालगंज सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

' नही, मुझे यह जरूर सोचना चाहिए। इससे कम से कम हम खुद को पहचान तो लेते हैं। ससार के कुछ व्यावहारिक दस्तूर अपने से बराबर वाले के साथ शोभा देते हैं। झोपडी मे रहकर महलो के सपन देखना, मेरे जसे के लिए उचित नही।"

"गलत सोच लिया, सुनील ! बहुत गलत सोच लिया !" हमारा यह परिचय यह बधन यह सबध टूटने वाला नही, भविष्य मे और घना होता जाएगा !" सरिता भाव विह्वल स्वर म बोली।

सुनील ने कोई जवाब नही दिया। वह एकटक विस्मित भाव से सरिता की ओर देखता रहा।

सबसे विदा लेकर वसत बबई चला गया। सुनील ने स्नेह विह्वल भाव मे विदाई दी। वह सबकी दृष्टि म एक आदशवादी युवक था। कैसा भी नीरस और बडा से बडा काम हो, यदि उसके सम्मान पर आच नही आती है तो उसे करने मे उसके मन मे किसी तरह का सकोच नही होता। उसके इस अदभुत-अपूव व्यक्तित्व से सरिता तो प्रभावित थी ही, खुद श्यामलाल जी भी बहुत प्रभावित हुए थे।

सरिता सवगुणसपन्न थी। उसके नयना मे निश्छल प्यार का ज्वार देख सुनील प्रेम विह्वल, विभोर हो उठा। साध्य की लालिमा का रग सरिता के चेहरे पर उतर रहा था। जसे सेमल के लाल लाल फूलो के लालित्य मे एक शहरी का अनोखा सौदय दिखता है, उसी प्रकार सुनील की दष्टि म इस समय सरिता दिख रही थी।

उद्यान म ही आए मोड पर भवन के निकट गुलाब की टहनियो से बच बचकर सरिता आगे बढ रही थी। वह एक अधखिला पुष्प तोडकर अपना हाथ खीचना ही चाहती थी कि उसका पैर फिसल गया और काटे

चुभने के कारण उसके हाथो और पावो से खून निकल आया।

उस समय श्यामलाल जी कमरे म बैठे हुए थे। सरिता के गिरने पर सुनील की एक तिरछी दृष्टि उस पर पडी। उसका हृदय छटपटा उठा। वह सरिता की ओर बढ गया। उसने तुरत अपनी कमीज फाडकर सरिता के उन घायल अगो को बाधना चाहा। इस पर सरिता बोली—

"इन्हें गिरने दीजिए, जमीन पर।"

'गिरने क्यो दें? कितने पोषण के बाद शरीर मे खून की एक बूद तैयार होती है, फिर उसको व्यय क्यो गिरने दें? काटो का काम बिंधना और खून निकालना है, लेकिन हमारा काम है उन बिंधे भागो का उपचार कर खून को बहने से रोकना।

"यह मेरा दुर्भाग्य है कि इस मधुर क्षण म भी खून का दर्शन हुआ।" सरिता ने कहा।

'दुर्भाग्य तो नही !'

"फिर और नही तो क्या? उगली मे काटे की जो फास चुभ गई थी, अभी तक घसी पडी है। इससे बहुत पीडा हो रही है।'

"यहा की बेल लताओ का यह सौभाग्य है। आपकी य बातें पीडा को और भी बढा रही है। फिर पट्टी बाध चुकने के बाद बोला—"लीजिए बध गई पट्टी।"

इस प्रकार दोनो के हृदय म आदर्श प्रेम के अकुर उग आए। सुनील की शालीनता सरिता को निरतर प्रसन्न बनाए रखती थी। उसने सरिता की बातो का आनद लेने के लिए उस फिर छेडा—

"यह सहू निकला भी क्या?"

"मुझे रुलाने और तुम्हें हसाने के लिए।'

'ऐसा क्यो? भला इसम उसका क्या लाभ है?'

'आपके इस क्या का उत्तर बडे-बडे दार्शनिक भी नही दे सकेंगे।"

उस अगार का कवि हूँ (कविता संग्रह 1951)
सत्पथ (कविता संग्रह 1984)
...0 गौरनगर सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

"सुदर अति सुदर ! इमी बहाने कम से कम तुम्हारी पीडा तो दूर हो गई।"

सरिता का फिर स्मरण हो आया काटो का वह दद। बोली—"यहा यदि फूल थे तो फिर फूल ही फूल होते। ये शूल क्यो हैं ? इनका क्या काम ?"

सुनील ने जवाब दिया—"फूलो के साथ शूलो का होना उनके लिए बहुत उपयोगी है। इन फूलो की कलिया को एक झटके म कोई आसानी से ममल न दे, काटे ही उनकी रक्षा करते हैं।"

सरिता और सुनील का यह वार्तालाप चल ही रहा था कि इसी समय श्यामलाल जी अपने कमर स निकलकर बाहर आए। सुनील और सरिता का वार्तालाप और पुष्पो के प्रति उनकी सेवा भावना का दृश्य उन्हें भी दिखा। वह निकट आकर सुनील से बोले—"तुम्हारे स्वभाव को देखते हुए मुझे तुमसे एसी ही आशा थी।"

"यह सब आप जसे सत्पुरुषो की सगति का फल है। व्यक्ति जैसी सगति करता है, उसके चरित्र का निर्माण वैसा ही होता है। आपके ही विशिष्ट ज्ञान का कुछ प्रतिदान जब मुझे मिला तो यह सब सभव हो सका।' सुनील न जवाब दिया।

श्यामलाल जी ने उसकी आतरिक भाव-गम्यता थहाने के खयाल से पूछा—'तुम्हारे जीवन का पूर्वाभास ?"

"मैं तो एक ढुलकता पत्थर हू। हो सकता है, जानकर आपकी आखो मे जल भर आए। मेरा जीवन एक ऐसा व्यग्य चित्र है, जिसम अस्पष्ट रेखाओ के अतिरिक्त और कुछ नही है।'

"सुनील, तुम्हारे अदर भूत, वतमान और भविष्य का सामजस्य है, जिसकी आज के समाज म निहायत जरूरत है। इन बलि लताओ और पुष्प-वृक्षो की जो सेवा तुम अनजाने कर रहे हो, तुम्हारी स्थिति का दूसरा

व्यक्ति शायद ही कर सके ? इन पुष्प लताओ के प्रति तुम्हारी सेवा म एक आदश भाव भरा हुआ है—जीवन सदेश छिपा हुआ है। सरिता मरी ऐसी भतीजी है जिसन आज तक खून का रग भी नही दखा था। यह उसकी प्रथम पीडा थी। बडे दुख की बात है। यदि वह फूलो की आर से अपने हाथ धीरे धीरे खीचती ता यह खून कभी नही निकलता ! अब जब पत्थर से टकराकर गिरी ही है तो चाट ता आएगी ही !'

"आप निश्चित रहिए, एसी घटनाओ का घटित होना मनुष्य जीवन म आम बात है।" सुनील ने जवाब दिया।

सरिता अब तक स्वय को काफी स्वस्थ-सयत अनुभव कर रही थी। उसे यहा आए आज तेरह दिन हो गए थे। अब उनके जाने का समय भी हो गया था। सुनील ने सरिता स उसका बबई का पता पूछा।

सरिता ने जवाब दिया—' मरा पता अभी अनिश्चित है।

"फिर भी ?"

' मुझसे न पूछिए। चाचा जी के साथ मरा जीवन हमशा अस्थिर रहता है, इसलिए इस बारे र‚ अपना निश्चित पता ठिकाना वही बतला सकते हैं।"

"एक सीधी-सच्ची बात को भी चाचा जी से पूछने की जरूरत ! जरा-सी जीभ हिलाने भर की बात है।"

"मेरा जीभ हिलाना अभिशाप भी बन सकता है ! वरदान !"

"वरदान ? ' हा-हा, आगे बोलिए ! रुक क्या गईं ?

"वरदान कम।'

आज मानवता क प्रत्यक क्षेत्र मे मानव की गति का मूल्याकन होता है। मानव की वाह्य शक्ति स अधिक सामथ्य क्षमता भीतर म छिपी होती है। वह बोला—"अच्छा अच्छा, अब मैं समझा इसमे भी काई चाल है !'

बातो ही बातो म शाम हो आई। शिमला की सध्या का विचित्र नजारा

ताप के ताए हुए दिन (कविता संग्रह 1980)
शब्द (कविता संग्रह 1980)
उस अनपद का कवि हूं (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
पता सी 50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

वहा का 'अनोखा महल' था। सूय पश्चिम की ओर भागा जा रहा था। ऐसा जान पडता, मानो प्रेमिका सिंदूरी थाल सजाए अपन प्रियतम से मिलने जा रही हो। धीरे धीरे चद्रमा हसिया सा वक्राकार दिखाई पडा, वक्षो के सघन झुरमुट ने उसे अपने मे समट लिया।

सद रात उतर आई थी। विदा पूव की वला भारी हो उठी। एक लबी उसास छोडकर सुनील वोला—"तुम कल चली जाओगी ? '

"हा, मुझे दुख है जाने का ! लेकिन आने वाला जान का ही आता है।'

' फिर दुख की बात कैसी ? ' सुनील हसा।

"केवल तुम्हारे "

"आगे " सुनील ने पूछा।

"नही-नही, कुछ नही।"

"आपको वात तो पूरी करनी ही पडेगी।"

"तुम्हारी हठ और बकार की बातें मरा सिर खाए लेती है।"

"सिर भी कोई खाई जान वाली वस्तु है क्या, कुलफी जमी ?"

" " सरिता ने इस बार कुछ जवाव न दिया।

उसे चुप देखकर सुनील ने ही फिर कहा—"जब तुम यहा से हमेशा के लिए चली जाओगी, तो तुम भी

"सुनील, क्या कहते हो ? कैसी वातें करत हो ? मैं भी इस उद्यान की ! इसके आगे किसी ने न जाना ! हमार-तुम्हार बीच साथी है सिफ यह उद्यान—इसके पुष्प पौधे ! या फिर तुम जानत हो या मैं !

"कैसी कैसी बातें करती हो ! शब्द मीठे ता नही हात, लेकिन तुम्हारे शब्दो से बिना कहे ही मधुरस झरता-सा जान पडता है। इनमे स्वाद होता तो शहद से भी बढकर मीठा होना।"

वे वातें करते-करते उद्यान म प्रतिस्थापित शकर-पावती की प्रतिमा

की ओर बढते गए। वहा दोना ने एक दूसर को अपना जीवन साथी स्वीकार कर एक-दूसर क गले मे पुष्प मालाए पहनाइ, और फिर उन्हे अपने-अपने गले मे से उतार कर धीरे धीरे विश्राम भवन की ओर वढने लग।

रास्ते मे सुनील ने पूछा—"क्यो, कैसा रहा ?"

'रहेगा कैसा ?" स्वीकारते हुए सरिता बोली—"तुम तो बडे कलाकार हो !

अब तक वे विश्रामकक्ष के करीब करीब पास पहुच गए थे। उनकी इस बात की भनक श्यामलाल जी के कानो मे पडी। वह भ्रम म पड गए, क्योकि उनकी आदत थी, जब भी कोई बात करते उसे पूर्णता पर पहुचाकर ही दम लेते थे। इसीलिए सरिता की इस अधूरी बात का ठीक ठीक निष्कर्ष वह नही निकाल सके। लेकिन ये शब्द उनके मानसपट पर अकित हो गए। उन्होने हसी मे पूछा— 'सुनील,क्या तुम फिल्मी सितारे भी हो ? '

सुनील ने सामान्य भाव म ही जवाब दिया—"बबई तो मैंने देखी भी नही, फिर यह फिल्मी सितारे वाली बात कुछ अतिशयोक्ति-सी लगती है। तो भी यदि किसी के मन मे फिल्मी सितारा बनने की इच्छा है तो शौक से बन, लेकिन फिल्मा म चल रहे आजकल के भौंडेपन और उनमे व्याप्त अशिष्टताओ स दूर रहकर। फिर इन सब बातो के आप तो विद्वान मनीषी हैं, भला आपसे बढकर इस बारे म अधिक कौन बतला सकता है ?"

'ना ना, ना भाइ ! विद्वत्ता का इतना गुरुतर भार मुझ पर न डालो।"

सरिता को यह विवाद निस्सार लगा। उसकी दृष्टि से परदा हटा जा रहा था। सरिता ने विषय बदलते हुए बात को दूसरी ओर मोडा—'आप हैं तो कलाकार।"

ताप के साए हुए दिन (कविता संग्रह 1980)
शब्द (कविता संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूं (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)

50 गौरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

मुनील समझ गया आखिर सरिता ने बातचीत के उस प्रवाह को दूसरी ओर क्यो मोड दिया। उसने इस विषय म उसे कहा कुछ नही, बल्कि उसकी बात का जवाब देते हुए बोला—

"हा, हू तो सही, लेकिन मिट्टी का।"

'बहुत खूब! मिट्टी के तो सभी हैं।"

"ओ हो, तुम तो समझी नही? मेरे कहने का मतलब है, मैं मिट्टी के खिलौने बनाना जानता हू, क्योकि करीब करीब बारह घटे मुझे मिट्टी के काम मे ही बिताने पडते है।"

'मिट्टी का काम? यह तो रत्नदा है।' श्यामलाल जी बोल पडे। उनका बीच मे बोलना दोनो को ही खटका। पर जाने क्या, श्यामलाल जी को ही अचानक कोई काम याद आ गया, या उन्होने यह महसूस किया कि उनके बीच मे बोलना उनका उचित नही है, यह सोचकर तुरत अदर चले गए।

उनके जाने के बाद सरिता ने परिहास म कहा— 'आप इस फौवारे को बिना बटन दबाए बद कर सकते हैं?"

सुनील ने फौवारे पर हाथ रख दिया। उस ओर का छिद्र खुला छोड दिया जिधर वह खडी थी। फौवारे के जल का सपूण वेग सरिता पर गिरने लगा। वह पूरी तरह भीग गई।

"न न न न, बद कर दीजिए!"

"तुम्हारे कहने ही से ऐसा किया था। अब मना कर रही हो तो लो हटा लिया हाथ।"

अब सुनील और सरिता के बीच अधिक दूरी न रह गई थी। एक को दपण मे दूसरे की छवि दिखने लगी थी। सुनील के मन मे अनजाने प्रश्न उभरने लगे। उसके कानो मे दाम्भहीन शख गूजन लगे। इस एकाकी जगत म उसे सिर्फ अपना पता याद था। उसने श्यामलाल जी से

पूछा—"चाचाजी, आपका निवास बबई म कहा है ?"

"श्याम भवन, दादर-बबई 110014" वे बोले ।

दूसरे दिन श्यामलाल जी भी जाने की तयारी करन लगे। सुनील अपने नित्यकम म व्यस्त था । वह इस स्थिति मे नही था कि उनके साथ स्टेशन तक जा सके । इसके लिए उसके माग म कई तरह के व्यवधान थे । इस समय वह मन ही मन सिफ हृय विपाद की अभिव्यजना कर रहा था । उसने अपने दानो अतिथियो को एक एक पुष्प थमाकर अपने दोनो हाथ जोड लिए ।

साप के ताए हुए दिन (कविता सग्रह 1980)
शब्द (कविता सगह 1980)
उस जनपद का कवि हूं (कविता सग्रह 1981)
मरघान (कविता सग्रह 1984)
150 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

नौ

सेठ श्यामलाल जी और सरिता दोना स्टेशन पहुचे। गाडी मे अधिक विलब देखकर श्यामलाल जी बोले—"हम लोग जल्दी स्टेशन पर आ गए।"

"हा, अभी तो गाडी आने म दो घटे की दर है।"

"प्रतीक्षालय मे बैठें।"

"चूकि यह हम लोगो की वापसी है, तो क्यो न कुछ आवश्यक वस्तुओं की खरीद कर ली जाए?" सरिता बोली।

"इधर प्लेटफॉम के स्टाल पर मिलेगा भी क्या? हा, उधर पुल के पास कुछ नई चीजे बिक रही हैं। उधर चलें।' श्यामलाल जी ने कहा।

"खरीद फरोख्त करने मे कुछ समय गुजार दें, तब तक गाडी आ जाएगी। समय इस तरह कट जाएगा।"

बातें करते वे एक दुकान पर पहुचे। उन्ही दुकानदारा म एक बहुत ही चुस्त चालाक व्यक्ति ने सौंदय प्रसाधनो की फुटपाथ पर अपनी दुकान फैला रखी थी। श्यामलाल जी और सरिता को देखकर उसने कहा—"आइए बाबू साहब, आइए बहन जी, लीजिए न! सभी कुछ आपके लिए ही ता है।'

"अच्छा, इस क्रीम का क्या दाम है?" एक डिब्बी हाथ मे लेते हुए सरिता ने पूछा।

"होते तो सवा पाच रुपए हैं, लेकिन आपके लिए पाच रुपए लगा दूगा।"

श्यामलाल जी न अपनी जेब से रुपए निकाले और उनम से पाच रुपए उस दुकानदार का दे दिए। श्यामलाल जी के पास कुल कितने रुपए हैं, सारे नोट उनके हाथ मे देखकर उस दुकानदार ने अनुमान लगा लिया।

इसके अतिरिक्त भी सरिता ने एक दो चीजा की खरीद की और वे स्टेशन पर आ गए। गाडी का समय नजदीक आता जा रहा था और टिकट खिडकी पर टिकट बटने शुरू हो गए थे।

श्यामलाल जी ने अभी टिकट नही लिए थ। टिकट बटता देखकर वह खिडकी के पास गए और टिकट के पसे निकालने को उन्होने अपने जेब मे हाथ डाला लेकिन जेब एकदम खाली पाकर वह स्तभित और अवाक् रह गए। किसी ने उनकी जेब साफ कर दी थी, एक भी पैसा नही छोडा था।

यह बात वह बिलकुल नही जानते थे कि जिस पहाडी इलाके को लोग ईमानदार और निरापद समझते हैं वहा पर भी उनका साबिका जेबकतरा से पड जाएगा, अन्यथा वह इतना बेफिक्र होकर कभी यात्रा नही करत। भीड भाड और प्लेटफाम आदि जसी जगहा मे छद्मवेशी व्यक्ति कुछ आवश्यक वस्तुओ की बिक्री के नाम पर दुकान सजाते हैं और मौका पाकर मुसाफिरो को लूट लन हैं। उनके शब्दकोश म धनी निधन दोनो का अभिप्राय एक होता है। किसी को कुछ दने के बदले, उनसे कुछ प्राप्त करना ही उनका मुख्य उद्देश्य होता है। ऐसो म से ही एक व्यक्ति न अपनी दुकान बिछा रखी थी। आरभ म उसन श्यामलाल जी से हास-परिहास के कुछ शब्द कहे और वह प्रभावित होकर उसकी दुकान की ओर बढ गए थ। उसकी दुकान मे सौंदय प्रसाधन की कुछ विशेष सामग्री

साप के ताए हुए दिन (कविता सग्रह 1980)
शब्द (कविता सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हू (कविता सग्रह 1981)
मरधान (कविता सग्रह 1984)
ै 50 गोरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

थी, जो शिमला इलाके के रीति-रस्मो के प्रचलन के अधिक निकट थी। सरिता और श्यामलाल जी ऐसे ही स्थान पर पहुच गए थे।

अब किराये की कौन कहे, उनके पास भोजन तक के लिए भी पसे नही बचे थे।

"चाचाजी, अब क्या होगा ? सरिता ने घबराकर कहा।

"समय ने हमको भी परखना चाहा है। अब क्या होगा, मरी भी समझ मे कुछ नही आ रहा है।' श्यामलाल जी बोले।

"फिर तो विकट समस्या है।"

"समस्या सूचना दकर नही आती, बेटी!'

"हा, यह तो सत्य ह लेकिन धोखा देकर आती है, सोचनीय यही है। हमारे सस्तेपन के लोभ न यह मब किया।"

"लोभ ससार के प्रत्येक काय की प्रेरणा है। इसलिए यह भूल जाओ कि यह सिफ तुम्हारे मन म ही उपजा। अब तो यह सोचना है कि क्या यहा कोई ऐसी जगह भी है, जहा से कुछ मदद मिल जाए और हम सकुशल बबई पहुच जाए ?"

"मदद का जरिया ?" और सरिता के मन मे तुरत सुनील की याद आई। वह प्रत्यक्ष बोल पडी—"तो क्या सुनील के पास फिर से चलना ठीक रहेगा ?"

"सुनील ? हा, तुमने ठीक सोचा। लेकिन वह भी बेचारा परिस्थितिया स आहत है!" श्यामलाल जी बोले।

'लेकिन और उपाय भी क्या है ? कम से कम वह इतनी व्यवस्था तो कर ही देगा, जिससे हम घर पहुच सकें।" सरिता ने अपना विश्वास व्यक्त किया।

श्यामलाल जी बोले—"चलो, देखते है।"

पैदल ही चलते चलते वे नेहरू उद्यान पहुच गए। सहमे-सहमे से

भीतर प्रवेश कर श्यामलाल जी ने कालबेल का बटन दबाया। भीतर से आवाज आई—"कौन, श्रीमान जी हैं ?"

स्वर सुनील के थे। कुछ देर मे वह बाहर आया। देखा, श्यामलाल जी और सरिता उदासी की मुद्रा मे उसके सामने खडे हैं। वह विस्मित स्वर म बोला—"क्यो, क्या बात हो गई ? आप लोग गए नही ?"

"किस मुख से कहू, सुनील ! तुम खुद परिस्थितियो के मारे हो। कर सकोगे या नही मैं नही जानता !" श्यामलाल जी बोले।

जहा तक सभव बन पडा आपकी सेवा जरूर करूगा, आप कहिए तो सही। क्या बात हो गई ? आप लोग यहा से सकुशल घर पहुच जाए, मेरी हार्दिक कामना है।"

और फिर श्यामलाल जी ने कुछ सकुचाते भाव म अपने साथ स्टेशन पर जो कुछ बीता, उसे कह सुनाया।

सुनकर सुनील आहत स्वर मे बोला—"चोरी, यह तो बहुत ही अन्याय हुआ। खैर, छोडिए अब उस बात को। जो होना था, वह तो हो ही गया। अब यह बतलाइए, कितने रुपया मे आपका काम चल सकता है ?"

"चार सौ रुपया की व्यवस्था हो जाए तो बहुत है। क्यो सरिता ?" श्यामलाल जी ने उसकी ओर देखकर कहा।

'हा, कम मे कम इतने तो लग ही जाएगे।' सरिता न जवाब दिया।

'बबई पहुचते ही तुम्हारी यह रकम वापस भेज देंगे।' श्यामलाल जी सुनील की ओर देखकर बाले।

सुनील के पास रुपये तो थ नही। आय के अनुसार ही उसका व्यय भी था। 'नेहरू-उद्यान' की प्रसिद्धि के कारण शिमला के अधिकाश सेठ साहूकार उसे जानते थे। उसने मडी म एकाध सेठो के पास जाने का

साप के साए हुए दिन (कविता सग्रह 1980)
नाव (कविता सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हू (कविता सग्रह 1981)
मरघान (कविता सग्रह 1984)

, 50 गौरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

निश्चय किया। उसके मन मे हर्ष था कि आज उसे किसी अनजान अतिथि की सेवा का अवसर मिला है। उसे इस बात पर पूरा भरोसा था कि कही न कही से रुपयो का प्रबध अवश्य हो जाएगा। वह बोला—"आप लोग आराम करें, मैं अभी आया।" कहकर वह बाहर निकल गया।

सुनील मडी के एक सराफ के यहा पहुचा और करीब आधा घटा सिर खपाने के बाद चार सौ रुपये प्राप्त किए। रुपये लेकर वह नेहरू-उद्यान वापस आ गया।

उस समय श्यामलाल जी से सरिता बाते कर रही थी—"चाचाजी, बाहर की दोस्ती ऐसे मौको पर बडी काम आती है। आज यदि सुनील नही होता तो क्या होता ?"

"क्या होता—यह तो ऊपरवाला ही जाने ! हा, इतना तो साफ दिख रहा है कि यदि सुनील नही होता तो भीख मागने के अलावा दूसरा उपाय भी क्या था ?" श्यामलाल जी ने कहा।

"भीख क्यो मागते ?' कहते हुए सुनील ने भीतर प्रवेश किया—'जिसका मन साफ है, उसकी मदद ऊपर वाला जरूर करता है।" और उसने चार सौ रुपये श्यामलाल जी के हाथ पर रख दिए।

श्यामलाल जी के उदासी के भाव मे कुछ परिवर्तन आया। सरिता को अपार प्रसन्नता हुई। लेकिन मन ही मन उसे इस बात का अफसोस भी था कि उसने सुनील के सिर पर परेशानी का एक और बोझ लाद दिया।

इस बार अवसर निकालकर वह स्वय उनके साथ स्टेशन गया और बबई की गाडी पर चढाकर वापस हुआ।

श्यामलाल जी और मरिता सकुशल बबई पहुच गए और उन्होने तुरन्त चार सौ रुपये सुनील के पास वापस भिजवा दिए।

श्यामलाल जी काफी सपन्न व्यक्ति थे। पसो की कुछ कमी नही थी। बबई के समान ही उनकी 'कल्पना रेडियोज' के नाम से एक दुकान पूना म भी थी। बम्बई की दुकान को वह स्वय दखते थे और पूना वाली दुकान को उनका एक विश्वासपात्र व्यक्ति चलाता था। बीच-बीच मे हिसाब किताब समझने और देखभाल के खयाल से दो एक राज के लिए वह पूना चले जाया करते थे।

शिमला से आने के करीब एक सप्ताह बाद ही श्यामलाल जी पूना-वाली दुकान का निरीक्षण करने गए। वहा वह पाच छह दिन तक रुके रह। दुकान के सभी कमचारियो के वेतन का नया निर्धारण किया। वहा के प्रमुख सचालक के बाहर जान के कारण पाच छह रोज उन्हे और रुकना पडा।

पूना जब जब आए, दो चार दिन स अधिक समय तक वह कभी नही रुके थे। लेकिन इस बार एक बारगी दस बारह दिना तक रुक जाने के कारण उनका मन एकदम ऊब गया। सचालक जब बाहर से लौटकर आया तो उसन देखा, मालिक का मन कुछ उखडा उखडा सा है। उसने श्यामलाल जी को सलाह दी—' वह शहर मे कुछ क्षण इधर उधर घूम-फिर आए, इससे मन बहल जाएगा।'

जब भी पूना अथवा बबई म किसी गोष्ठी आदि का आयोजन होता तो श्यामलाल जी को प्रमुख अतिथि के रूप म आमन्त्रित किया जाता था। गोष्ठियो म उनकी चलती भी खूब थी। मुशायरा, कविसम्मेलनो और धार्मिक आयोजनो मे वह सिफ कलाकारो के गुणा का ही नही, बल्कि उनकी कला की गुणवत्ता पर भी ध्यान देत थे और प्रशसा करके उनका उत्साहवद्धन किया करते थे।

ताप के ताए हुए दिन (कविता सग्रह 1980)
[illegible] (कविता सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूं (कविता सग्रह 1981)
मरध्यान (कविता सग्रह 1984)

50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

अपने सचालक की सलाह पर उस दिन श्यामलाल जी पूना का बाजार दखने निकल। कपडा मार्केट से होकर वह अचना स्टोर की ओर बढे जा रहे थे कि तभी किसी ने उनके हाथ मे एक परचा दिया। लिखा था—

"भाइयो और बहनो !

आपके ही शहर मे कवियो का मेला। सव-साधारण को विदित हो कि हमारे ही शहर म आज दिनाक 6 नववर, रात साढे नौ बजे एक कवि सम्मलन का आयोजन किया गया है। इस कवि-सम्मेलन मे अतर्राष्ट्रीय ख्याति के कवियो को आमन्त्रित किया गया है। इसमे जीवन और प्रेम जसे दो गभीर पहलुओ पर विचार होगा। इसलिए आम जनता से अपील है कि वह अधिक से अधिक सख्या मे उपस्थित होकर इस महत्त्वपूण आयोजन को सफल बनाए।"

इस समाचार से श्यामलाल जी के आनन पर एक अपूव चमक सी आ गई। वह तुरन्त कमरे पर वापस आ गए और कोट पट उतार खूटी के हवाले कर, लुगी लपट, आकर बरामदे म बैठ गए।

कुछ दर बाद दुकान का सचालक आया। उसका खयाल था कि सेठ जी आज बवई वापस चल जाएगे। लेकिन जब उसने आकर देखा कि अटैची मे भरे कपडे निकालकर बाहर रखे हुए हैं तो वह बोला—"आप आज जाने की बात कर रहे थे न ?"

"कोई बात नही, यदि आज नही गया तो। मेरे लिए बवई और पूना म कोई अतर नही है। चाहे जहा रह जाऊ। आज मेरा रुकना बडा फायदेमद है।"

"क्या कोई रेडियो सेट बिकन वाला है ?" सचालक न पूछा।

"तुम भी कहा की बात कर बठ ? रेडियो सेट मैं रहूगा तभी बिकेगा क्या ? क्या यह काम तुम नही कर सकत ? या मेरे न रहने पर करते

नहीं हो ? अरे भाई, मैं जिस लाभ की बातें कर रहा हूँ ऐसे मौके बार बार नहीं आते। आज शहर में कवि सम्मेलन है। उसमें मुझे सम्मानित अतिथि के रूप में आमन्त्रित किया गया है।' श्यामलाल जी बोले।

सुनकर संचालक अवाक् रह गया। वह मन ही मन सोचने लगा—'कहाँ एक व्यापारी—और कहाँ कवि सम्मेलन ? लक्ष्मी और सरस्वती का यह समागम ? विश्वास नहीं होता। वह आश्चर्य से श्यामलाल जी की ओर देखने लगा।

उसे एकटक अपनी ओर निहारते देखकर श्यामलाल जी बोले—"अरे भाई, अचंभा क्या करते हो ? एक संचालक को दूरदर्शी होना चाहिए। समीपस्थ और दूरस्थ का जब उसमें मिश्रण होगा, तभी वह सही मायने में सफल संचालनकर्ता होगा।

श्यामलाल जी ने अपनी दुकान के संचालक के आगे छोटा मोटा एक ऐसा भाषण दे डाला कि उसकी कुण्ठित बुद्धि में चमक आ गई और उसने भी उस कवि सम्मेलन में उनके साथ जाने में अपनी खुशी जाहिर की।

श्यामलाल जी ने उसी समय टक्सी वाले को बुलाने का आदेश दिया। खुशी और आनंद में वह इस कदर डूब गए कि उन्हें इस बात का ध्यान ही नहीं रहा कि कवि-सम्मेलन का समय रात साढ़े नौ बजे है।

संचालक ने पूछा—"अभी आप कहाँ जाना चाहते हैं।'

"तुम तो जानकर भी अनजान बन रहे हो ?' श्यामलाल जी ने उतावले स्वर में कहा।

'सचमुच नहीं जानता, तभी तो पूछ रहा हूँ।' संचालक फिर बोला।

"मैंने कहा नहीं कवि-सम्मेलन में जाना है।' श्यामलाल जी ने कहा।

ताप के ताए हुए दिन (कविता संग्रह 1980)
शब्द (कविता संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)

डी 40 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

"लेकिन सम्मेलन तो रात साढ़े नौ बजे से है। आप अभी से जमकर क्या कीजिएगा ?"

"ओह, मेरा भी दिमाग कहां चला गया !" श्यामलाल जी चौंके।

इसके बाद वह बरामदे में पड़ी कोच पर लेट गए और विचारों की बागडोर ढीली कर दी। तरह तरह की भावनाएँ पेंगें मारने लगीं उनके मन मस्तिष्क में। चिंतन में वह इस कदर डूब गए कि उन्हें यह जान ही नहीं पड़ा कि कब शाम आ गई। वह उठे और हाथ मुंह साफ कर जाने की तैयारी की। घर से निकले और घूमते फिरते जाकर सम्मेलन में शामिल हो गए। निमंत्रित अतिथि होने के नाते उन्होंने अपना आसन मंच पर ही जमाया। सभी कवियों से उनका परिचय कराया गया। सम्मेलन में सभी तरह के विचार भाव वाले कवि पधारे थे। उस रात काव्य पाठ का वह मंच खूब जमा। सबसे उच्चकोटि की कविता रही ख्यातिप्राप्त में पधारे कवि रजनीश की। उनकी कविता में जीवन का सरस मधुर मर्मस्पर्शी चित्रण था, जिससे श्यामलाल जी बहुत प्रभावित हुए।

रजनीश और श्यामलाल जी का परस्पर में व्यक्तिगत परिचय भी हुआ। उन्हें रजनीश की संगति ने इसलिए भी प्रभावित किया कि उनके और रजनीश के विचार करीब-करीब परस्पर बहुत अधिक मेल खाते थे। दोनों के बीच बड़ा सौहार्द्र स्थापित हो गया।

सम्मेलन की समाप्ति होते ही श्यामलाल जी घर आकर रात की गाड़ी से बंबई के लिए रवाना हो गए। उधर रजनीश को भी इसी समय अलीगढ़ का एक निमंत्रण पत्र मिला और वह भी तैयारी कर तुरत यात्रा पर निकल पड़े। अलीगढ़ में रजनीश की सदारत में एक सभा का आयोजन हुआ।

रजनीश साहब बड़े घुमक्कड़ी स्वभाव के व्यक्ति थे। अलीगढ़ से

फुरसत मिलते ही उनके मन में समुद्र की लहरों की शोभा देखने की इच्छा जागृत हुई और वह तुरत चल पड़े अलीगढ़ से बंबई की ओर।

तीसरे दिन वह बंबई पहुंचे। ट्रेन से नीचे आने के बाद चार घंटे तो उन्होंने बंबई का स्टेशन देखने में ही बिता दिया। मन जब यहां से पूरी तरह भर गया तो उन्होंने नगर में प्रवेश किया। उन्होंने अपना निवास-स्थान 'क्लीव कॉटेज' के पास 'मेमोरियल रेस्ट हाउस' को बनाया। वहां उन्हें केवल सुरक्षित स्थान ही मिला था। भोजन-व्यवस्था उचित न होने के कारण दो एक दिन बाद उन्होंने वह स्थान खाली कर दिया और डेरा जमाया पास के ही 'वसी लाज' में, जो अपनी सुव्यवस्था के लिए प्रसिद्ध था। रात को वह भोजन कर लॉज में विश्राम करते और दिन में बंबई परिभ्रमण। बंबई की यात्रा में रजनीश जी की यही दिनचर्या थी।

वसी लाज की व्यवस्थापिका थी सरिता की भूतपूर्व सहपाठिनी सहेली रजनी। प्रबंधक कक्ष लॉज के सदर द्वार पर था और लॉज में हर आने जाने वाले का वास्ता पड़ता था रजनी से। इस प्रकार प्रायः सभी लोगों की उससे परस्पर में दो चार मधुर बातें अवश्य ही हुआ करती थी।

उस दिन मंद मंद फुहारें पड़ रही थी। आकाश मनोहारी आकर्षक बादलों से आच्छादित था। उन रिमझिम फुहारों में पैदल चलना अब कठिन हो गया था। रजनीश साहब उस समय चौपाटी पर सैर को निकले थे। यद्यपि उनके लौटने का समय हो गया था और वह धीरे धीरे नित्य की तरह लाज की दिशा में चलने को प्रस्तुत भी हो गए थे लेकिन बिना किसी गाड़ी के वापसी संभव न थी। लाचार उन्हें एक टैक्सी लेनी पड़ी।

चौपाटी से चली टैक्सी आकर सीधे 'वसी लाज' के सदर द्वार पर रुकी। रजनीश जी नीचे उतरे और खड़े होकर प्रतीक्षा करने लगे कि ड्राइवर बोले तो वह किराया चुका दें। और ड्राइवर देख रहा था कि बाबू जी खुद ही जो उचित होगा दे देंगे। जब उसने कुछ देर तक पैसे नहीं

ताप के ताए हुए दिन (कविता संग्रह 1980)
शब्द (कविता संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूं (कविता संग्रह 1981)
अरघान (कविता संग्रह 1984)

50 गौरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

मागे तो रजनीश जी ने खुद पहल की—

"भाई, मैं खडा हू कि तुम भाडा बोलोगे, लेकिन तुम चुपचाप खडे हो।"

ड्राइवर ने हसते हुए जवाब दिया—"बाबूजी, बोला उनसे जाता है, जो नासमझ होते हैं। आप समझदार लोग हैं, फिर बोलना क्या? जो मुनासिब होगा, वह खुद ही दे देंगे।"

उ होने जेब से पाच रुपये का एक नोट निकालकर उसके हाथ पर रख दिए।

ड्राइवर ने सैल्यूट की मुद्रा मे प्रसन्नता से नोट हाथ मे ले लिया।

रजनीश जी ने पूछा—"अब तो सतुष्ट?'

हाथ जोडकर ड्राइवर न जवाब दिया—"बाबूजी, जाने कितने उदास चेहरे आप से प्राप्त कर अपने को भगवान मानते हैं। ईश्वर जो करता है, ठीक ही करता है। उसने यदि गरीब बनाए तो साथ म ही उनके पालने वाला को भी बना दिया है। हम दिन भर भटकते हैं खून-पसीना एक करते हैं, अपने लिए अपने बाल-बच्चो के लिए। महगाई इतनी बढ गई कि पूरा फिर भी नही पडता। लेकिन ऊपर वाला अ यायी नही है, आप सरीखे किसी न किसी बाबू को हमारी मदद मे भेज देता है और इस तरह हमारी भी गाडी किसी तरह आगे सरकती रहती है।"

मन मे आया कह दें—'वाह, ऐसा लेन-देन हो तो फिर पूछना ही क्या? कोई दुखी ही क्या रहे?' लेकिन जाने क्या, होंठो मे ही दबाकर मुस्करा उठे।

इतने दिनो मे रजनीश ने बबई निवासी की एक झलक मात्र देखी थी। वे मन को झूठी तसल्ली दिला रहे थे कि उनके साथ यहा लोगो का ऐसा ही व्यवहार मिलेगा। समय अच्छा ही बीतेगा। कभी कभी वह सोचते—निश्छल सदव्यवहार गरीबो के साये म जाने पर ही मिलता है।

परिश्रम और सद्व्यवहार ही उनकी जीविका का सहारा है। धनिया की आखो मे स्नेहिल सद यवहार नही, धन की घ्रुध होती है। सोचते हुए वह लाज के द्वार से भीतर आए।

काउटर पर बैठी रजनी उनके स्वागत म मुस्करा पडी।

जवाब मे रजनीश जी मुस्कराकर बोले— घ यवाद!'

और तुरत ही चुप हो गए।

"आपका एकाएक चुप हो जाना बडा खल रहा है।'

'मैं ऐसे बोलते रहन क लिए तो यहा आया नहा! हा, यदि आप कुछ पूछेंगा/चाहेंगी तो जरूर बालूगा।" रजनीश जी न जवाब दिया।

"आप तो तार सप्तक भाषा बोल रहे हैं ? हम जैसो के पास समझने का इतनी बुद्धि कहा ? हा काई कवि-प्रिया भल ही समझ ले ?" रजनी ने छीटाकशी की।

'बहुत बडी बात बाल गइ। लकिन मुझ जस घुमक्कडी की 'कवि-प्रिया बनन को कोई तैयार ही क्यो हागा ? हा, आप तलाश कर द दें तो यह और बात है।" रजनीश जी ने हसते हुए कहा।

उनकी बात पर रजनी भी हस पडी। किसी का जाल म फासने के लिए वर्त्ता म हसने-हसान की कला का होना बहुत जरूरी है। पूना और अलीगढ के सम्मेलनो म भाग लेकर अब समुद्र की लहरा का अभिसार करने आय थे बबई। मखमली कुर्ते की ऊपरी जेब म पर्स साफ दिख रहा था। उसमे दो हजार से कुछ अधिक ही रुपए थ। रजनीश जी लुब्ध थे रजनी की मद-मद मीठी मुस्कान पर और रजनी की दृष्टि थी उनकी जेब के पर्स पर।

उन्हे खडा देखकर बाली—"आइए बठिए न, खडे क्यो है ?'

रजनीश जी पास पडी कुरसी पर बठने लगे, ता रजनी न फिर टोका —"यहा आइए, कोच पर। ठीक स विश्राम कीजिए! चाहे तो लेट भी

ताप का लाए हुए रंग (कविता सग्रह 1980)
शब्द (कविता सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हू (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)
50 गौरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

सक्ते है। अब शायन्द ही कोई यात्री आए।"

"अच्छी बात है, यदि आप कहनी हैं तो यही सही।" कहते हुए रजनीश जी काउटर घूमकर उसके केबिन मे जाकर उसके पास रखे कोच पर बैठ गए।

इसके बाद वह एकदम चुप रहे। काफी दर तक चुप रहे। ऐसे मौको की चुप्पी निरथक नही होती। उसके भीतर समाय बडे-बडे राज अमस मारते रहते हैं ऊपर आन को। मौन स्वीकृति भी है और अभिव्यक्ति भी। कभी कभी क्षोभ और लोभ की भी। उन्हे मौन देखकर रजनी बोली—

"आप चुप क्या है?"

"आदेश हो तो मै "

"हा हा, कहिए न! चुप क्यो हो गए?" रजनी उनका उत्साह बढाती हुई बोली।

'प्यास लगी है!" रजनीश जा कुछ सकुचाए, किंतु ललचाए स्वर म कहा।

उठकर गिलास म पानी दती हुई रजनी बोली—"लीजिए न!"

इस पानी से प्यास नही बुझेगी!'

"ता "

"यह प्यास दिल की है। और आप तो जानती ही हैं कि दिल !'

"ओह! अब समझी तो क्या मै इतनी खूबसूरत हू कि आप "

"कुछ पूछिए मत! लाजवाब निहायत लाजवाब! आप भी काउटर की कुरसी से यही आ जाइए न!"

"अच्छा, आती हू।'

मनुष्य अपने पथ से विचलित हुआ कि गया । रजनीश जी अभिसार के प्यासे थे । उनकी प्यास बुझाने के लिए रजनी ने एक गिलास में उन्हें ह्विस्की के कुछ पग दिए । लेकर रजनीश जी पीने लगे कि इसी बीच कपड़े में उसने क्लोरोफार्म लगाया । अब तक ह्विस्की का एक वसंती उन्माद रजनीश जी के दिमाग पर अपना असर डाल चुका था । उन्हें लगा, रजनी शायद कोई इत्र लगा रही है, क्योंकि उसी समय उसने अपनी 'सेंट' की शीशी का मुंह भी खोल दिया था, जिससे कि उसका केबिन उसकी महक से भर उठा था ।

जब मनुष्य अपने लक्ष्य की चिंता नहीं करता है तो लक्ष्य पहले ही प्रस्थान कर जाता है । और मनुष्य तब उतर जाता है कठिनाइयों की उस खाई में, जिससे बाहर होना कभी संभव नहीं होता ।

रजनीश को बुझानी थी अपनी प्यास और रजनी को करनी थी अपनी जेब गरम । वह रजनीश को लेकर कोच पर लेट गई और उनका पूरा सिर अपनी आंचल की छाया में ले लिया ।

रजनीश पर मदिरा की मस्ती पूरी तरह छा गई थी । वह अपने होश में न थे । धीरे धीरे क्लोरोफार्म का नशा भी शरीर में आत्मसात होता गया । मदहोशी अधिक बढ़ गई पिंजरा से प्राण पखेरू उड़ गया ।

अपनी भुजाओं के आलिंगन से निर्जीव रजनीश को कोच पर लिटाकर रजनी ने उनकी जेब से पर्स निकाला । परिस्थिति की गंभीरता को उसने अच्छी तरह भांप लिया । इसीलिए बिना किसी से कुछ कहे-सुने बिना किसी से मिले वह अपना पर्स उठाकर लाज से बाहर निकल गई । रह गया— बंबई के समुद्री लहरों का चिर स्पर्शन करता कोच पर पड़ा रजनीश का निर्जीव शरीर ।

इस घटना का पता करीब एक घंटे बाद प्रबंधक कक्ष बंद करने के लिए आए एक बेयरा को चला । उससे पहले यही समस्या कोई यात्री

[illegible] (कविता संग्रह [illegible])
शब्द (कविता संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

प्रबधक कक्ष के कोच पर लेटा है। उसने उसे उठाने के लिए एक दो आवाज दी। जब यात्री नही उठा तो यह सोचकर कि वह गहरी नीद सो गया है, उसे उठाने के लिए केबिन के भीतर कोच के पास चला गया।

एक दो बार झकझोर कर उसे उठाने की चेष्टा भी की। लेकिन जब वह व्यक्ति इतने पर भी न उठा तो उसने उसे पलट दिया। पलटते ही वह व्यक्ति मुरदे के समान फश पर आ गिरा। बेयरे को स्थिति समझते देर न लगी। वह जोर से चीख पडा इतनी जोर से कि सारा लाज गूज उठा।

उसकी चीख सुनकर ऊपर से लाज का मालिक डयूटी पर उपस्थित सारे बेयरे और कुछ यात्री भी लॉज के प्रबधक कक्ष तक आ जमे। स्थिति देख लाज मालिक भी सकते म आ गया। उसने तुरत पुलिस स्टेशन फोन किया। घटना के प्रकाश मे आते ही सारे लाज म हलचल मच गई। लाज के यात्रियो मे भय समा गया। पुलिस के आने तक लाज मालिक ने किसी भी व्यक्ति को लाश के नजदीक न जाने दिया। थब तक वहा काफी भीड जमा हो चुकी था।

पुलिस इन्स्पेक्टर ने मोड पर ही अपनी गाडी रोकी। उतरकर पैदल ही आगे बढा। सबसे पहले उसने अपने चारो ओर एक नजर डाली और हाथ के बेंत स सकेत करते हुए बोला—"आप लोग जाइए! यहा भीड लगाने की जरूरत नही।'

लेकिन भीड अपने स्थान पर पूववत खडी तमाशा देखती रही। लाश के निकट पहुचकर इस्पेक्टर ने उपस्थित लोगो को सबोधित कर पूछा—'इस लाज का मालिक कौन है?'

लाज के मालिक ने ऊचे स्वर म जवाब दिया—"हुजूर, मैं हू लाज का मालिक।'

बसी लॉज के मालिक ने अपने जीवन म लॉज के प्रबध के बनिस्बत

आज तक जो भी ख्याति अर्जित की थी, अचानक की इस दुखद घटना के कारण सब मिट्टी म मिल गई। उसके ऊपर स लॉज म ठहरे हुए मुसाफिरो से लेकर महानगर की जनता तक सबका विश्वास जाता रहा।

पुलिस इस्पेक्टर ने रोव जमाते हुए कहा—"इस घटना से तो यही साबित होता है कि होटल की आड मे आपका यही पेशा था!"

"जी नही, हुजूर! न तो मेरा यह पेशा था, न ही ऐसे पशे की कभी कल्पना करता हू। आज तक के इस लॉज के जीवन मे कभी ऐसी घटना घटी, मेरा दावा है, कोई साबित तो करके बताए! सच पूछते है, हुजूर! तो मै इस लाश का दावेदार भी नहा हू।"

'तो फिर आपने मरे पहली बार के पूछने पर यह क्यो कहा कि इस लाश के मालिक आप हैं?'

'हुजूर, वह ता मैं अभी भी कहता हू, क्योकि घटना इस लाज मे घटी है। मतक व्यक्ति चार छ दिनो से मेरी लाज मे रह रहा था। इसलिए जब तक इसका काई दावेदार नही मिलता तब तक इस लाश का मालिक मैं हू। लाज मालिक ने निभय स्वर मे जवाब दिया।

'ता फिर इसका हत्यारा कौन है? हत्या क्या हुई?" इसपेक्टर फिर गरजा।

'हुजूर हमार लॉज मे जितन लोग काम करते हैं, इस समय सभी उपस्थित हैं। सिफ एक व्यक्ति अपन स्थान स गायब है। उसी पर मेरी शका है।'

"कौन है वह?' इस्पक्टर फिर दहाडा।

"इस लॉज की प्रबधक रजनी देवी। उसके पिछल जीवन का रिकाड भी यही कहता है कि पहले वह व्यक्ति को अपने सौंदय के जालपाश मे बाध लेती थी, और पीछे धाखे स उसकी हत्या कर उसका माल असबाब लेकर किसी अनात दिशा की ओर चपत हो जाती थी। लगता है इस

नक्ष (कविता संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)

50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

हत्या म उसने अपना वही पुराना हथकण्डा काम म लिया है। इस व्यक्ति की हत्या भी उसी के लोभ का परिणाम है।"

"यह हत्या उसी ने की, आप यह किस आधार पर कह रहे हैं ?" इस्पेक्टर ने पूछा।

"सबसे बडा सबूत है, हुजूर ! उसकी दराज से निकली क्लोरोफाम की शीशी। मेरा पूरा विश्वास है हुजूर, इस शीशी को यदि आप किसी फिगर प्रक्टिसनर के पास भेजकर पता लगाए तो आपको निश्चय ही इस पर किसी युवती की उगलियो के निशान मिलेंगे।"

"दूसरा सबूत ?"

"दूसरा यह कि रात साढे ग्यारह बजे तक लॉज म उसकी डयूटी थी। घडी म अब जाकर साढे ग्यारह बज रहे हैं और बिना किसी को कोई सूचना दिए वह दो घटे पहल स ही अपनी साट से गायब है। यदि उसने खून नही किया था तो उसे यहा से भागने की क्या जरूरत थी ?"

"ओह, समझा ! आपके तक म दम है। आपका यह बयान मैं दज कर लेता हू।" और इस्पक्टर ने मनक का चश्मा एव उसकी लाश एम्बुलेंस मे रखवाकर, उसे मेडिकल जाच के लिए भिजवा दिया। फिर लाज-मालिक को अपने साथ लेकर वह पुलिस-स्टशन की ओर रवाना हो गया।

जीप के गुजरने का रास्ता टकनीकल मार्केट से होकर था। इसी रोड पर श्यामलाल जी की दुकान थी, जो 'कल्पना रेडियोज' के नाम से प्रसिद्ध थी। यह दुकान सडक के एक मोड पर थी। यदि वहा पाच छ गाडिया एक साथ पहुच जाती तो उस चौराहे पर अच्छी-खासी भीड जमा हो जाती थी। एम्बुलेंस उस मोड पर पहले ही आ डटी थी। अब पीछे से इस्पेक्टर की जीप भी आ गई थी। सयाग की बात—उस वक्त दुकान म श्यामलाल जी स्वय मौजूद थे। इस्पेक्टर को देखकर वह दुआ-सलाम के लिए स्वय आगे बढ गए। इस्पेक्टर न श्यामलाल जी को पूरी घटना

बतला दी। सब कुछ जान लेने के बाद श्यामलाल जी एम्बुलेंस के पास गए। लाश पर दृष्टि पडते ही वह चौंके और विस्फारित नजर से उसे एकटक निहारने लगे। कुछ देर बाद उनके मुख से निकला—"अमा यार, इंस्पेक्टर! यह लाश तो स्यालकोट के प्रसिद्ध कवि रजनीश जी की है।"

"क्या आपका इनसे कोई व्यक्तिगत संबंध था?" इंस्पेक्टर ने पूछा।

"जी, श्रीमान जी! यह मेरे परम मित्र थे।" श्यामलाल जी ने जवाब दिया।

"क्या सचमुच यह आपके करीबी मित्र थे?" इंस्पेक्टर ने फिर सवाल किया।

"बिल्कुल सच है, यह मेरे करीबी मित्र थे।"

"तो आइए जीप में! आपकी मदद की भी जरूरत पड सकती है।"

वह जीप में बैठ गए। श्यामलाल जी ने जब से कवि रजनीश की लाश देखी तभी से उनका चित्त ठिकाने नहीं था। इस बात का दुख उन्हें और अधिक था कि उनकी रजनीश कवि से एकदम नई मित्रता थी, अभी अभी की। उस पहली मुलाकात के बाद उनसे फिर मुलाकात नहीं हो पाई थी। और अब उनसे मुलाकात भी हुई तो सोये पडे थे मौत के साये में।

एम्बुलेंस और जीप दोनों ही पुलिस-स्टेशन पहुंचे। पुलिस ने वहां लाश का एक बार फिर निरीक्षण किया। अब की बार की जांच से पुलिस भी इसी निष्कर्ष पर पहुंची कि निस्संदेह लाश कवि रजनीश की है और क्लोरोफार्म सुंघाकर इनकी हत्या की गई।

लाश को पोस्टमार्टम के लिए अस्पताल भेजा गया। वहां भी जांच के बाद डाक्टर इसी मत पर पहुंचा—"अधिक मात्रा में क्लोरोफार्म दिए जाने से मौत हुई है।"

इसके बाद कवि रजनीश की लाश का अंत्येष्टि-कर्म कर दिया गया।

[illegible] (कविता संग्रह 1980)
नज्र (कविता संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूं (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)

50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

घूमती फिरती रजनी वी० टी० रेलवे स्टेशन के प्लेटफाम नंबर दो पर पहुची। बसी लाज से यह स्टेशन करीब नौ मील दूर था। प्लेटफाम पर समाचार पत्रों की बिक्री बडी तेजी से हो रही थी।

समय बिताने के लिए रजनी ने भी एक पत्र खरीद लिया और पढने लगी—"एक कवि की बसी लॉज मे एक 'विषकन्या' के हाथो हत्या।"

इस समाचार को पढते ही वह सकपका गई। फिर समाचार पत्र वही फेंककर वह सिटी बस मे सवार हो अपनी सहेली सरिता के घर की ओर चल दी। बस अपनी तेज रफ्तार से 'श्याम भवन' के करीब होती जा रही थी। दूर से ही 'श्याम भवन' एक विशाल भूखड घेरे खडा दिखाई पडा। भवन चारो ओर से एक चारदीवारी के घेरे मे था। चारदीवारी के भीतर किनारे किनारे बडा ही सुरम्य बाग था और बाग के बीचोबीच खडा था वह विशाल भवन! उसके मुख्य द्वार के सामने बगीचे से लगकर नलकूप लगा था।

गेट पर एक पहरेदार खडा था। उसने रजनी के पहुचते ही पूछा—आप किससे मिलना चाहती हैं?"

"सरिता जी से! उनसे जाकर कहो कि आपकी एक सहेली आपसे मिलने आई है।"

रजनी को गेट पर खडा कर दरबान खबर देने अदर चला गया। कुछ ही देर मे दरबान के पीछे-पीछे सरिता भीतर से बाहर आई। उसने एक लबे अरसे के बाद जब रजनी को अपने घर आया देखा तो उसका मन प्रसन्नता से नाच उठा। वह उसका नाम लेकर कुछ कहने ही जा रही थी कि अचानक उसे सवेरे के अखबार की याद आई, जिसमे उसने रजनी का नाम पढा था। वह सतर्क हो गई, क्योकि दरबान सामने ही

सरिता ने उसका नाम गोल करते हुए कहा—"अरे, न! बहुत दिनो बाद मेरी याद आई तुम्हें! अच्छा, चलो

सही, कम से कम तुमने याद तो किया ! तुम्हे आज देखकर मेरा मन कितना प्रसन्न है बखान नही कर सकती !"

'और मरा मन भी तो इतने दिनो बाद मिलने से बाग-बाग हो उठा है। रजनी बोली।

"अच्छा आओ चलो घर के भीतर। वही बैठकर इत्मीनान स सुनें सुनायेंगे एक दूसरे को।" कहती हुई सरिता उसका हाथ पकड भीतर लेकर चली गई।

रजनी अपने जीवन का पिछला इतिहास सरिता को बतलाना नहीं चाहती थी। उसे यह भी नही मालूम था कि अभी अभी वह जिसकी हत्या करके आई है वह व्यक्ति सरिता के चाचा श्यामलाल जी का मित्र था। श्यामलाल जी ने रजनी को सरिता की एक सहेली के रूप मे देखा। उन्होने रजनी के बारे मे कुछ अधिक जानकारी हासिल करने के विचार से सरिता से पूछा भी— 'ये कौन है ! कहा से पधारी हैं ? इनका नाम क्या है ?"

रजनी की असलियत छिपाते हुए सरिता ने जवाब दिया— 'यह मेरी सहेली वीणा है। इसके घर वाले सभी बाहर गए हुए हैं। घर मे अकेली रह गई है। वहा मन नही लगा तो मुझसे मिलने चली आई। जब मैं पढती थी यह मेरी कक्षा म सबसे अधिक व्युत्पन्न मति छात्रा थी, इसीलिए इससे मेरी घनिष्टता बढी।'

"अच्छा अच्छा, ठीक है बेटी ! बातें करो इनसे। मैं चलता हू। भीतर से द्वार बंद कर लेना !"

'जी, चाचा जी !' बोलकर रजनी उनके पीछे-पीछे आई और दरवाजा बद कर वापस चली गई।

उसके बैठ जाने पर रजनी ने कहा—"सरिता, तुमने चाचा जी को मेरा नाम नही बतलाया। छिपा क्यो गई ?

सरिता विस्मित भाव से उसका मुख निहारने लगी। फिर कुछ देर

— — ताप का ताप हुए बन (कविता संग्रह 1980)
शब्द (कविता संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
धरधान (कविता संग्रह 1984)
८० गौरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

बाद बोली—"रजनी, तुम मुझे बतलाना नही चाहती तो मत बतलाओ। तुम्हारे पिछले जीवन की कुछ खतरनाक बातें आज इस महानगर के प्राय सभी लोग जान गए है। तुम्हारी सूरत से न सही, लेकिन नाम से तो परिचित हो ही चुके है। कल रात जिसकी तुमने हत्या की वह मेरे चाचा जी का खास दोस्त था। यदि चाचा जी को तुम्हारा ठीक ठीक नाम बतला देती तो इस समय तक तुम थाने की हवालात म पहुच गई होती ? लेकिन मैं नही चाहती थी कि मेरे कारण मेरी सहेली किसी सकट म पडे। याद रहे, आज से तुम रजनी नही, वीणा हो। यहा तुम्हें फिलहाल कोई खतरा नही है। तो भी सभलकर रहने की जरूरत है। तुम्हे पकडने के लिए तुम्हारे नाम से चारो ओर वारट छूट चुका है और पुलिस सरगर्मी से तलाश कर रही है।

दस

सुनील का मित्र बसत अपनी बहुमुखी प्रतिभा क कारण चारो ओर प्रसिद्ध हो गया था। वह अभी अत्यन्त सुखमय जीवनयापन कर रहा था। वह अकेला था—अविवाहित था। उसका सफल जीवन कुछ मिल-श्रमिको और कर्मचारियो को खलने लगा था उनको दुख देता था। वह इनका दुश्मन इसलिए भी था कि अपने समय का बडा पाबद था। श्रमिको और कर्मचारियो को उनकी लगन निष्ठा और परिश्रम के अनुसार मजदूरी देना और सबको समय के साथ काम पर बुलाना तथा समय पर छुट्टी देना, उसका कर्त्तव्य निष्ठा का अग बन चुका था।

मिल मालिक को बसत पर पूरा भरोसा और विश्वास था। एक दिन उसने बसत को एकमुश्त एक लाख रुपये दिए। इन रुपयो स मिल मालिक को एक नई कार खरीदनी थी। यो तो मालिक क पास कारें तो अनेक थी, लेकिन बसत जिस पद पर कार्यरत था, उस देखते हुए उन कारो म से एक भी उसके योग्य न थी। इसीलिए मालिक न एक विशिष्ट कार उसके लिए खरीदने का निश्चय किया और इसके लिए उसने बसत को रुपये दिए। निश्चित समय पर बसत न एक कपनी स कार खरीदी और लायसस बनवाने का आदेश द दिया।

इस कार-खरीद स बसत बडा प्रसन्न था। वह बडे उत्साह से कार चलाता हुआ चला आ रहा था। उसक विरोधी मौके की तलाश म निरतर उसका पीछा करते आ रहे थे। बसत की कार क पीछे-पीछे ही

शब्द (कविता सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)

50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

विरोधियो की जोप चली आ रही थी।

वसत ने कार लाकर मिल के द्वार पर खडी कर दी। गेट के भीतर मिल की सीमा मे नही ले गया। उसे बाहर ही छोड वह मिल के भीतर चला गया। विरोधियो को यह एक सुनहरा मौका मिला। वे किसी भी तरह स वसत का पदच्युत कराना चाहते थे। उन्होंने 'मास्टर की' से कार का बन्द दरवाजा खोला और उसे चलाकर किसी अज्ञात स्थान पर ले गए। वहा 'नबर प्लेट' बदलकर उसे सस्ते मूल्य पर बेच दिया।

वसत जब मिल के भीतर स बाहर आया तो कार नदारद मिली। उसे वडा आश्चय और दुख हुआ। उसने भावी सुखमय जीवन का जो स्वप्न देखा था, वह पलक झपकते ही चूर चूर हो गया। उसे अब सिर्फ रुपयो का ही दुख न था, बल्कि अपनी मान प्रतिष्ठा की भी चिंता थी। उसके पास इतना पसा भी नही था कि मिल मालिक को वापस करता। आज उसकी मालिक से मुलाकात भी नहीं हुई।

दूसरे दिन मालिक मिल मे आया। वसत अभी नही आया था। विरोधियो को अवसर मिला और उन्होने वसत के विरुद्ध मालिक के खूब कान भरे। उन्होने ऐसे अनेक प्रमाण देकर यह भी साबित करने की कोशिश की कि वसत लालची है, चोर है, अपहरणकर्ता है। उसने आपके रुपए डकार लिए।

विरोधियो ने इस प्रकार जितने भी इलजाम वसत पर लगाए, मिल मालिक ने विश्वास न किया, क्योकि आज तक उसको वसत मे ऐसा कोई खोट नजर नही आया था। लेकिन जहा इतने आदमी तरह तरह की बातें कर रहे हो, उन बातो की लाख उपेक्षा करने पर भी उनका कुछ न कुछ प्रभाव मन मस्तिष्क पर अपनी छाप छोडता ही है। मालिक ने इन शिकायतो के बारे म वसत से स्वय बातचीत करनी चाही। समय वसत के पास आने का सदेश भिजवाया।

निरपराध होते हुए भी वसंत मन में अपराध भावना छिपाए मालिक के सामने आया। मालिक ने धीमे स्वर में पूछा—"वसंत बाबू, कार तो आ गई होगी ?"

"कार तो आ गई, लेकिन अभी अपने पास नहीं है।" वसंत ने दृढ़ स्वर में जवाब दिया।

"तो किसके पास है ?" मालिक ने पूछा।

"जान पड़ता है, कोई परिचित ही उसे ले गया है।" वसंत ने वहां उपस्थित विरोधियों पर व्यंग्य किया।

उसका पूरा विश्वास था कि इस तरह की ओछी हरकत मिल के विरोधी श्रमिकों और कर्मचारियों की है। वह इस बात को अच्छी तरह समझ रहा था कि विरोधियों ने मालिक को उसके विरुद्ध भड़का दिया है।

मालिक ने तुनककर फिर पूछा—"ऐसा क्यों हुआ ?

वसंत ने संक्षेप में सिलसिलेवार सारी घटना सुना दी। इस पर एक विरोधी ने तीर फेंका—"साहब, माना कार किसी ने चुरा ली, लेकिन उसका लायसेंस तो आपके पास होगा। वही दिखा दीजिए सारा विवाद खतम हो जाएगा।"

"हां हां, भाई! इन्होंने ठीक ही तो कहा—कहां है लायसेंस ? उसे लाओ न!" मालिक ने भी विरोधियों के इस तर्क को उचित माना।

"ठीक है लायसेंस कम्पनी के पास है मैं अभी उसे मंगवा देता हूं।" कहकर वह आफिस से बाहर आया और लायसेंस दे देने के लिए कंपनी के नाम एक पत्र देकर उसने अपने एक विश्वासपात्र को वहां भेजा।

कुछ ही समय में कंपनी से वह आदमी वापस आया और बोला—"साहब कंपनी के मैनेजर ने कहा है कि कार ले जाने के थोड़ी देर बाद छ लोग मेरे पास आए और लायसेंस ले गए।"

[illegible] 1980)
शब्द (कविता संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूं (कविता संग्रह 1981)
पहचान (कविता संग्रह 1984)

40, गौरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

'ओह ! इतना बडा धोखा ! ' वसत का अतर चीख पडा।

कपनी से वापस आए आदमी की बात मालिक ने भी सुनी। उसने विरोधियो की इस बात पर यकीन कर लिया कि वसत ने कार खरीदने के बहाने से एक लाख रुपया की हेरा फेरी की है। वह बोला—"वसत बाबू, तुमने अब तक अपनी मनमानी की, लेकिन अब यह मनमानी नही चलेगी ? और सुनो, यदि कार अपनी नही रही तो तुम भी अब अपन नही रह।"

'आपने कभी मुझसे ऐसी आशा की थी, जो अब कर रहे हैं ?" वसत ने भी खीझकर कहा।

"वसत बाबू, पीछे की बातें बिसरा दो ! पहले तो हमने तुमको अपने हृदय का टुकडा समझा। तिजोरी की चाबी के साथ साथ मेरे हृदय की चाबी भी तुम्हारे पास थी। लेकिन अब आगे की सोचो !" मालिक बोला।

"आप मालिक हैं, जो उचित समझें, करें।'

तो ठीक है, यदि कार नही है तो रुपए वापस कर दो !"

'मैं इतनी बडी रकम देने म यदि समथ होता तो फिर आपके यहा नौकरी करने क्यो आता ? '

'तुम्हारा पद, अब तुम्हारा नही रहा। रुपए तो तुमको चुकाने ही होगे। बिना चुकाये तुम यहा से जा नही सकते।" मालिक का स्वर कठोर था—"तुम्हें इसके लिए कुछ दिनो की मोहलत दी जा रही है, इस बीच तुम रुपया का प्रबध कर उन्हे वापस कर दो। यह मोहलत भी तुम्हारे पूव सद्व्यवहार के कारण दी जा रही है।" बोलकर मालिक कुरसी से उठा और आफिस से बाहर निकल गया।

उसके जाने के बाद बसत भी आफिस स बाहर आया। मिल म सभी उसके विरोधी ही नही थे, कुछ शुभचितक और हितैषी भी थे जो उसी

की तरह कर्मनिष्ठ और मेहनतकश थे । उनका वसत से निकट का लगाव था । वे लोग प्राय वसत की इच्छानुसार ही काम करते थे । इसलिए उनके बीच स्नेह सबधा का बढना स्वाभाविक था । वे वसत के हित के लिए उचित अनुचित कुछ भी कर सकते थे और वसत भी उनके प्रति पूर्णत समर्पित था ।

उस दिन मिल का कामकाज ठीक तरह से चला । वसत के साथियो को इस घटना की खबर अब तक न थी । दूसरे दिन उसने ही उन साथियो को यह दुखद समाचार सुनाया । सुनकर सभी की आखें भर आइ । उन साथियो ने अपनी जीविका से निश्चित होकर वसत को सहायता का विश्वास दिलाया । उसी दिन शाम को एक गुप्त बैठक का आयोजन हुआ । मान्य श्रमिको ने अपने अपने भाषण दिए । वसत ने अपने वक्तव्य से सबको अपने वश म कर लिया । उसे पूरा विश्वास हो गया कि वह अब जो कुछ करना चाहेगा, कर दिखायेगा । वसत को अब अपने पद की नहीं, जीविका की चिंता थी । इस सभा मे तय किया गया कि प्रत्येक अत्याचार के विरोध म हडताल उनका नारा होगा ।

वसत के पक्ष मे दो दिन तक श्रमिको ने मिल मे हडताल रखी। सिर्फ वसत के विरोधी काम पर गए । मिल जैसे प्रतिष्ठान म यदि थोडे-से व्यक्ति काम पर आ भी जायें तो काम के अच्छी तरह चलने की सभावना नहीं रहती है । उतनी बडी मिल म मुट्ठी भर लोग करेंगे भी क्या ? इसलिए मिल का काम बद हो गया । श्रमिक सघ का एक बहुत बडा तबका वसत के पक्ष म हो गया और वे काम पर नहीं गए ।

लेकिन कब तक ? श्रमिको म सौदा करने की शक्ति कम होती है । मालिक तो कुछ जोखिम बरदाश्त कर लेता है लेकिन श्रमिक नहीं । उनकी आजीविका का साधन हाथो से जाता रहा । मालिक सोच रहा था —देखें, श्रमिक कब ठिकाने पर आते हैं और कब उत्पादन कार्य प्रारभ

[illegible] (कविता संग्रह [illegible])
शब्द (कविता संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हू (कविता संग्रह 1981)
अरघान (कविता संग्रह 1984)

६० गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

होता है। इस हडताल ने मालिक के मस्तिष्क को असतुलित कर दिया। श्रमिको की इस हडताल का मतलब उसने उलटा लिया। उसने सोचा—शायद श्रमिक अपना वेतन बढवाना चाहते हैं। उसने तुरत वेतन मे चार प्रतिशत की वृद्धि कर दी। वसन्त ने सोचा—चलो, यही क्या कम है? लोगो को कुछ तो लाभ हुआ। उसने श्रमिको को हडताल खत्म करने का सुझाव दिया।

श्रमिको ने पहले तो अस्वीकार कर दिया। लेकिन वसत ने उन्हें समझाया कि तुम इतने सारे लोग सिर्फ एक व्यक्ति के लिए अपने परिवार की आहुति क्यो समेट रहे हो? वह तो अकेला है। कही भी नौकरी करके कमा खा लेगा। लेकिन पाच हजार श्रमिको के लिए एक नए मिल की व्यवस्था नही की जा सकती। इसलिए उचित यही है कि सभी लोग अपने-अपने काम पर वापस चले जाए।

श्रमिको ने वसत की सलाह मान ली और सब लोग अपने-अपने काम पर वापस चले गए। उन्होने मालिक से वसत के बारे में भी बातचीत की, लेकिन उसने एक न सुनी और अपने फसले पर कायम रहा।

मनुष्य परिस्थितियो का दास होता है। कभी कभी वह जो काम करता है, उस पर उसे पश्चात्ताप भी होता है। एक व्यक्ति स्वच्छद जीवन बिताना चाहता है। एक परतत्र रहकर भी अपने काम मे रुचि रखता है। प्राय कोई भी व्यक्ति दब्बूपन सहन नही करता है। स्वतत्र रहकर यदि रूखी सूखी भी मिल जाती है तो वह अमृत समान लगती है। यह रूखी सूखी रोटी, परतत्रता के उस भव्य भोजन से, जो बार बार उसके चौखट पर नाक रगडने पर मिलती है—कही अच्छी है?

वसत को जब तक मिल मे अपने भावी जीवन की उन्नति की आशा

रही, तब तक वह मिल का कारोबार ठीक ढग से चलाता रहा और उस जब वहा पतन दिखा ता फिर उस स्थान को छोड दना ही उचित समझा।

मालिक का वसत की पैनी बातें अभी भी चुभ रही थी। वसत अब काफी लोगो की निगाहो मे हेय दिखने लगा था। वह लोगो के बीच चर्चा का विषय बन गया। लोगा को आश्चय इस बात पर था कि एक सत्य-निष्ठ ईमानदार व्यक्ति भी इतना घणास्पद निम्नस्तर का काय भी कर सकता है।

मालिक वसत के निवास स्थान से अच्छी तरह परिचित था। उसने वसत का उसके पद स हटाते हुए कहा कि यदि वह रहना चाह ता एक सामान्य श्रमिक की हैसियत से यहा रह सकता है।

एक ऐसा व्यक्ति जिसन कभी बहुत सम्मान पाया हो, वही पर उसे यदि निम्न श्रेणी दे दी जाय ता वह ऐसा घोर अपमान कभी बरदाश्त नही करेगा। वसत ने मिल म आना जाना बद कर दिया।

एक लाख रुपए का नुकसान मालिक का हृदय कचोट रहा था। उसने इतनी बडी राशि के गोलमाल का अपराध वसत के सिर पर मढा और उस पर अदालत म कस चला दिया। न्यायालय मे झूठे साक्षी पेश कर एक झूठ को 'सच म बदल दिया गया। अब वसत का बचाने वाली कोई शक्ति नही थी। अवसर पाकर पुलिस ने उसे हथकडिया पहना दी। अदालत मे उसका बयान हुआ। जो भी उसे कहना था, उसने कहा भी। लेकिन व्यवहार म सच्चाई का कोई नही पूछता। सभी तरह के बयान, निरीक्षण-परीक्षण के बाद न्यायाधीश न निणय दिया— वसत को दो वष —दो माह का कारावास।

और फसले के अनुसार उसे कारागार म भेज दिया गया।

जेल के भीतर बदियो की टोलिया जिस काम म जुट जाती था, वह

शब्द (कविता सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)
○ गौरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

पूरा ही होता था। कठोर काम सभी बदियो से नही लिया जाता था। शिक्षितो को भिन्न काय सौपे जाते थे। उनके साथ नम्रता का व्यवहार किया जाता था।

वहा पर सबके साथ समान व्यवहार अवश्य नहा था, लकिन स्वभाव से एक स्वाधीन व्यक्ति परतत्रता को पयाप्त दूरी स परखना चाहता था। सिंह जाल म कभी फसना नहा चाहता है, और दुर्भाग्य स यदि फस जाता है तो मुक्त होने का भरसक प्रयत्न करता है।

कारावास मे बदियो के मनोरजन हेतु पत्र-पत्रिकाओ की व्यवस्था थी। अपने सबधियो को पत्र भेजने के लिए भी शासन की ओर से सबको सुविधा मिली हुई थी। वसत ने भी एक दिन एक लिफाफा लिया। उसे जिस व्यक्ति से कुछ आशाए थी, वह था सुनील। उसने उसके पास अपना पत्र भेजने का निश्चय किया। उसे आशा और विश्वास था कि सुनील चाहे कितने ही काम म क्यो न हो खबर मिलने पर वह उससे मिलने जरूर आएगा और उससे जितना बन पडेगा, करेगा भी।

काफी सोच विचार के बाद उसने उस पत्र लिखा—

'मित्रवर सुनील!

जसा कि तुम्हे विश्वास होगा, मैं सकुशल हू। आशा हा नही, मुझे पूर्ण विश्वास है, तुम भी सानन्द ही होग। मित्र, समय ने करवट ली है। ऐसे समय अपना, अपने को ही याद करता है। मुझे झूठे कस म बदी करा दिया गया है। इस सकट की घडी म मेरी आवाज कोई नहा सुन रहा है। मुझे आशा और विश्वास है, तुम दूर रहकर भी सुनोग!

बदी न० 7 तुम्हारा ही—
सेण्ट्रल जेल, बबई 29 वसत (बदी)

तीस दिन में से दस दिन श्यामलाल जी बंबई से बाहर रहते थे। मंडी की तेजी मंदी के कारण उन्हें इतना आना जाना करना पड़ता था। इस बार वह आठ दिनों की यात्रा पर पूना के लिए रवाना हुए। सरिता और रजनी ने उन्हें हार्दिक विदाई दी।

दोनों सहेलियां श्याम भवन के उद्यान में बैठी हुई थीं। सरिता असमंजस में थी। रजनी की सुरक्षा का पूरा दारोमदार उसकी सूझ-बूझ पर निर्भर था। वह जब से उसके पास आई है सरिता ने उसके अपराधी जीवन के बारे में अपने सगे चाचा को भी कुछ नहीं बतलाया। वह अच्छी तरह समझ रही थी कि रजनी उसकी सहेली है तो क्या हुआ, है तो हत्यारिणी ही! लेकिन छात्र जीवन का प्रेम उसे रजनी से दूर नहीं होने दे रहा था। वह जानती थी कि रजनी एक मुजरिम है और मुजरिम का साथ देने वाला व्यक्ति भी कानून की दृष्टि में अपराधी है। लेकिन वह यह भी जानती थी कि मौजूदा समय में रजनी का साथ देने वाला कोई नहीं था। बंबई में एकमात्र वही उसकी सहेली थी, जिससे रजनी अपने हित में कुछ अपेक्षा रखती थी और इसी आशा विश्वास के साथ वह उसके पास आई थी। ऐसी विपत्ति के समय यदि वह भी रजनी का साथ छोड़ दे तो वह जाएगी कहां? किससे जाकर मांगेगी मदद? इस समय उसकी एक बांह लज्जा के हाथ में है, तो दूसरी उम्र के।

बंबई में उसके पकड़े जाने का भय था। सरिता ने विचार किया—इसे बंबई से दूर किसी गांव या गांव जैसे छोटे मोटे टाउन या कस्बे में कहीं आश्रय मिल जाए तो सभी दृष्टि से ठीक रहेगा। वह बदनामी से बच जाएगी और रजनी पकड़ी जाने से।

काफी सोच विचार के बाद रजनी का कलाई थामती हुई सरिता बोली— रजनी, तेरा साहचर्य मुझे कितनी सुखद अनुभूतियों की ओर पीछे लिए जाता है उसकी कल्पना करना भी मुश्किल है। लेकिन साथ ही

[illegible]
... (कविता संग्रह 1950)
उस जनपद का कवि हूं (कविता संग्रह 1981)
... (कविता संग्रह 1984)
... नगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

जब अलगाव की बात सोचती हू तो जबान मूक बन जाती है, कुछ कहते नहीं बनता।"

"सच, मैं भी इस रूप की प्रदर्शनी लगा सकती थी, लेकिन मेरे पाप मुझे टोक देते हैं वाणी कुंठित हो जाती है।" रजनी ने कहा।

"तुम ऐसा क्यो सोचा करती हो कि तुमने कोई पाप किया है? तुम्हारी वाणी यदि यहा मुक्त नही तो हम अन्यत्र चल सकते हैं।" सरिता ने जवाब दिया।

"अन्यत्र? कहा? कैसे?" रजनी व्यग्र हो उठी शीघ्र जानने के लिए—'क्या ऐसी भी कोई जगह है?"

"हा है क्यो नही? लेकिन " सरिता कुछ रुकी। फिर सोचकर आगे बोली—"शिमला।'

"तुम्हारा वहा कौन है, जो मुझे आश्रय द देगा?" रजनी ने पूछा।

"हैं एक सज्जन! वह मेरे सब कुछ है—वर्तमान भी और भविष्य भी! जब कभी मन ससार के घिनौने वाग्जाल से ऊब जाता है तो वह मेरे सपनो म आकर मेरे अशान्त मन को सहला जाते हैं दुलार जाते हैं। और, मैं खो जाती हू उनके सपनो म! तू उन्हें एक बार देखेगी तो वहा से हटने को तेरा भी जी नही चाहेगा।"

"यह जानते हुए भी कि मैं अपराधिनी हू—हत्यारिणी हू वह ठौर देंगे मुझे?"

तू मेरे सुनील को नहीं जानती! अरी पगली, वह तो दया और करुणा का अथाह सागर है। ऐसा नीलकण्ठ, जो मेरे लिए कोई भी जहर पी जाने को प्रस्तुत हो जाएगा।"

"क्या नाम बतलाया? जरा फिर से लेना!'

"सुनील! कितना प्यारा नाम है! तू एक बार उसके पास चलकर

देख तो सही !'

"ना बाबा ! मैं वहां न आऊंगी !" रजनी ने हंसते हुए दृढ़ स्वर में कहा।

"क्या क्या हो गया वहां जाने में ?"

"कहीं मैं उन्हें हजम कर गई तो तू जीवन भर हाथ मलती रहेगी—रोती रहेगी। "

'अच्छा तो तेरे इरादे अब इतने खोटे हो गए हैं ? ' सरिता हंसती हुई बोली।

"सच मेरे इरादे में कोई खोट नहीं है। सच बात तो यह है कि मैं अब पराये पुरुष से घबराने सी लगी हूं। तू ऐसा कर, मुझे किसी तरह बंबई की सीमा पार करा दे।

"फिर ? '

फिर क्या ! मैं सीधे इलाहाबाद चली जाना चाहती हूं, अनिल भैया के पास।'

"अरे, तू किस अनिल की बात कर रही है ? एक अनिल जो इलाहाबाद में ही रहता था आज एक डाकू गिरोह का सरदार है और भिंड मुरैना के जंगल उसकी गतिविधियों के केंद्र हैं। यदि तेरे अनिल भैया वही हैं तो वह तुझे इलाहाबाद में कहां मिलेंगे ? ' सरिता बोली।

'मेरे अनिल भैया के बारे में तुझे कैसे मालूम ? पूछा रजनी ने।

सरिता ने गंभीर होकर कहा—"मैं तेरे अनिल भैया के बारे में कुछ नहीं जानती। तूने इलाहाबाद और अनिल का नाम लिया तो मुझे याद आ गया। काफी अरसा हो गया समाचार पत्र में यह समाचार पढ़े—इलाहाबाद का रहने वाला अनिल नाम का एक युवक आज भिंड मुरैना में एक डाकू दल का सरदार है। बहरहाल मुझे इससे कोई मतलब नहीं।

शब्द (कविता संग्रह 19\0)
उस जनपद का कवि हूं (कविता संग्रह 1981)
अरमान (कविता संग्रह 1984)
गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

तू बंबई की सीमा से सुरक्षित निकलना चाहती है, वह इंतजाम मैं कर दूंगी। आज रात मेरे साथ थाणे स्टेशन चल, वहां से इलाहाबाद की गाडी पकड़ ले।"

"यह हुई न कुछ काम की बात!"

सरिता का शिमला का प्रस्ताव रजनी के मन को गुदगुदा गया था, लेकिन जब वहां सुनील का नाम आया तो वह एकदम चौंक पड़ी। काफी अरसे से वह तलाश कर रही है सुनील की, लेकिन पता ठिकाना न रहने से सुनील से उसकी मुलाकात अब तक नहीं हो पाई। आज सरिता के मुख से एकाएक सुनील का नाम सुनकर वह मन ही मन जल भुन उठी बदले की आग में। निस्सन्देह शिमला जाने पर सुनील उसे आश्रय देता, लेकिन ऐसा व्यक्ति जिसने उसका जीवन बरबाद कर दिया, उसका दोस्त या भाई कभी नहीं बन सकता। शत्रु शत्रु ही रहेगा। उसके मन में यह बात बैठ चुकी थी कि सुनील उसका परम शत्रु है।

इसीलिए उसने इस रहस्य को सरिता पर प्रकट न होने दिया कि वह सुनील की दुश्मन है और उसकी तलाश वह अरसे से कर रही है। यदि यह भेद सरिता पर प्रकट हो जाता तो उसका बना बनाया सारा खेल चौपट हो जाता। इस सुनील के कारण ही उसके सगे भाई अनिल को घर तो क्या, हमेशा के लिए गौरा गांव छोड़ देना पड़ा। उसका खुद की छवि समाज में ऐसी हो गई कि वह किसी के सामने सिर उठाकर चल नहीं सकती है। और आज उसी सुनील के पास जाकर वह आश्रय की भीख मांगे? यह कभी नहीं हो सकता!

वह सुनील से मिलेगी जरूर शिमला ही जाएगी सुनील की खोज में, लेकिन सरिता की जानकारी से बाहर रहकर, अन्यथा उसका सारा खेल खराब हो जाएगा। अपने परिवार की बरबादी का बदला चुका लेने के बाद यदि वह पुलिस की गिरफ्त में आ भी जाती है तो कोई गम नहीं।

फिर तो उसका उद्देश्य पूरा हो जाएगा। रजनीश साहब की हत्या के सिलसिले म कानून को उसकी तलाश है ही ! कानून या पुलिस उस पर कुछ रहम करने वाली तो है नही। फिर क्यो न वह अपने इस खानदानी शत्रु को भी रजनीश के पास भेजने के बाद ही खुद को कानून और पुलिस के हवाले करे ? इस प्रकार वह तैरने लगी विचारो के समुद्र मे।

नाद (कविता संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
गौरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

ग्यारह

सध्याकाल सूरज अपनी किरणो का जाल समेटने मे व्यस्त था। नेहरू उद्यान मे बैठा सुनील टकटकी बाधे देख रहा था कमलो की उन पखुडियो को जो अरुण रश्मियो के समान अपने कपाट भी धीरे-धीरे बद करने की तैयारी म थी। दिन भर उनका सौरभमद पान करने वाले भ्रमर इतने मन्होश थे कि उन्हें इसकी तनिक भी सुधि न थी कि वे यदि वहा से हट नही तो रात भर के लिए उन पखुडियो की पलक-कारा मे बद हो जाएगे। उन खिले कमलो के समान ही खिला खिला दीप्तमान था सुनील का कमलानन। प्रसन्नचित्त बडे ध्यान मे देख रहा था उन भ्रमरो की कमल क्रीडा।

झाडिया पत्ते खरखरा रही थी—यह सुनील से उनके स्नेह का आह्वान था। उन झाडियो-पुष्प पौधो के साथ सुनील की यह क्रीडा मात्र आज ही नही, यह रोज का उसका नियमित क्रम था। यदा-कदा वह अपनी उगलियो से पत्त-पत्ते पर टाक देता—'सरिता'—कुछ इस तरह कि उसके सिवाय दूसरा कोई भी उसे पढ न सके। वर्ष बीतने पर आये, सरिता को शिमला से गए, लेकिन वह स्मृति, वह क्षण वह आज तक न भूल सका। आज भी उसी प्रकार उसके हृदयपटल पर अकित है वह गुलाबी छवि! जाने कितने दिनो के बाद आज उसका मन आनदविभोर मुग्ध था। रह रहकर कलियो को इशारा कर वह मस्ती म गुनगुना उठता—

"
रूप को सजाने को लाख फूल कम हैं, पर—
चार फूल काफी हैं अर्थिया सजाने को।
एक भूल काफी है जिंदगी रुलाने को!!"

तोरण द्वार का एक धनुषाकार बलि ढके हुए थी। उसमें जहा-तहा फूल भी खिले हुए थे। अन्य स्थानों की भांति एक पत्र मजूषा भी थी, जिसके ऊपर जाली लगी हुई थी, जिसमे पोस्टमैन उद्यान के पते पर आए पत्रो को रख देता था।

आज भी कोई पत्र आया हुआ था, जिसे पोस्टमैन उसी पटी में डालने जा रहा था कि उस पर सुनील की निगाह पड गई। उसने टोका — क्या है, भाई! आज क्या लाए हो?

"बाबूजी पत्र है!" और उसका पत्र मजूषा की ओर बढा हाथ वही ठहर गया।

"इधर ही दे दो! इस पेटी की चाबी दो तीन रोज से नही मिल रही है। इसलिए खालकर देखा ही नही!" सुनील बोला।

पोस्टमैन ने पत्र उसके हाथ में थमा दिया और अपनी राह चलता बना।

पत्र हाथ में लेकर सुनील उद्यान से उठकर कमरे में आया और उसे खोलकर पढने लगा। पत्र बसत ने लिखा था—एकदम सक्षिप्त, किन्तु बडा ही मार्मिक—बडा हृदयग्राही। पत्र की दो पक्तिया पढ़ते ही वह अचकचा गया हक्का बक्का-सा रह गया। मुख से एक भी बोल न फूटे। किसी तरह अपने उद्वेलित मन को सभाला और एक सास में ही पूरा पत्र पढ गया।

कितनी विचित्र विडबना!—अरसा बीत जाने पर मित्र का सदेश ... किन्तु भयानक समस्या लेकर। मन कल्पना-सेतु जोडने लगा—

नाद (कविता संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
अरघान (कविता संग्रह 1984)
गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

तोडने लगा। फिर एकाएक बुदबुदा उठा—कही ऐसा न हो कही वसा न हो जाए ? वह डूबने उतराने लगा उस सागर म जहा सीपिया तो अनेक थी, लेकिन बतौर दशन के एक मोती भी न था। दुख और क्षोभ से उसका मन व्यथित विह्वल हो उठा। उस पर आज दुख का पहाड टूटा था—गाज गिरी थी।

उसकी मन स्थिति किंकर्त्तव्यविमूढ सी हो गई थी। वह उस प्रेमी सा दिख रहा था—एक ओर जिसकी प्रेमिका उसके नाम पर चीख भर रही हो और दूसरी ओर उसके माता पिता की अरथी उठ रही हो। बडी देर बाद जब मन की व्यग्रता सीमा पार कर गई तो उसकी आखा से आसू ढुलक पडे। वन्य प्रकृति की शोभा से वह विमुख-सा हो गया। उसके मन म वसत जसे मित्र के लिए अगाध स्नेह एव अटूट श्रद्धा थी। सदेश क्या आया—उसके जीवन मे एक शथिल्य सा आ गया।

उसके जीवन विधान मे विपदाओ के प्रवाह की कमी न थी। असख्य प्रवाहो को भला किसने गिना, जो उसके गिन जाते ? इन प्रवाहो म मिल गया आकर एक और प्रवाह ! उसने अपने दिमाग पर जोर डालकर सोचा— वह मित्र की विपत्ति को दो दष्टि से परख सकता है। एक आर्थिक, दूसरा दैहिक !' उसने सोचा—'वसत का धन की तो क्या आवश्यकता पडेगी ! लेकिन शरीर से भी तो वह अस्वस्थ नहा ? तो फिर ??' लकिन वह यह भी जानता था कि परिस्थितिया मनुष्य की स्वामी होती हैं। यदि इस अवसर पर वह नही गया तो उधर होगी प्राणहानि और इधर होगी मानहानि ! उसन निश्चय किया जाने का।

वह कोट म गया। नगर उपविभागीय अधिकारी को यथानिक कारण,बतलाते हुए अपना त्यागपत्र दने का आग्रह किया—'सेवा-त्याग प्रमाणीकरण पर श्रीमान जी का हस्ताक्षर चाहिए !'

'क्या ? तुम्हारी नौकरी के तो अभी कुल साढे चार साल ही हुए हैं और तुम छोडना चाहते हो ?'

'मैं छोडना तो नही चाहता था, लेकिन परिस्थिति छोडने के लिए मजबूर कर रही है। सुनील ने जवाब दिया।

"ऐसी क्या बात हो गई ?" अधिकारी ने पूछा।

सुनील ने आद्योपात सारा किस्सा सुना दिया। महीने का प्रथम सप्ताह होने के कारण वेतन के कुछ रुपए भी निकलते थे, उन्हें भी उसने प्राप्त कर लिया और दूसरे दिन बबई के लिए रवाना हो गया।

तीन दिन की यात्रा के बाद वह बबई पहुचा। उसने बहुत खोज की, लेकिन वसत के मकान का पता न चला। किसी से उसके बारे मे पूछना भी मूर्खता ही थी, क्योंकि वसत एक नही अनेक थे। उसका अपना कोई भवन भी नहीं था। वसत जिस कमरे मे रहता था उसमे नाट्य-मडली का दफ्तर खुल गया था। सुनील के लिए वसत का शाही ठाट बाट एक कोरा स्वप्न था। उसने एक सिटी बस से उतरते हुए एक व्यक्ति से पूछा—"क्या, भाई ! यहा का सेंट्रल जेल किधर है ?"

कोई जवाब न मिला। वह चुप रहा क्योंकि बस से उतरने वाला व्यक्ति सुनील से भी अधिक सरल प्रकृति का था। वह घबरा गया सुनील के प्रश्न पर। सोचने लगा—प्रश्नकर्ता खुफिया विभाग का कोई व्यक्ति तो नही, जो उससे कुछ भेद की बातें जानना चाहता है। डरकर वह व्यक्ति सीधा अपने रास्ते चला गया।

सुनील की दृष्टि एक टक्सी पर पडी। वह बबई-29 जानेवाली थी। वह उसी मे बैठ गया और थोडी ही देर मे पहुच गया अपने गतव्य पर। वह उतर गया। भाडा चुकाया और टैक्सी आगे बढ गई।

टक्सी से जहा सुनील उतरा था वह स्थान बबई 29 का एक बस स्टैंड था। वह अभी भी भ्रम मे था कि वह सही स्थान पर पहुचा था

नख (कविता संग्रह 1950)
उस अनगढ का कवि हू (कविता संग्रह 1951)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
गौरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

"मैं यहा अपने एक मित्र से मिलने आया हू। यदि आपकी महरबानी हो तो आप उससे मिला दें।"

"आपका मित्र और यहा ?

"निस्सदेह !

'क्या नाम है आपके मित्र का ? बरक नबर आदि ठीक-ठीक पता है आपके पास ?" जेलर ने पूछा।

"उसका नाम वसत कुमार है और बैरक नबर है सात।" सुनील ने जवाब दिया।

"नियमानुसार आपको जरूर मिला लिया जाएगा, लेकिन एक शत है—आप कदी को न तो कोई वस्तु दे सकेंगे और न ही अवाछित शिक्षा देंगे।

'ठीक है साहब, एसा ही होगा।'

"तो ठीक है। आइए, बठिए !" और उसने गेट पर बनी पत्थर की कुरसी की ओर इशारा किया।

सुनील पत्थर की उस कुरसी पर बठ गया। जेलर के आदश से एक दूसरा सिपाही उसके पास आकर खडा हो गया। फिर भीतर पहरे पर तैनात सतरी को जेलर न आदश दिया—"बैरक नबर सात से वसत कुमार को लाकर इनसे मिलवा दिया जाए।'

बरक नबर सात मे कदी का जीवन-यापन कर रहे वसत की निगाह जब सतरी पर पडी तो वह घबरा-सा गया। भय था—दिन प्रतिदिन जेल म बदलते नियम और कानून से। सोचा—'जाने क्यो बुलाना आया है ? कही कोई नई उलझन न खडी हो गई हो ! या किसी कैदी ने ईर्ष्या वश जेलर से उसकी शिकायत न कर दी हो !'

दरवाजे पर आने पर सतरी ने वसत से कहा—' जेलर बाबू आफिस म बुला रह हैं।

शब्द (कविता सग्रह 1980)
उस अनगढ़ का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता सग्रह 1934)
गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

और वह वसत को साथ लेकर जेलर के आफिस की ओर चल पडा। सतरी न उसे ले जाकर जेलर की टेबिल के पास खडा कर दिया। सिर ऊचा कर जेलर ने उसे गौर से निहारा। फिर पूछा—"तुम्हारा नाम वसत कुमार है ?"

"जी, हा!"

'तुमसे कोई मिलने आया है। चेहरे की यह उदासी दूर करो और अपने मित्र से मिलो। जानते हो, जिस दिन किसी कैदी से मिलने कोई मुलाकाती आता है, तो वह दिन कैदी अपने जेल जीवन का बडा ही सुखद और आनद का दिन मानता है। आज तुम्हें भी खुश होना चाहिए।"

जेलर की बात पर वसत मुस्करा पडा। फिर उनके आदेश से वही सतरी उसे लेकर जेल के सीखचे से बाहर खडे सुनील के पास आया। जेलर भी अपने कमरे से आकर वसत के पास खडा हो गया।

दोनो मित्रो का सामना हुआ। उनकी आखें एक दूसरे से इस प्रकार मिली, माना दो तीर आपस म टकराने जा रहे हो। एक-दूसरे को देखकर प्रेम विह्वल दोनो ही रो पडे। लेकिन कुछ ही क्षण मे दोनो ने अपन पर सयम पा लिया। एक लबा अरसा निकल जाने के बाद दोनो मित्रो मे मिलन हुआ था। वसत को देखने के बाद सुनील का विश्वास सुदढ हो गया कि अब वह अपना कतव्य निभा सकेगा—उसका परिश्रम अब सफल हो जाएगा।

वह केस की जानकारी पाने के खयाल मे वसत से बोला—'मित्र, मैं अभी अपनी ओर से तुम्हारे केस के बारे म कुछ नही कर सका हू, क्योंकि इस बारे मे मुझे कुछ मालूम नही। तुम जल्दी से मुझे यह बताओ कि मामला क्या है और मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हू।"

वसत ने जेलर से आज्ञा मागी कि वह अपनी केस-सबधी बातें अपने मित्र को बता सके, जिसके आधार पर उसका मित्र कानून का द्वार खट-

घटा सके।

जेलर ने आज्ञा दे दी। वसंत ने संक्षेप में पूरा केस सुनील को समझा दिया। साथ ही यह भी बतला दिया कि उसकी मदद के सभी रास्ते बंद हैं। वह सर्वथा निर्दोष है। अब सिर्फ अपील का भरोसा है कि शायद इस संकट से मुक्ति मिल जाए।

"बस, अब तुम निश्चिंत रहो। मुझे अपने केस का रिकार्ड दो।" सुनील ने कहा।

वसंत ने जेलर की ओर देखा। जेलर सुनील से बोला—"आप जरूरी बातें कर लें, मैं रिकार्ड दिलवा देता हूं।"

"यदि तुम्हारी मदद के लिए कोई व्यक्ति होता तो बड़ा फायदेमंद रहता!" वसंत बोला।

"चिंता न करो। इस काम में मैं श्यामलाल जी को अपने साथ ले लूंगा। वह कभी इनकार नहीं कर सकते। तुम घबराना नहीं। मैं यहां आ गया हूं तो तुम्हें छुड़ाकर ही कहां जाऊंगा। थोड़े दिनों का और कष्ट है झेल ले चलो।" सुनील ने उसकी हिम्मत बढ़ाई।

"नहीं तुम आ गए तो अब कमी चिंता?" बोलकर वसंत मुस्करा पड़ा।

"अच्छा तो अब मैं चलता हूं श्यामलाल जी से मिलने। तुम भी अपनी बैरक में जाओ। जब तक बंबई में हूं, बराबर मिलता रहूंगा।" सुनील ने वसंत को हर तरह से सांत्वना दी।

दोनों की मुलाकात खत्म हुई। वसंत और सुनील के हस्ताक्षर लेकर जेलर ने वसंत के केस संबंधी कागजात सुनील को सौंप दिये। उन्हें लेकर सुनील चल पड़ा 'श्याम भवन' की ओर।

'श्याम भवन' का पता लगाते हुए, कुछ परेशानी के बाद वह बंबई 2 में पहुंचा। वह जाकर भवन के गेट पर खड़ा हो गया।

नाद (कविता संग्रह 19[illegible])
उस अन्तर का कवि हूँ (कविता संग्रह 1951)
प्रस्थान (कविता संग्रह 19[illegible]4)
प्रोफेसर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

देखते ही दरबान ने टोका—"किससे मिलना चाहते हैं आप ?"

"सेठ श्यामलाल जी से।" सुनील ने जवाब दिया।

"आप यहीं ठहरें, मैं खबर करता हू उन्हें।" बोलकर वह हवेली के भीतर चला गया।

थोडी ही देर मे जब वह वापस आया तो उसके साथ श्यामलाल जी तो नही, लेकिन सरिता जरूर बाहर आई। उसे देखकर दूर से ही पहचान गई कि यह सुनील है। एक लबे अतराल के बाद वह मिल रही थी सुनील से। उसने स्पष्ट देखा और ताड लिया कि उसके कदम 'श्याम-भवन' की सीमा मे कुछ सहमे सहमे से पड रहे हैं। सरिता को उससे मजाक की सूझी। उसने एकदम अनजान की तरह पूछा—"कहिए, श्रीमान जी ! आप किससे मिलना चाहते हैं ?"

"सेठ श्यामलाल जी से।" सुनील ने जवाब दिया।

वह सोच रहा था मन ही मन—इतने दिन बीत गए मुलाकात के सरिता से, वह उसे भुला न सका और आज सामने आते ही पहचान भी लिया। लेकिन आश्चर्य है सरिता उसे एकदम भूल गई, इतना कि आज देखकर पहचानती भी नही ! फिर सोचा—बडे लोगो की बातें ऐसी ही हुआ करती है। मुह पर औपचारिकता निभाने के लिए वे लच्छेदार बातें करेंगे, लेकिन पीठ-पीछे कौन किसी की याद सजा रखता है ! यह अच्छा ही हुआ कि उसने जाहिर नही होने दिया कि वह सुनील है और कभी शिमला मे सरिता एव श्यामलाल जी का उससे परिचय हुआ था। जवाब पाने की प्रतीक्षा मे वह सरिता की ओर देखने लगा।

सरिता बोली—'मुझे आप कुछ परिचित-परिचित से लगते हैं, लेकिन याद नही आता कहा देखा था आपको !' सरिता ने अपने आनन पर कुछ सोचने की-सी मुद्रा का भाव-प्रदर्शन किया।

इस हाव भाव से सुनील को पूरा विश्वास हो गया कि सरिता सच

मुच उसे भूल चुकी है। यह बोला—"आपको शायद कुछ भ्रम सा हो रहा है। मेरे जैसे मिलते-जुलते किसी और को देखा होगा आपने। मैं तो आज पहली बार आ रहा हू आपके सामने। क्या सेठ जी घर मे नही हैं इस समय ?"

उसकी बात पर सरिता की हसने की इच्छा जागत हुई, लेकिन यह सोचकर कि मजा किरकिरा हो जाएगा, वह दबा गई मन की हसी को। गभीर स्वर म ही बोली—"नही, चाचाजी तो अभी घर मे नही हैं। कुछ देर से आएगे। कोई खास बात हो ता मुझे बतला दीजिए। आन पर उन्हें इत्तला कर दूगी।'

"संदेश तो कुछ नही है। हा, उनसे मरा मिलना बहुत जरूरी है।' अच्छा तो अब इजाजत दीजिए। मैं फिर आकर मिल लूगा।" बोलकर वह पीछे की ओर मुडा।

सरिता ने जब यह जान लिया कि वह सचमुच जा रहा है तो वह सीढ़ियो से नीचे उतर आई और उसके सामने जाकर उसकी कलाई थामती हुइ बोली—' ऐ मिस्टर, फिर आ जाऊगा तो बोलना चाचाजी से। मुझसे नही। बडी जल्दी भूल गए सरिता को जिसके नेहरू-उद्यान मे रोज सपने देखा करते थे। आज इतन दिनो बाद सामने आए तो पहचानते भी नहा।"

' मैंन तो तुम्हें उसी समय पहचान लिया था, जब तुम पहली नजर मे दरवाजे से बाहर निकली। लेकिन जब देखा कि तुम एकदम अनजान सा व्यवहार कर रही हो, तो ऐसा लगा कि तुम मुझे सचमुच भूल चुकी हो और इसीलिए मुझे भी जानबूझकर अनजान बन जाना पडा। सुनील बोला।

"वह तो मैं मजाक कर रही थी, यह जानने के लिए कि तुम्हारे दिल में मैं आज भी बसी हुई हू या तुम मुझे भुला चुके हो" सरिता ने

शब्द (कविता संग्रह 1950)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1934)

मोतीनगर, सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

ओर मुडकर बोली—"दरबान, साहब का सामान मेरे बगल वाले कमरे म पहुचा दो।'

'और चाचाजी कहा हैं ?' सुनील ने पूछा।

'शहर म ही कहीं जरूरी काम से गए हैं। तुम नहा धोकर स्वस्थ हो लो, तब तक वह भी आ जाएंगे।"

सुनील ने अब और कोई बात नही की और उसके पीछे-पीछे भवन के भीतरी कक्ष म प्रवेश कर गया।

जिस तरह पतग को धागा पिला दिया जाता है और वह गगन को छूने लगती है उसी तरह सुनील क स्पश से सरिता को प्रोत्साहन मिला। सरिता निद्वद्व निश्चित बातें करती उसे लेकर ड्राइगरूम म चली गई और सुनील को कुरसी पर बिठा दिया। उससे जितना बन पडा, उसने सुनील का जी खोलकर स्वागत किया। वातावरण म केसर-सी सुगध बहने लगी। विस्मृत प्रेम धीरे धीरे अगडाई लेन लगा। सरिता के अग का पोर पोर खिल उठा। सुनील दीर्घोच्छवास छोड़ते हुए बोला—

यह कैसा सयोग है ? दिन गुजर जाते हैं लेकिन उनकी स्मृति वसी ही बनी रहती है।"

'स्मृति का परत होता ही है एसा, जिस पर युगा-युगा के चित्र उतरते जाते हैं। नही तो इस रास्ते की धूल को कौन आश्रय देता अपने मन्दिर म ?'

सरिता का जीवन अब तक पराग का भाति रहा। अभाव रहा तो सिफ प्यार क दो बोल का जिसे आज आकर सुनील न पूरा कर दिया। उसका उन्मादी मन आज बासा उछाल ले रहा था।

लेकिन सुनील ? प्यार म अपने कतव्य से डगमगा रहा था उसका कतव्य इन खिलवाड़ा स कही । उसने कापत अधरों से कहा— "मुझे विश्वास है जिस तरह तुमने मेरा सम्मान किया उसी तरह मेरे

शब्द (कविता संग्रह 1980)
उस सफर का बिंदु (कविता संग्रह 1981)
आरंभ (कविता संग्रह 1984)
प्रोफेसर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

उद्देश्य—मेरे लक्ष्य का भी सम्मान करोगी !"

"क्यो नही ? तुम बोलकर तो देखो ! हम दोनो ही समुद्र के ऐसे तट से गुजर रहे हैं, जिस पर एक दूसरे का सहारा लिए बिना चला नही जा सकता। मैं तुम्हारी हर कठिनाइ को सरल से सरलतम बनाने का प्रयत्न करूगी।"

"मैं भी हर असभव को सभव ! सुनील ने जवाब दिया।

"यह जीवन कुछ प्रश्नो के सग्रह के अतिरिक्त और कुछ भी नही है। क्या तुम्हें कभी ऐसा भी महसूस हुआ ? '

"मैं तो इस जीवन को नाव कहूगा, जिसकी तुम माझी हो !"

"मैं इस नाव मे कभी न उतरूगी महासागर तुम हो सिफ तुम ! डुबा दोगे तब भी मुझे मुक्ति ही मिलेगी चिर शाति ! '

उसकी इस बात का सुनील ने कोई जवाव न दिया। वह मन ही मन सोचने लगा—प्यार कितना अधा होता है ? यह लडकी यह समझने का प्रयत्न क्या नही करती कि नाव जब डूबने लगती है तो यात्री कूद-कूदकर तट पर पहुचने का प्रयत्न करते हैं। यहा तक कि वह समय भी आ जाता है जब माझी को भी कूदकर किनारा छू लेना पडता है। लेकिन यह उलटा डूब जाने पर आमादा है। इसे अब जवाब दू भी तो किस तरह किस तरह समझाऊ कि मैं जिस राह चल रहा हू, उस पर इसका चलना कठिन है, असभव है !

दूसरे दिन सवेरा होते ही सुनील ने 'श्याम भवन' म घूमना प्रारभ किया। उस हर दीवार पर उन्मामी का चित्र खिचा मिलता था। उधर वसत का एक-एक पल एक एक युग के समान गुजर रहा था। घूमता हुआ सुनील 'श्याम भवन के किसी और भाग म निकल गया। उसे एक

'लेकिन क्यों ? मैं तो यहां किसी को नहीं जानता।" सुनील घबराकर बोला—"तुमने मुझे बड़ी मुसीबत में डाल दिया, सरिता ! भला उनसे मेरा क्या संबंध ?"

'है तुम्हारा संबंध उन सबसे बहुत बड़ा संबंध ! तुम उनके जीजा जी हो वे मिलने आ रही हैं तुमसे नहीं, अपने जीजा जी से !"

'मैं उनका जीजाजी ? समझ में नहीं आता तुम क्या कह रही हो !"

'मैं समझाती हूं यदि तुम नहीं समझते तो ! सुनो, सुनील ! तुम मेरे हो इस सरिता के और वे सब सहेलियां तुम्हारी सरिता की बहनें हैं। फिर तुम उनके जीजाजी नहीं तो और क्या हो ? वे देखने आ रही हैं मेरे हमराह मेरे जीवनसाथी को। मैंने उनसे वादा किया है तुम अपना सुंदर सा कोई गीत उन्हें सुनाओगे। कौन सा ? हां, याद आया, तुम्हारा वह गीत जिसे मैंने तुम्हारे मित्र के मुख से शिमला में सुना था। सुनाओगे न ? ' सरिता ने बड़ी मासूमियत से पूछा।

'तुमने मुझे मुसीबत में डाल दिया सरिता !"

"तो मैं तुम्हारे लिए मुसीबत बन गई न ! ठीक है ' बोलकर सरिता उससे अलग हो एक किनारे खड़ी हो गई।

सुनील ने देखा—उसका संपूर्ण चेहरा उदासी में डूब गया है और उसकी आंखें भर आई हैं। वह उसके पास आकर उसके आंसू पोंछता हुआ बोला—'तुमने क्या मुझे इतना गिरा हुआ समझ लिया ! अरी पगली, यह क्या नहीं सोचती—सरिता मेरी है, दूसरों के सामने उसकी हेठी हो उसके सम्मान पर आंच आए यह मैं कैसे बरदाश्त कर सकता हूं ? तुमने अपनी सहेलियों से जो कुछ भी वादा किया है वह जरूर पूरा होगा। उनके सामने तुम्हारा सिर अगर अब ऊंचा रहा है तो आगे भी ऊंचा ही रहेगा।"

मारे खुशी के सरिता का चेहरा अपूर्व तेज से चमक उठा। 'सुनील !'

नदी (कविता संग्रह 19.0)
मैं अंगार का कवि हूं (कविता संग्रह 1931)
अरमान (कविता संग्रह 19 4)
मोरनगर ... हैदराबाद, ...—4"0003

कहती हुई उसने अपना सिर उसके वक्ष मे छिपा लिया और सुनील अपने हाथों स सहलाने लगा उसके सिर के रेशम जमे मुलायम कोमल कुतल !

श्यामलाल जी अभी तक स्नानगृह से बाहर नही आए थे। सुनील से उनकी मुलाकात अभी तक नही हो सकी थी। कल वह काफी रात गए तक घर लौटे थे। तब तक सुनील भोजन करके थका मादा होने के कारण सो चुका था। 'वह आया है' यह समाचार उन्हें सरिता ने दिया था। वह उसी समय सरिता के कमरे के सामने गए। देखा—सुनील गहरी नीद मे पडा है। उसके आनन पर चिंता-व्यथा की क्षीण झलक अभी भी दिख रही थी। उन्होंने उस समय उसे जगाना ठीक नही समझा। उन्होने सरिता से कहा—"तुम कहीं और सो जाओ। उसे जगाना नही। लगता है बेचारा बहुत थका-थका-सा है।"

स्नानघर से निवत्त हो, श्यामलालजी आकर अपने कमरे म बैठ गए। सरिता के साथ हसने बोलने की उसकी आवाज उनके कानो तक पहुच रही थी। इतना विश्वस्त व्यक्ति बन गया था सुनील उनके लिए कि उसका सरिता से हसना-बोलना उन्हें कभी बुरा नही लगता था। सरिता अपने अतर से सुनील को अपना सब कुछ मानती है, यह बात भी अब उनसे छिपी नही रह गई थी। वह अनेक विषयो के सकल्प विकल्प मे उलझ गए। आज सुनील उनका अतिथि बनकर आया था। अब तक वह उसके कुशल-क्षेम भी न पूछ सके, सेवा-सत्कार की बात तो दूर रही। लेकिन सरिता पर उन्हे पूरा भरोसा था कि वह एक कुशल गहिणी के आवश्यक गुणो स युक्त है। सुनील के सेवा-सत्कार म किसी प्रकार की कमी न आने देगी। तो भी वह सोच रहे थे—क्या जाने, किसको कब क्या बुरा लग जाए ? कहा नेहरू-उद्यान की वह ककरीली गैल, पल्लवाच्छादित द्वार, हरी भरी बेलें—इसी तरह और भी—कही कुछ कही कुछ ! इसी तरह के जाने कितने इद्रधनुषी विचार उनके मस्तिष्क

पर आकर छा गए—जसे विश्राम के समय वड सवय के मानस म डेफो डिल्म का चित्र। वह मानवसेवी सुनील का सदव्यवहार भुलाने से भी भूल नही पाते थे।

सरिता के भवन से सुनील प्रस्थान करना चाहता था, लेकिन मेघा ने मोक-झाक आरभ कर दी। बरसात एक सुदरी की तरह कमरे म बार बार आने का आग्रह कर रही थी। कुछ फुहारें वायु का आचल थामे वातायन की राह कमरे म आ ही गइ। सरिता ने वातायन पर परदा डाल दिया। उसके वक्ष को पानी की बूदो ने अपनी लपेट मे ले लिया। वह भीग गई। बरसात के कारण कपडे बदलने को सरिता किसी और स्थान म जाने म असमथ थी। उसे कुछ लज्जा सी लगी।

सरिता क्या चाहती है, सुनील ने ताड लिया और वह मुह फेरकर दूसरी ओर देखने लगा। सरिता मुस्करा पडी—"नटखट! बडे जल्दी समझ गए!"

उसकी बात पर मुह फेरे बठे सुनील भी हस पडा। सरिता न जल्दी से वस्त्र बदल। सुनील के काले केश भी कुछ भीग गए थे। इस समय उसे कघी की जरूरत थी। कपडे बदलते समय दीवार पर टगे आइने मे सरिता ने देखा, सुनील बार-बार अपना हाथ सिर पर ले जाकर बिखरे बालो को सभाल रहा है। वह समझ गई सुनील क्या चाहता है। कपडे बदलकर उसने अपनी चूडियां खनकाईं सुनील को आकर्षित करने के लिए। सरिता ने दपण की ओर सकेत करते हुए कघा उसकी ओर बढा दिया। सुनील ने अलसाए हाथो स दपण इस तरह उठाया जैसे वह सरिता का चित्र उठा रहा हो। हा, दपण के पीछे सरिता का चित्र भी जडा हुआ था। सुनील ने कघा करके सरिता का चित्र देखा।

उसे एकटक निहारते देख सरिता बोली—'इस तरह न देखिए दर्पण! उसका हृदय भी मचल जाएगा!'

नाद (कविता सग्रह 1950)
उस अनहद का कवि हू (कविता सग्रह 1931)
प्रयाण (कविता सग्रह 19 4)
गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

"यह जिसे मैं देख रहा हूँ उसका ?"

"लगता है दपण कुछ अधिक ही सुदर है।"

"नही, दपण से भी बल्कर "

"वह तो कब की लूट चुकी है, एक निदयी निर्मोही परदेशी के हाथ।" और जोर से खिलखिला पडी।

इस प्रकार सुनील और सरिता के प्रेमालाप मे काफी समय बीत गया। दीवार पर थर्मामीटर एक वुड-सीड पर फिट था। टेबिल पर संगमरमर की पट्टिया पडी थी। पलग पर श्वेत चादर थी—साज सज्जा एकदम अस्पताल की सी। सच ही तो था यह सब—क्योकि सुनील खुद को एक बीमार समझ रहा था। उसका उपचार भी यही होना था।

बरसात बद हो चुकी थी। सुनील उठ खडा हुआ। सरिता मुस्करा कर उसकी ओर देखने लगी। उसके हाथो को अपने हाथ म लेते हुए बोला—"मुझे जाने को नहा कहागी ?"

"अपने शरीर से अपने ही प्राण को कोई निकालना चाहेगा क्या ?'

"मुझे बहुत जरूरी काम है। इस समय चाचाजी से बातें करना भी जरूरी है।"

"तो जाआ ! लेकिन जल्दी लौटना ! याद रहगा न कि शाम का मेरी सहेलिया आने वाली हैं ?"

सुनील उसके गालो पर हल्की सी प्यार की चपत लगाते हुए बाला—"याद है मैडम ! तुम्हारा आदेश सिर आखो पर ! अब तो खुश ?"

उसके निश्चित आश्वासन से सरिता का आनन ओज से दमक उठा। सुनील के कदम देहरी पार करने को हुए तो सरिता धीरे से फिर बोली—'चाचाजी से बातें करने के बाद खाना खाकर घर से कहीं जाना ! नही तो मैं भी दिन भर भूखी प्यासी रह जाऊगी !"

सुनील ने पलटकर पीछे की ओर देखा। स्वीकृति म सिर हिला,

मुस्करा कर आगे बढ़ गया।

श्यामलाल जी के कमरे के सामने पहुंचकर उसने द्वार पर थपकी दी। वह उसी की प्रतीक्षा में बैठे हुए थे। आहट पाकर प्यार के लहजे में बोले—"कौन, सुनील ?"

"जी, चाचाजी !"

"आ जाओ, बेटे ! मैं तुम्हारा ही इंतजार कर रहा हूं।"

सुनील आकर कुरसी पर बैठ गया। उसके बैठ जाने पर उन्होंने फिर आवाज दी—"सरिता बेटी !"

"आई, चाचाजी !" और दूसरे ही क्षण वह श्यामलाल जी के सामने आ खड़ी हुई। उसे देखकर श्यामलाल जी बोले—"बेटी, सुनील शायद कहीं घूमने फिरने जा सकता है। बंबई पहली बार आया है। इसे अवश्य ही महानगर का परिभ्रमण करना चाहिए। इसे किसी तरह की परेशानी न हो, इसके लिए महराजिन से बोल दो, जल्दी से कुछ खाना तैयार कर दे।"

"खाना तो तैयार हो रहा है, चाचाजी !"

"तब ठीक है। और मेरे लिए कुछ नाश्ता हो तो भिजवा दो। और कुछ सुनील के लिए भी लाना।"

"अभी लाई चाचाजी !" बोलकर वह जल्दी से रसोई की ओर चली गई। और थोड़ी देर बाद जब वह वापस आई तो दो प्लेटों में पराठे, सब्जी और आलू पोहे आदि अनेक व्यंजन साथ लाई। देखकर सुनील घबरा उठा—"चाचाजी, इन्हें अब किस पेट में रखूं ? पहली बार ही जो नाश्ता किया वह अभी तक धरा पड़ा है।"

"इतना झूठ क्यों बोलते हो ? सवेरे दो पराठे नाश्ते के लिए प्लेट में रखे तो जानते हैं चाचाजी ! खाना था इन्हें और अपनी कसम दिला दिलाकर सब मुझे खिला दिए। बहुत कहने-सुनने के बाद दो बिस्कुट

... (... 19..)
जन जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
सत्यान (कविता संग्रह 19 4)
... सागर—470003

और चाय लिए है । यह नाश्ता तो इन्हे करना ही पडेगा ।"

"खा ले, बेटे !" श्यामलालजी ने कहा—"यह लडकी खिलाये बिना मानेगी नही ! दो वर्ष के भीतर दो दिन भी ऐसा नही देखा, जो इसने तेरे नाम की माला न जपी हो !"

"और तो और, चाचाजी ! आप तो रात मे देर से आए, इनका खाना देखते तो अवाक रह जाते । मुश्किल से दो फुनके खाए और खर्राटे की नाद सो गए । मुझे तो लगता है, शिमला मे अधिकाश समय भूखे ही सो जाते होगे । ऐसा करने से शरीर कब तक साथ देगा ? और फिर यह शिमला तो नही, जहा बनाने की किल्लत है । यहा तो बना-बनाया मिल रहा है—फिर खाने मे शर्म कैसी ?" सरिता शिकायत भरे लहजे मे बोली ।

"क्या बात है, बेटे ? क्या इस घर का भोजन तुम्हे अच्छा नही लगता ?" श्यामलालजी ने पूछा ।

"नही, चाचाजी ! मैंने खाना तो पेट भर खाया था । अब यह और बात है कि यात्रा की थकान के कारण अधिक नही खाया गया ।"

"अच्छा, अब तो तबीयत ठीक है न ? इसे खा लो फिर करते हैं बातें !" श्यामलालजी ने आग्रह के साथ कहा ।

सुनील को जबरन नाश्ते मे श्यामलालजी का साथ देना पडा ।

नाश्ते के बाद श्यामलालजी ने पूछा—"हा, अब बतलाओ । बबई की याद अचानक कैसे आ गई ?'

सुनील दबी जबान से बोला—"चाचाजी, आप मेरे मित्र वसत से तो परिचित हैं न ?'

"वसत ! कौन वसत ? इस समय मुझे कुछ याद नही आता !' श्यामलालजी सोचने की मुद्रा मे बोले ।

'आप जब शिमला गए थे—याद है आपको दो दिन बाद खाट-पट

मुस्करा कर आगे बढ़ गया।

श्यामलाल जी के कमरे के सामने पहुंचकर उसने द्वार पर थपकी दी। वह उसी की प्रतीक्षा में बैठे हुए थे। आहट पाकर प्यार से सहजे में बोले—"कौन, सुनील?"

"जी, चाचाजी!"

"आ जाओ, बेटे! मैं तुम्हारा ही इंतजार कर रहा हूं।"

सुनील आकर कुरसी पर बैठ गया। उसके बैठ जाने पर उन्होंने फिर आवाज दी—"सरिता बेटी!

"आई, चाचाजी!" और दूसरे ही क्षण वह श्यामलाल जी के सामने आ खड़ी हुई। उसे देखकर श्यामलाल जी बोले—"बेटी, सुनील शायद कहीं घूमने फिरने जा सकता है। बंबई पहली बार आया है। इस अवश्य ही महानगर का परिभ्रमण करना चाहिए। इन्हें किसी तरह की परेशानी न हो, इसके लिए महराजिन से बोल दो, जल्दी से कुछ खाना तैयार कर दे।"

"खाना तो तैयार हो रहा है चाचाजी!"

"तब ठीक है। और मेरे लिए कुछ नाश्ता हो तो भिजवा दो! और कुछ सुनील के लिए भी लाना।"

"अभी लाई, चाचाजी!" बोलकर वह जल्दी से रसोई की ओर चली गई। और थोड़ी देर बाद जब वह वापस आई तो दो प्लेटों में पराठे, सब्जी और आलू पाहे आदि अनेक व्यंजन साथ लाई। देखकर सुनील घबरा उठा—"चाचाजी, इन्हें अब किस पेट में रखूं? पहली बार ही जो नाश्ता किया वह अभी तक धरा पड़ा है।"

"इतना झूठ क्यों बोलते हो? सवेरे दो पराठे नाश्ते के लिए प्लेट में रख तो जानते हैं चाचाजी! खाना था इन्हें, और अपनी कसम दिला दिलाकर सब मुझे खिला दिए। बहुत कहने-सुनने के बाद दो बिस्कुट

(कविता संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूं (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
... सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

और चाय लिए हैं। यह नाश्ता तो इन्हें करना ही पडेगा।"

"खा ले, बेटे!" श्यामलालजी ने कहा—"यह लडकी खिलाये बिना मानेगी नही! दो वष के भीतर दा दिन भी ऐसा नही देखा, जो इसने तेरे नाम की माला न जपी हो!"

"और तो और, चाचाजी! आप तो रात म देर से आए, इनका खाना दखत तो अवाक रह जाते। मुश्किल स दो फुनके खाए और खराटे की नाद सो गए। मुझे तो लगता है, शिमला म अधिकाश समय भूखे ही सो जात होग। एसा करने स शरीर कब तक साथ देगा? और फिर यह शिमला तो नही, जहा बनाने की किल्लत है। यहा तो बना बनाया मिल रहा है—फिर खाने म शम कसी?" सरिता शिकायत भरे लहजे मे बोली।

"क्या बात है, बेटे? क्या इस घर का भोजन तुम्हे अच्छा नही लगता?" श्यामलालजी न पूछा।

"नही, चाचाजी! मैंने खाना ता पेट भर खाया था। अब यह और बात है कि यात्रा की थकान के कारण अधिक नही खाया गया।'

'अच्छा, अब तो तबीयत ठीक है न? इसे खा लो फिर करते हैं बातें!" श्यामलालजी ने आग्रह के साथ कहा।

सुनील को जबरन नाश्त म श्यामलालजी का साथ देना पडा।

नाश्ते के बाद श्यामलालजी ने पूछा—"हा, अब बतलाओ। बबई की याद अचानक कैसे आ गई?

सुनील दबी जबान से बोला—"चाचाजी, आप मरे मित्र वसत स तो परिचित हैं न?"

"वसत! कौन वसत? इस समय मुझे कुछ याद नहा आता!" श्यामलालजी साचने की मुद्रा म बोल।

"आप जब शिमला गए थ—याद है आपको दो दिन बाद बाट-पट

और टाइ बाधे एक युवक भी आ गया था हम लोगों के बीच । वह काफी दिनों तक हम लोगों के साथ रहा था । वह बबई की एक कॉटन मिल का महाप्रबधक था ।'

"मिल मनेजर ? हा, आ गया याद ! तो क्या हुआ वसत का ?" श्यामलालजी न पूछा ।

'इस समय वह बबई के सेंट्रल जेल म है ।"

' सेंट्रल जेल म ! लेकिन क्या ? क्या गुनाह किया था उसन ?"

सुनील ने उसके केस की फाइल श्यामलालजी के सामने रखते हुए पूरा किस्सा सुना दिया । मुकदमे की फाइल उलट-पलटकर देखने के बाद श्यामलालजी बोले—"बेटा, सुनील ! वसत के लिए इस मुकदमे म इतनी ही गुजाइश है कि वह हाईकोर्ट म अपील कर सकता है । लेकिन केस म दम नहा है । कही भी ऐसी गुजाइश नही दिख रही है, जिसके आधार पर यह आशा की जाए कि वसत छूट जाएगा । बस अपील करना कुछ बुरा नही है । मुकदमा बिना पेंदी के लोटे के समान होता है, बहस के समय कभी कभी पासा पलट भी जाता है । यह तो तुम्ही हो जो एक मित्र के लिए इतना परेशान हो रहे हो । नहा तो आज के जमाने म कहा धरे हैं ऐसे मित्र !'

"चाचाजी, अदालत मुकदमा अपील मुझे कुछ नही मालूम है इस बारे म । मेरे पास मुकदमेबाजी के लिए पैसा भी नही है । मैं शिमला से सिर्फ आपके भरोसे चला हू । यदि मेरे लिए आपके दिल म जगह है मेरे प्रति आपके मन म यदि कुछ स्नेह है, तो मैं आपसे प्रार्थना करता हू कि आप इस केस म मेरी मदद कीजिए । ' सुनील ने विनम्र भाव से कहा ।

सुनकर श्यामलालजी हसे— बेटा, तुम्हारी इस परोपकारी वृत्ति परार्थ सेवाभाव और निश्छल निष्कपट विचारो को देखकर ही तो मैं ... प्रशसक बना । मैं तुम्हारे इन विचार भावो का कभी से कायल

(कविता सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
अरधान (कविता सग्रह 1984)
..., सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

हू। मैं तुम्हें अपने पुत्र के समान नही, बल्कि पुत्र मानता हू। इस अपील में मुझसे जितना हो सकेगा, तुम्हारी मदद करूगा। अभी दस नही बजे हैं। अदालत के समय मे काफी देर है। तब तक तुम खाना खाकर तैयार हो जाओ। किसी वकील के पास चलते है और उससे अपील का मसविदा तयार कराकर दाखिल कर देते हैं। विश्वास करो, अपनी ओर से कुछ कसर न छोडेंगे—अब जाने वसत का भाग्य।"

"बस-बस, चाचाजी! आपका यह एहसान ।"

'बेटे! " श्यामलालजी ने बात काट ली—"इसमे मेरा किसी पर काइ एहसान नही होगा। आदमी कभी किसी पर एहसान नही करता है। जो लोग यह कहते हैं—'मैंने उस पर एहसान किया'—वे मूख —निरे गवार और बेवकूफ हैं—करता कराता सब ऊपर वाला है, आदमी सिफ निमित्त होता है और निमित्त को एहसान नही कह सकते। कत्ता धर्त्ता सब ईश्वर है, उस पर भरोसा रखो। उसकी मरजी रही तो वसत इस सकट से जरूर छुटकारा पा जाएगा। कुछ ठहरकर फिर बोले—' भीतर जाओ, सरिता अकेली है। दोनो आपस म कुछ बातें करो, एक दूसरे का मन बहलाओ।"

इसके प्राय दो घटे बाद श्यामलालजी और सुनील भोजन कर कोट जाने को तयार ही हो रहे थे कि उसी समय पूना मे श्यामलालजी को ट्रककाल मिला। पूना की फम से उनकी जो बातें हुईं, उसके अनुसार श्यामलालजी का वहा पहुचना बहुत जरूरी था।

वह चाहत तो यही थे कि स्वय वसत के केस को लडें और उसे छुडाकर जेल स बाहर लाए, लेकिन अब यह सभव नही था। उन्होन सुनील को अपने पास बुलाया और बोले—' बेटा, अब यह केस तुम्हे ही लडना पडेगा। अभी अभी पूना स ट्रककाल आया है। वहा एक महीने के लिए मेरा जाना बहुत जरूरी है। मैं एक वकील के नाम से पत्र दे दता हू

और रुपये पैसे का समुचित व्यवस्था कर देता हू। तुम कोट जाकर वकील की सहायता से अपील दायर कर दो। यदि मैं इस बीच आ गया तो फिर उसे सभाल लूगा।"

उन्होने उसी समय अपने एक परिचित वकील के नाम पत्र लिखा और आवश्यक रुपया के लिए बक का एक चेक उसके हाथ म पकडा दिया। फिर अटची हाथ म लेकर घर से बाहर हो गए। गाडी तयार खडी थी। ड्राइवर ने कार का दरवाजा खोला और श्यामलालजी उसके भीतर बठते हुए बोले—"सांताक्रुज हवाई अड्डा।"

आदेश मिलते ही ड्राइवर ने कार आग बढा दी।

उनके जाने के बाद सुनील भी अपना बैग लेकर पहले बक और वहा से फिर कोट का प्रोग्राम निश्चित कर अकेले ही बाहर निकल गया।

दिन भर की कानूनी माथापच्ची और भागमभाग के बाद अपील का मसविदा तयार कर वकील के माध्यम स मुकदमा दायर कर दिया गया। एक सप्ताह बाद की तारीख मिली। अदालत उठने का समय निकट आता जा रहा था। उसके वकील न उससे कहा—"अब तो तारीख के दिन ही आपकी जरूरत पडेगी। आज का काम तो समाप्त हो गया। आप घर जा सकते हैं।"

अदालती कायवाही स फुरसत मिलते ही वह श्याम भवन की ओर चल पडा। जिस समय गेट पर पहुचा, सूरज डूब रहा था। लान म बैठी सरिता व्यग्रता स उसका इतजार कर रही थी। देखते ही झपटकर उसके पास आई और उसके हाथ से बैग लेती हुई बोली—"क्या हुआ? कारवाई हो गई?"

"अपील तो दाखिल हो गई सरिता, लकिन ।" सुनील भर्राये स्वर म बोला।

"लकिन? लकिन क्या?" सरिता ने फिर पूछा।

(कविता सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
अरघान (कविता सग्रह 1984)
५, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

"वसत को छुडाने म अपील मददगार होगी, उम्मीद कम है।'

"अपना फज जो हाता है, उसे तो तुम निभा ही रहे हो, अब सफलता मिले या असफलता, यह ता वसत का भाग्य जाने!'

"सा तो ठीक है, सरिता! लेकिन वमत का यदि छुडा न सका तो मैं अपने को कभी माफ नहा करूगा।'

'सुनीन, जब मैं तुम्हें दुखी देखती हू तो मेरा दिल रो पड़ता है—टूट टक हा जाता है। सोचने लगती हू—क्या दुनिया-भर के सघर्षों और दुखो का ठेका तुम्हा लेकर पैदा हुए? मैंन तुम्ह कभी खुश नहीं देखा। शिमला म थी, प्रयत्न करक हार गई, लेकिन तुमने आज तक यह नही बतलाया कि आखिर तुम्हारे जीवन की वह कौन सी घटना थी कौन सा तूफान था जिसने तुम्हे इस कदर मकझारा कि तुम्हारा दिल टूट गया, मन का हर कोना निराशा म डूब गया और तुम्हारे अधरा की मुस्कान हमेशा हमशा के लिए लुप्त हो गई! आज फिर तुम्हें उसी मन स्थिति म देख रही हू, जब पहले-पहल नेहरू उद्यान म देखा था। हताशा क अगम सिंधु की कराल लहरें तुम्हारी सारी प्रतिभा बहाय लिए जा रही हैं और तुम एकदम निश्चेष्ट बने हुए हो!" कहते कहते सरिता रो पडी।

सुनील रूमाल से उसके आसू पोछते हुए बोला—'अरी पगली, यह क्या कर रही है? मुझे कुछ नहा हुआ है। तू अपने आसू रोक! देख, तुमस वादा किया था न, शाम का समय पर पहुच जान का देख, अपने वादे पर आया या नही?" बालकर सुनील मुस्करा पडा।

आ तो जरूर गए हो, लेकिन मन कहा और रख आए हो! तुम्हार होठा की यह मुस्कराहट तुम्हारी नहा है यह धाखा है, फरेब है, मुझे तसल्ली दन क लिए! आखिर एसा कब तक चलेगा, सुनील? तुम बोलते क्या नहा? बतलाते क्यो नहीं कि तुम्ह क्या हा गया है?' और उसकी आखें फिर भर आइ।

सुनील ने जब जान लिया कि यह मानेगी नहीं, रोती ही रहेगी, तो यह बोला—"यह सब सुनने से तुम्हें क्या मिलेगा, सरिता ! सिवाय दुख के और कुछ भी तो नहीं है सुनाने के लिए मेरे पास। मेरी कहानी सुनने के बाद तुम्हारा हंसता-बोलता जीवन डूब जाएगा दुखों के सागर में मेरे होठों की तरह तुम्हारे होठों की हंसी भी यह क्रूर जमाना छीन लेगा फिर तुम्हारे पास शेष रह जाएगा सुनील का-सा नीरस जीवन !" बोलकर उसने एक दीर्घ सांस ली।

डबडबाये नेत्रों से उसकी ओर देख सरिता बोली—"सुनील, तुम्हारे लिए मैं इतनी दूर आ चुकी हूं कि मेरा पीछे लौटना असंभव है। तुमसे अलग रहकर मैं जिंदा नहीं रह सकती यदि तुम नहीं हो तो दुनिया की कोई दौलत, कोई भी इंसान सुख नहीं पहुंचा सकता ! मैं तुम्हारी अर्धांगिनी हूं, सुनील ! नेहरू उद्यान में, भगवान् शंकर—मां पार्वती साक्षी हैं—इनके सामने तुमने शपथपूर्वक मुझे अपनी पत्नी स्वीकार किया है, फिर यह क्यों नहीं समझते कि मैं तुम्हारे दुखों को देखकर सुखी कभी नहीं रह सकती ? मुझे बहलाने की कोशिश मत करो मुझसे छिपाने की कोशिश मत करो ? मुझे सिर्फ इतना बतला दो, आखिर वह कौन-सी विपदा है जिसने तुम्हें इतना झकझोर रखा है—मुझ पर भरोसा करो मैं तुम्हारी पत्नी तुम्हारे हर आधे की हिस्सेदार यदि पूरा नहीं तो तुम्हारा आधा दुख जरूर बांट लूंगी इससे मन का बोझ हलका होगा दुख का भार कम होगा !' सरिता सिसककर बोली।

"तुम नहीं मानोगी न ? सुनाना ही पड़ेगा ?"

"हां, तुम्हें बताना ही पड़ेगा।'

"अच्छा, नहीं मानती तो सुनो !

"बस बस बस, अभी नहीं !

"अभी क्यों नहीं ?'

शब्द (कविता संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूं (कविता संग्रह 1981)
अरघान (कविता संग्रह 1984)
[illegible], सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

"अभी न ता तुम्हारा मूड मुनाने की स्थिति म है और न मेरा सुनने की। अभी तो तुम सिफ मुझे वचन दा ! फिर कभी सुन लूगी।"

"वचन दिया, सुनाने के बाद ही तुमसे विदा लूगा।"

"सच मानो सुनील ! तुमने मेरे मन का बहुत बडा बोझ हलका कर दिया। अब ऐसा करो, जल्दी से नहा धोकर कपडे बदल लो। मरी दो-चार सहेलिया भीतर बठी हैं, कुछ और अभी आती ही होगी। तब तक हम लाग भी तैयार हो जाए !'

"तो फिर चलो !"

और दानो ही लॉन से कमर के भीतर चले गए।

ट्यूब लाइटो के प्रकाश म 'श्याम भवन का हाल जगमगा रहा था। बीच म एक काच पर सुदर शालीन वस्त्रा म सजे धजे बठे थे सुनील और सरिता। उन्हे घेरे खडी थी सरिता की सहेलिया। बीच बीच म हसी मजाक और कहकहे के फौवार छूट रहे थे। सरिता की एक सहेली वीणा ने कहा—"हाय, जीजाजी ! मैं ता तुम्हे देखत ही मर मिटी दिल एकदम वश मे नही है।"

सुनील ने छीटा फेंका—' दिल को जरा मजबूती स पकड रखिएगा, नही ता कही "

' वह तो कब का लुटा बठी, जीजाजी !"

"तो फिर आ जाइए आप भी !

"पहले जीजी छोडे तब तो !'

"ए वीणा, तुझे शरम नही आती " और फिर सुनील को चिकाटी काटती सरिता बोली—"तुम तो बडे नटखट निकले ! मैं तो तुम्हें बडा सीधा और भोला भाला समझती थी।'

' काजल की कोठरी म नहीं नहीं, आंचल म छिपा ल जीजी, नहीं तो किसी की नजर लग जाएगी। वीणा फिर बोली।

"नजर तो तुम सबके आते ही लग गइ दखती नहीं, कितन खोये-खोये-से हो रहे हैं तुम सबके जीजाजी ! सरिता न कहा।

अरे ! किसकी नजर इतनी तेज निकली ?" मीनाक्षी ने शरारत के स्वर म कहा।

'यह तो तू वीणा स पूछ ? सरिता हसती हुई बोली।

अच्छा जी ! तब तो मैं जीजाजी को जरूर ले जाऊगी।" और अपनी जगह से उठकर वीणा सुनील क पास पहुची। फिर उसकी कलाई पकड़ कर खीचती हुइ बोली—' इसी बात पर अब उठिए जीजाजी !

आखिर तू जीजाजी को लेकर कहा जाएगी ?' रमा न पूछा।

' नजर उतारने को, उस कमर म।

वीणा का इतना कहना था कि सारी सहेलियां खिलखिला कर हस पड़ी। सुनील ने भी झेंपकर सिर नीचे कर लिया। उस सरमात देख वीणा ने उसकी ठुड्डी पकड नजरों म नजरें डालकर छीटाकशी की—"मेरे प्यारे जीजाजी, जरा मेरी ओर तो दखो ! क्या मैं सरिता जीजी से बुरी हू ? नहीं न ? तो फिर चलते क्या नहीं मेरे साथ ?

इस गहरे मजाक स सुनील पानी-पानी हो गया।

सरिता ने जब देखा कि सुनील ज्यादा ही झेंपने लगा है तो वह बोली— ए वीणा, अब चल, बैठ तो अपनी जगह पर निलज्ज कहीं की ! जरा भी शरम नहीं है आखों म ?"

शरम किस बात की, जीजी ! यह तो जीजा और साली के बीच का नाता है। आखिर साली भी तो जीजाजी की ही है उनके आधे दिल की मालिक ! तुम मेरा हक क्या छीनना चाहती हो ?"

सरिता न अब देखा कि वीणा एकदम पीछे पड़ गई है तो वह अपनी

शब्द (कविता संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
अरघान (कविता संग्रह 1984)
घर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

जगह स उठी और यह कहती हुई कि 'तू ऐसे नही मानेगी'—उसे खीचती हुई ले जाकर उसकी जगह पर बिठा दिया।

सरिता ने उसकी कलाई इतनी जोर से थाम रखी थी कि वीणा दद से कराह उठी। उसे कुरसी पर बिठाने के बाद जब सरिता ने उसकी कलाई छोडी तो वीणा के मुख से निकला—"माइ गाड तर अदर तो वह शक्ति है कि ऐसे ऐस यदि दस जीजाजी भी तुझसे निपट जाए तो तुझे जीत नही पाएगे।' और वह हो हो कर हस पडी।

"तू सचमुच वडी मुहफट है। जिसके पल्ले पडेगी उसका तो कचमर ही निकल जाएगा।" सरिता मसखरी के स्वर म बाली।

"कचूमर! तू कचूमर की बात करती है? अर, पतको के बीच रख सूई धाग म मिलकर उस ऐसा छिपा लूगी कि तू टापती ही रह जाएगी।"

वीणा की इस बात मे पूरा हाल ठहाका से गूज उठा। काफी दर तक गूजता रहा काफी देर तक चलता रहा यह हसी मजाक!

इसके बाद चला कॉफी का एक दौर! काफी के घूट से सबने एक नई ताजगी महसूस की। अभी चारो ओर गभीरता थी। एक दो सहेलिया न वीणा की ओर देखकर आखो ही आखो म कुछ इशारा किया। वीणा अपनी जगह से उठकर सुनील की ओर बढी। उस अपनी ओर आते देखकर सुनील एकदम घबरा उठा—'जाने अब कौन सी मुसीबत खडी करेगी यह लडकी।"

वीणा उसकी घबराहट से उसके मन के भाव ताड गई। नजदीक जाकर बाली—'जीजाजी मैं अब आपको परेशान नही करूगी। हसी-मजाक बहुत हो चुका रात भी काफी गुजर चुकी है हम लोग भी अपने अपने घर जाएगी 'लेकिन जाने स पहले आप हम लोगो की एक इच्छा पूरी कर दें हमने आपको बहुत बार पढा है अखबारो म !

बारह

रात आधी से अधिक गुजर चुकी थी। आकाश घनघोर बादलो से ढका हुआ था। मूसलाधार जल बरस रहा था। कमरे की खिडकिया खुली हुई थी। सरिता अपने बिस्तर पर पडी थी, लेकिन आखो से नीद जाने कहा उड गई थी। जब पानी के साथ-साथ तेज हवा भी शुरू हो गई और जल के छीटे खिडकियो की राह से भीतर आने लगे तो सरिता ने उठकर बिजली जलाई और खिडकियो का दरवाजा बद कर दिया। इस काम से निपटकर जब वह अपने बिस्तर की ओर जाने के लिए मुडी तो उसका ध्यान सुनील की ओर गया। वह उसके कमरे की भी खिडकिया बद करने के लिए उधर चली गई। उसने देखा सुनील की आखें बद है और उसकी एक हथेली सिर पर और दूसरी छाती पर है। अपने से बडे बूढो के मुख से सरिता ने सुन रखा था कि सिर पर खुद का हाथ होना विपत्ति का द्योतक माना जाता है और छाती पर हाथ रखकर सोने से उलटे सीधे बुरे-बुरे सपने नजर आते हैं। सुनील के दोनो हाथ सिर और छाती से हटा देने के उद्देश्य से वह उसके पलग के पास गई। उसने उसका छाती वाला हाथ हटाकर उसके बगल मे कर दिया। लेकिन जब सिर पर रखा हाथ हटाने लगी तो सुनील की आख खुल गई। उसने बिजली के प्रकाश मे देखा, सरिता उसके पलग के पास उसका एक हाथ थामे खडी है। उसके सिर के बाल खुले हुए थे, जो पीठ और दोनो कधो को घेरे बिखरे हुए थे। काले बालो के बीच से झाकता गोरा गोरा मुखडा बल्ब के

बात काटकर सुनील बोला—"मुझे पढा या आपने और, अखबारो मे ? यह तो आपने बडी अचरज की बात कही।'

सरिता को वीणा की बात पर हसी छूट गइ। उसके हसते ही वीणा को अपनी भूल महसूस हुई। वह जबान म सुधार करती हुई बाली—"माफ कीजिए जीजाजी ! यह जीभ आखिर है ता चमडे की ही कभी-कभी बडी लबी हो जाती है। मरे कहने का मतलब था कि आपकी रचनाए पढी हैं अखबारो म !"

"फिर ?'

"फिर जब आप खुद यहा मौजूद हैं ता अपने मुखारविंद मे अपनी कोई एक अच्छी सी रचना सुना दें !"

"क्या, सरिता ! तुम्हारी क्या राय है ?' सुनील ने सरिता की ओर देखा।

'हा, मैंने इन लागा स वादा कर लिया है तुम कोई अच्छी-सी फडकती हुई रचना सुनाओगे ! ' सरिता बोली।

'अच्छी बात है ता सुनिए कविता का शीर्षक है

कविता पाठ समाप्त हुआ हाल तालियो की गडगडाहट स गूज उठा। इस स्वागत इस प्रशसा के लिए अपनी जगह पर खडे होकर सुनील ने सरिता की सहेलियो के प्रति धन्यवाद ज्ञापन किया। चहल-कदमी करती सरिता की युवा सहेलिया घर जाने के लिए एक एक कर बाहर निकलने लगी।

(। 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)

।८न ९, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

बारह

रात आधी से अधिक गुजर चुकी थी। आकाश घनघोर बादलो से ढका हुआ था। मूसलाधार जल बरस रहा था। कमरे की खिडकिया खुली हुई थी। सरिता अपने बिस्तर पर पडी थी, लेकिन आखो से नीद जाने कहा उड गई थी। जब पानी के साथ-साथ तेज हवा भी शुरू हो गई और जल के छीटे खिडकियो की राह से भीतर आने लगे तो सरिता ने उठकर बिजली जलाई और खिडकियो का दरवाजा बद कर दिया। इस काम से निबटकर जब वह अपने बिस्तर की ओर जाने के लिए मुडी तो उसका ध्यान सुनील की ओर गया। वह उसके कमरे की भी खिडकिया बद करने के लिए उधर चली गई। उसने देखा सुनील की आखें बद है और उसकी एक हथेली सिर पर और दूसरी छाती पर है। अपने से बडे बूढो के मुख से सरिता ने सुन रखा था कि सिर पर खुद का हाथ होना विपत्ति का द्योतक माना जाता है और छाती पर हाथ रखकर सोने से उलटे-सीधे बुरे-बुरे सपने नजर आते हैं। सुनील के दानो हाथ सिर और छाती से हटा देने के उद्देश्य से वह उसके पलग के पास गई। उसने उसका छाती वाला हाथ हटाकर उसके बगल म कर दिया। लेकिन जब सिर पर रखा हाथ हटाने लगी तो सुनील की आख खुल गई। उसने बिजली के प्रकाश मे देखा, सरिता उसके पलग के पास उसका एक हाथ थामे खडी है। उसके सिर के बाल खुले हुए थे, जो पीठ और दोनो कधो को घेर बिखरे हुए थे। काले बालो के बीच से झाकता गोरा गोरा मुखडा बल्ब के

प्रकाश म खिले चान्-सा चमक रहा था। सुनीत को लगा—जसे कोई अप्सरा आकर खडी हो गई उसके पलग के पास। वह उठकर बैठ गया।

पानी का बरसना अभी भी जारी था। मौसम म ठड पूरी तरह समाई हुई थी। यदा-कदा बदन म सिहरन सी हो उठती थी। सरिता मन ही मन अपने को अपराधिनी सी महसूस कर रही थी और उसे पश्चात्ताप हो रहा था—नाहक ही उसने सुनील का हाथ हटाया। बेचारा कहा तो थका मादा आराम की नीद सो रहा था और कहा उसने हाथ हटाकर उसकी नीद म खलल पैदा कर दिया। वह एकटक सुनील के चेहरे को देख रही थी और सुनील उसके चेहरे का। अचानक इसी समय जोर की एक झपटी उठी और दोनो के बदन को कपा गई। सुनील के धैय की सीमा टूट गई। उसने बठे ही बठे अपने दोनो हाथ बढा सरिता की दोनो भुजाए थाम अपने आगोश म खीच लिया।

सरिता न उसकी इस हरकत म किसी तरह की बाधा न उपस्थित की। शायद इसीलिए कि वह मन वचन से उसकी पत्नी थी उसके प्रति पूर्ण समर्पित थी। छुई मुई-सी एकदम सिकुड सिमट गई। लाज और शम से उसने अपना मुख अपने दोनो हाथो से ढक लिया। उसके सिर के रेशम जसे कोमल श्यामल केशो पर हाथ फेरते हुए सुनील ने कहा—"मरु !'

कहा।

'सोई नही अभी ?' कहते हुए सुनील ने उसका नीचे की ओर छिपा मुख पलटकर ऊपर कर लिया। उसका हाथ हटाकर देखा—उसका चाद सा मुखडा लज्जा से लाल सुर्ख हो गया।

'पगली अभी सोई नहा ?'

'नीद नहा आई।'

'क्या ?'

न जाने क्या ! कितनी कोशिश की लेकिन आज नीद का पता ही

(संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
अरघान (कविता संग्रह 1984)
, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

नही है।"

"झूठ बोलती हो।"

'कुछ ' कुछ।"

"अच्छा, बतलाओ तो सही, सोई क्यो नही ?"

"यदि सो जाती तो पुलक भरी रात के इस एकात म अपने मन-भावन से इस तरह मीठी मीठी बातें करन का अवसर भला कब मिलता ?" कुछ ठहरकर फिर बोली—' मैंन तुम्हे जगाकर नीद खराब कर दी न बहुत बुरी हू मैं।

"अरी, पगली! तू बुरी नही, बहुत अच्छी है। तून मेरी नीद खराब ही कब की ?'

"क्यो, तुम सोए नही थे क्या ?'

"नही, ऐसे ही पडा था सोच रहा था।"

"तो यो पडे-पडे अपन दिल को जलात रहे और मुझे खबर तक नही होने दी ?"

' बतला भी देता, तो तुम क्या करती ?'

"तुम्हारी उदासी, तुम्हारी निस्सगता, तुम्हारा चितन सब हरण कर लेती।"

"वह कैसे ?"

"जैसे अब! तुमने नही बतलाया यह दोष किसका ?'

"दोष तो मेरा ही है, लेकिन मैं भी कहा जानता था कि तुम जाग रही हो!'

"सुनील, एक बात पूछू, बतलाओगे ?" सरिता ने वातावरण को गभीर मोड दिया।

"पूछो, क्या पूछना चाहती हो ?"

"वही आज शाम का वचन। बडा सुहावना मौसम ह

बना कि इच्छा हानी है, इसी तरह तुम्हारी गोद म मैं लेटी रहू और लेटे-लेटे ही मरे प्राणपखेरु हमेशा हमेशा क लिए उड जाए।"

'ए, पगली ! ये उलटी सीधी बातें कहा से आ सूझी !"

'तुम्हें नहा पता सुनील ! तुम पुरुष हो न, तुम नही समझाग इस रहस्य को। कितनी सौभाग्यवती होती है वह नारी, जिसे पति का सपूण प्यार मिलता है और अपने पति की गोद म लेटे-लेटे वह अपने प्राण त्याग करती है ! ऐसी सुखद अनुभूति बहुत कम नारियां को मिलती है !" भावनाओ म बह गई सरिता।

'ए सरु ! सरु !!" झकझोरा सुनील ने।

हे ! " चौंक पडी सरिता—'कुछ कहा तुमने ? बोलो न क्या बात रहे हो ?"

'कहानी नही सुनेगी ?"

'अरे, हा ! कहानी की ही तो चचा हो रही थी। मैं भी किन भावनाओ मे बह गई देखो न सुनील मैं तुम्हारी बाहा म पडी पडी बहक गई सपनो की दुनिया म और मुझे इस बात की तनिक भी खबर न रही कि तुम मेरे मुख से दो मीठे बोल सुनने के लिए रात आखो मे समेटे बठे हो अच्छा, तौबा है इन सपनो का ! तुम पास हो तो ये सपने फिर कभी देख लूगी। अभी तो अपनी कहानी सुनाओ सपूण कहानी।'

"बिलकुल नही छिपाऊगा। लेकिन सुनने से पहले एक बात का जवाब दो।"

"पूछो।'

कहानी सुनकर मुझसे नफरत तो न करोगी ?

"यह तुमने क्या कह दिया सुनील ! नफरत और तुमसे शायद तम्हें पता नही है। और पता हागा भी कसे, जब मैंन अब तक तुम्ह कुछ बत-

---

उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
प्रयान (कविता सग्रह 1984)
४७ ६, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

लाया ही नही उस बारे म उम दिन तुमने भगवान शकर के सामने शपथपूवक मुझे अपनी पत्नी स्वीकार कर जो पुष्पहार मेरे गले म डाला, उसे अपने 'मगलसूत्र' के रूप म आज भी सुरक्षित रखे हुए हू हा यह बात और है कि फूल होने के नाते वह सूख जरूर गए है, लेकिन हैं अक्षुण्ण और उसकी अक्षुण्णता जीवन भर बनी रहेगी। मुझे नफरत ही करनी होती तो उस गधव विवाह से पहले मैं तुमसे पूछती तुम्हारी जाति क्या है ? तुम्हारे माता पिता कौन ह तुम्हारी शिक्षा दीक्षा क्या है ? लेकिन मैंने कुछ नही पूछा—न तब और न अब और न ही कभी भविष्य म पूछना चाहूगी। ऐसे सवाल गौण हैं सुनील !'

"और रोओगी तो नही ?"

"नहा, ऐसा बधन न लगाओ। ममता, करुणा, दया ये सब प्रसग ऐसे होते हैं कि न चाहते हुए भी आसू बरबस छलक आते हैं। तब यह वादा करती हू कि जहा तक होगा अपने को सयमित रखने की कोशिश करूगी।'

"अच्छा तो सुनो, कार्तिक पूर्णिमा के स्नान का दिन था। मेरी उम्र तब चार साल की थी। मा चद्रभागा के तट पर स्नान के लिए आई थी। मुझे तट पर बिठाकर मा स्नान करने लगी। मा की देखादेखी मैं भी नदी के जल मे उतर गया। मा को इसका पता नही चला। जब वह स्नान कर नदी से बाहर निकली तो मैं उसे अपनी जगह पर न दिखा। उसने चारा ओर दृष्टि दौडाई। देखा—मैं चद्रभागा की लहरा के साथ बहता जा रहा हू। वह तैरना नही जानती थी। उसने चीख-चीखकर, पुकार-पुकारकर मुझे बचाने के लिए लोगो से प्राथना की लेकिन स्नान के लिए आए हजारो लोगा म से कोई भी बचाने के लिए नदी के उस तेज प्रवाह म न उतरा। मा को कुछ ऐसा महसूस हुआ, जस मैं अब न बचूगा। इसका असर उसके दिमाग पर तत्काल पडा और वह पागल हो गई और पागल पन की दशा मे ही उसने नदी म कूदकर जान दे दी।

'फिर आप बचे कैसे ?"

'पूर्णिमा मेले के प्रबंध के लिए नागरिकों और सरकार की ओर से एक कमेटी की स्थापना हुई थी। इस घटना की खबर देखते-देखते सारे मेले में फैल गई और कमेटी के स्वयंसेवकों ने अपने प्राण हथेली पर लेकर नदी के उस तेज प्रवाह से संघर्ष किया और मुझे धारा से बाहर निकाला। उस समय मेरे पेट में इतना जल पहुंच चुका था कि मेरी दशा मृत की सी थी। लेकिन वहां के डाक्टरों ने अपनी ओर से मुझे बचाने में कोई कमी न आने दी। उन्होंने मेरे पेट से पानी निकालकर, बड़ी सावधानी-पूर्वक मेरा इलाज किया। इस तरह मेरी रक्षा हुई।'

सुनील ने देखा, सरिता की आंखें भर आई है। उसने उसका सिर सहलाते हुए कहा— तुम रो रही हो अभी से हो ! अरी पगली, यह तो शुरुआत है। पता नहीं तू आगे कैसे सुनेगी मेरी कहानी !"

सरिता ने अपने आंसू पोंछ लिए और बोली—"अच्छा, फिर क्या हुआ ?'

'मेला कमेटी के सामने अब समस्या खड़ी हुई मुझे लेकर क्योंकि मैं बच्चा था—किसी को नहीं बतला सका कि मेरा घर कहां है। और दूसरा पास पड़ोस का ऐसा आदमी नहीं था जो मुझे पहचानता हो। सुबह से शाम तक मेरे अभिभावक की तलाश होती रही लेकिन कोई नहीं आया।

फिर कमेटी के सदस्यों ने अध्यक्ष को राय दी, मुझे अनाथालय भिजवाने की। लेकिन जैसा मैंने सुना है—मैं इतना खूबसूरत और होनहार था कि अध्यक्ष की आत्मा ने मुझे अनाथालय भेजने का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया।'

'बहुत भले आदमी थे अध्यक्ष ! सरिता बोली।

"तुम भले की बात करती हो, सरु ! वह देवता इंसान थे। अपने

(1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
९, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

जीवन म म कभी उ ह भुला नही सकता ।'' सुनील न जवाब दिया ।

"कौन थे वह ?"

"बतलाता हू, सुनती जाओ। वह मिलट्री के कैप्टेन थे बाबू विभूति-नारायण सिह। उन्होने पुलिस इसपेक्टर का सूचना भिजवाई। उसके आने पर उन्होंने एक शतनामा तयार कराया—यदि मरा कोई अभिभावक भविष्य म मेरी तलाश करता हुआ आया ता वह मुझको उसे सौंप देंगे, अन्यथा अपना पुत्र बनाकर पालन पोषण करेंगे पढाएगे लिखाएगे।'

'फिर ?" पूछा सरिता न।

'वह मुझे लेकर अपने घर चले गए।

"उनके घर म किसी ने एतराज नही किया ?" सरिता ने आश्चय से पूछा।

"उनके घर म कुल चार प्राणी थे—वह, उनकी पत्नी, मेरी ही उम्र का एक लडका और उससे दो साल छोटी एक लडकी। उनकी पत्नी ने आरभ म कुछ एतराज उठाया। घर म विवाद न हो, इसलिए व दूसर दिन सवेरा होने पर मुझे लेकर शहर जाने का तैयार हुए। उनकी पत्नी ने पूछा—वह कहा जा रहे है ?

"कप्टन साहब ने जवाब दिया— इस बच्चे का अनाथालय मे छोडने।'

"वह भी बहुत भली मा थी। मेरे मासूम चेहरे का देखकर मा की ममता उमड पडी और उन्होंने झपटकर उनकी गोद से मुझे अपनी गाद म ले लिया और अपने पति पर बिगड पडी—'जो इस घर म बेटा बनकर आया, वह भीख की रोटियो पर पलने के लिए अनाथालय कभी नहा जाएगा।''

'सचमुच बहुत भली थी, ठाकुरानी मा।'' सरिता की आखें फिर छलछला आई। उसने आसू पोछते हुए कहा—"आगे ?"

"सचमुच इस मा न मुझे इतना प्यार किया —इतना प्यार दिया कि मैं एकदम भूल गया अपनी जन्म देने वाली मा को। अपने सगे बच्चो के समान ही उन्होने मुझे पाला-पोसा और पढाया लिखाया। कप्टेन साहब ने ऊची तालीम दिलाने के लिए मुझे और अपने सगे बेटे को इलाहाबाद युनिवर्सिटी म दाखिला दिला दिया।

'उस समय मैं और उनका लडका हास्टल म एक ही कमरे म रहते थे। लेकिन उनके लडके का स्वभाव कुछ ऐसा था कि मुझे सहन नहीं होता था। जब वह सीमा से बाहर गुजरने लगा, यहा तक कि माताजी जब हास्टल का खर्च और फीस के लिए रुपये मनिआडर भेजती तो वह उसे कालेज म जमा न कराकर उलटे सीधे धधे म खर्च कर डालता।

'अब तक मेरी साहित्यिक साधना काफी स्वस्थ ऊचाई पर पहुच चुकी थी और पत्र पत्रिकाओं म कुछ पारिश्रमिक भी मिलने लगे थे। मैं किसी तरह इस ऊपरी मदद से अपना कालेज और होस्टल का खर्च अदा ही कर देता था।

"सयोग से एक बार उसके ऊपर कई महीनो के पैसे लद गए। वह मनिआडर के पैसे खर्च कर चुका था और जब कालेज से निकाल जाने की स्थिति आ पहुची तो मुझसे लडने लगा कि मैं पारिश्रमिक की रकम उसके नाम जमा करा दू। जमा करा भी देता, लेकिन सचाई यह थी कि पारिश्रमिक की रकम बहुत ज्यादा नही होती थी और जो होती थी, उसे मैं अपने खर्चे म जमा करा चुका था। मेरे पास रुपये बिलकुल न थे।

'लाचार होकर मुझे सारा किस्सा पिताजी के पास खोलकर लिखना पडा।'

पिताजी! तुमने तो पहले ही बतलाया कि मा बाप के बारे म कुछ जानते तक न थे?' सरिता ने कहा।

'अरी पगली! तू नींद म तो नही है! अब तो कैप्टेन साहब ही

(कविता सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
अरघान (कविता सग्रह 1984)
...५, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

तुम्हे नही पता, सर ! वह लडकी पैदा जरूर हुई थी वश्या क गभ से लेकिन उस कीचड म वह एक पद्मपुष्प के समान थी ।'

"क्या कहते हो ? वश्या की लडकी— और, पद्म ? '

उससे भी बढकर सर ! आज वह होती तो तुम उसे अपनी छोटी बहन समझकर गले लगा लेते ! '

' तो क्या अब वह जिन्दा नहीं है ? ' सरिता ने विस्मित होकर पूछा ।

सुनती जाओ, उसकी कहानी भी इसी कहानी की एक कडी है। बिना उसकी कहानी के जो कहानी तुम्हे सुना रहा हू, कभी पूरी नही होगी ।

"अच्छा, तो आगे बोलो !

' मैं जिस कोठे पर चढा जा रहा था वहा भी मेरे गाना म सुनाई पडी पायलो की खनक और तबल की ठमक ! मैं क्षण भर के लिए हतप्रभ रह गया — यह सयोग ही था कि मैं जस ऊपर पहुचकर खडा हुआ, मेरे सामने शबनम आ गई और मेरी बाह पकड, मुझे खीचती हुई एक गलियारे मे अपने कमरे म ले गई । मुझे कुरसी पर बिठाती हुई बोली— 'तुम, क्यो आए यहा ? शायद तुम्हें पता नहीं, किसी ने यदि देख लिया तो जो इज्जत तुम्हें सरस्वती पुत्र कहकर इस शहर ने बख्शी है, वह मिट्टी म मिल जाएगी । मेरी समझ मे नही आता, किस तरह लोगो की नजरो से छिपाकर तुम्हें इस मोहल्ले से बाहर करू ?'

' उसकी बात से मैं अवाक रह गया । वह भी उस पाप नगरी से निकलना चाहती थी किंतु सदा के लिए ।

"मैंने उसके आसू पोछे उसे धैय से काम लेने की सलाह दी वचन दिया कि किसी नौकरी से लगते ही मैं उसे उस पाप-नगरी से निकालकर कही अयत्र ले जाऊगा, जहा वह शराफत की जिंदगी जी सके ।

"क्या बताऊ सर ! मेरे वचन देते ही उसकी खुशी का तो कुछ पूछो

(। सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
मरघान (कविता सग्रह 1984)
, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

ही मत। पहले दुख की अनुभूति म रोई--फिर खुशी के आसुओ मे भीगी। मैं जब दोबारा उसके आसू पोछने को हुआ तो वह भर्राई आवाज मे बोली—'नही, ! इन आसुओ को न पोछो ! ये आसू ग्लानि के नही, सुख के आसू हैं, इनके निकल जाने से मेरे मन का सारा कल्मष धुल जाएगा।'

"फिर उसने मेरे वहा आने का कारण पूछा। जब मैंने उसे बतलाया तो वह बोली—'कप्टेन का बेटा इसी कोठे पर एक वेश्या के जाल मे फसा हुआ है। इस समय महफिल के बीच शराब के नशे म वह धुत पडा है।'

"सुनते ही मैंने जाना चाहा तो शबनम मेरे सामने आ गई। बोली—'मैं वहा आपको किसी कीमत पर नहा जाने दूगी।

"जब मैंने बार-बार कैप्टेन की बीमारी का समाचार और उनके बेटे का हवाला दिया तो वह मेरे पर कुछ नाराज भी हुई। तुम विश्वास नही करोगी, सरु ! उसने एक ऐसी बात कह दी कि मुझे पानी-पानी हो जाना पडा। '

'क्या कहा उसने ?" सरिता ने पूछा।

"सुनोगी ?"

'हा ! '

' मेरी हसी तो नही उडाओगी ?'

'अरे, भले मानुस ! भला इसम कैसी हसी ?"

"उसने कहा, लगता है आपको भी आज किसी देवी की तलाश है ।'

"फिर उसने अपने कमरे का वह दरवाजा खोला, जहा से महफिल का सारा तमाशा देखने को मिलता था। उसने परदे की ओट म मुझे खडा कर दिखलाया—सचमुच उसका कहना ठीक था। कप्टेन का बेटा शराब के

नने म धुत पडा था।

" उसने शाम तक वहा स नही आने दिया। जब कुछ अंधेरा हो गया तो वह खुद मुझे लेकर नीचे आई और युनिवर्सिटी क गेट तक पहुचा कर वापस हुई।

"क्या नही! उस भी डर समा गया होगा कि कही तुम वहा से निकलकर किसी और के घर म न घुस जाओ! क्या ठीक कहा न? इसम सदेह नही, बहुत चतुर थी वह! तुम्हारी पुरुष जाति का ठिकाना भी क्या?'

"अच्छा?"

"और नही तो क्या?'

"नारी जाति न मर्दों पर कभी विश्वास भी किया है?

'मर्दों की जाति ही एसी है।' बोलकर सरिता फिर हो हो कर उठी।

'बोर हो गई? नही सुनने की इच्छा हो तो बन्द कर दू?'

'नही, जी! सुनाओ, आनन्द आ रहा है। बडा दुख है तुम्हारे जीवन की कहानी मे! अच्छा, तो फिर?'

"मैं उसी रात गाव के लिए रवाना हो गया। तीसरे दिन घर पहुचा। सचमुच पिताजी की हालत गभीर थी। वह मेरा ही इतजार कर रहे थे। मेरे आते ही उन्होंने मेरा पिछला वह सारा इतिहास बतला दिया, जो अब तक मुझसे छिपाकर रखा गया था। उसके तुरत बाद ही वे इस दुनिया को छोड गए। सौंप गए मेरे हाथ म अपनी पत्नी और बेटी को!

' इस घटना के चार छह दिन बाद उनका बेटा घर लौटा। जब मा ने बाप की मौत पर न आने का कारण पूछा, उसने वह सारे दुष्कर्म जिनम वह सना हुआ था, मेरे सिर मढ दिये और मेरे सिर पर इल्जाम थोप

शब्द (कविता सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)
रनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

दिया कि मैंने दौलत के लाभ म उसका अपहरण करा दिया था।"

"क्या सचमुच तुम्हें कप्टन न दौलत दी थी ? सरिता न पूछा।

"हा, उनके मरने पर जब उनकी वसीयत पढी गई ता जायदाद क चार हिस्स म से उ होने एक चौथाई हिस्सा मरे नाम कर दिया था।'

"तो तुमने उस जायदाद का क्या किया ?"

'उसे मैंन गाव छोडत समय वहा की पाठशाला को दान कर दिया।"

"यह काम तुमने बहुत अच्छा किया। फिर ?'

"इसी समय और घटना सामन आई। कैप्टेन की बटी का सबध एक आवारा और सस्कारहीन व्यक्ति स हो गया। यह घटना वसत की नजर म आई और उसन दाना का अश्लील हालत म कमर स चित्र ले लिया। तसवीर की बात तो वसत न मर अलावा किसी का न बतलाई, लकिन एक भाई की हैसियत से उसने उस डाटा। वह उस पर बिगड गई। बात बढने पर मुझे हस्तक्षेप करना पडा। कैप्टेन की बटी का सारा आक्रोश मेरे ऊपर हो गया। उसे डर लगा कि कही यह भेद मैं उसकी मा से या गाववालो से न कह दू—इसलिए बडी सफाई स बचन क लिए उसने अपनी मा और भाई के सामन मुझ पर और वसत पर यह इलजाम लगा दिया कि हम दोनो ने रास्ता चलते उसे छेडा है।'

'माई गॉड! उसन तो बहुत भयकर इलजाम लगाया। और मा जी ने यह भी नही सोचा कि तुम दोना उसके भाइ हो। ऐसा कभी नही कर सकत ?"

'नही। वह पहले तो अपन बट की बात पर विश्वास कर मुझ पर गुस्सा थी ही, अब तुरत ही इस दूसर इलजाम न आग म घी का काम किया और वह इस कदर भडकी कि मुझ पर अपमानजनक शब्दो की बौछार करत हुए मुझ पर तेज धार वाला एक गडासा चला दिया।

'बाप र! यह तो बहुत बुरा हुआ! फिर ?" फटी फटी आखो से

सुनील की ओर देखती हुई सरिता बोली ।

" फिर क्या ? ईश्वर को मेरी रक्षा करनी थी, क्योंकि मैं गलत राह पर नही था । सयोग मे वसत आ निकला और उसने तेजी से मेरी बाह पकडकर अपनी ओर खीच लिया । मैं बाल बाल बच गया उस गड्डाम की धार स ।

मा, बेटे और बेटी तीनो न मिलकर मुझे घर से निकाल बाहर कर दिया । यह खबर गाव भर म तुरत फैल गई । हम और वसत दोनो ही गाव छोडने वाले थे । लेकिन गाव के कुछ प्रभावशाली लोगो ने रोक लिया । तय हुआ कि पचायत करके सामूहिक निणय लेकर हम दोनो को पुलिस को सौंप दिया जाय । '

' यह तो अच्छा खासा तूल पकड़ गया ?'

हा लेकिन यहा भी जीत हमारी ही हुई । शाम को पचायत मे जब मेरे ऊपर कप्टेन के बेटे के अपहरण का झूठा इलजाम लगा तो मैं अपनी सफाई पेश करने की स्थिति म नही था, क्योंकि मेरे पास निर्दोष होने का कोई प्रमाण नही था । लेकिन यहा मेरी मदद की शबनम ने ।

शबनम ने मदद की ? क्या वह उस गाव गई थी ।'

नही ।"

' तो फिर उसने मदद कैसे की ?'

"घटना के दो दिन पहले मेरे नाम म शबनम का एक पत्र आया । पत्र सयोग स वसत के दादाजी के हाथ लग गया । वह एक रिटायर डी० एस० पी० हैं और उनकी उम्र नब्बे वष स ऊपर हो रही है । गाव और इलाके मे आज भी लोग उन्हें इज्जत की निगाह स देखते है । वह मुझे अपने पोते वसत से कही ज्यादा प्यार करत हैं । जब सारा गाव भर और वसत के विरोध म हो गया तो उन्होंने हमारा पक्ष लिया । उनके कारण ही गाव म हमारे साथ किसी न दुर्व्यवहार नही किया । पचायत म जब मैंने अपहरण के मामल

सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
अरघान (कविता सग्रह 1984)
सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

मे अनभिनता प्रकट की तो पचो और सरपच ने मुझसे निर्दोष होने का सबूत मागा। मैंने देखा—उस समय बसन्त के दादाजी अपनी छडी टेकते हुए पचायत मे पहुचे और बोले—

" 'इस लडके ने कोई गुनाह नही किया। कैप्टेन का बेटा एकदम शैतान है। वह जानबूझ कर अपने बाप की मौत में नहीं आया। वह उस दिन, जब मुनीम इस खबर देने गया तो शराब के नशे मे डूबा अर्द्धनग्न हालत मे एक वेश्या के साथ सोया था।' डी० एम० पी० साहब ने बयान किया।

" 'लेकिन आपको कैसे मालूम ? सरपच ने पूछा।

" 'उस समय कैप्टेन का बेटा, उनकी बेटी और मा जी पचायत के आदेश पर वही बैठे थे।'

'फिर ?" सरिता ने आगे जानने की जिज्ञासा प्रकट की।

" फिर, डी० एम० पी० साहब ने शबनम का वह पत्र अपनी जेब से निकाला और सरपच को देते हुए कहा—'इसे पढिए।

" सरपच ने वह पत्र पढा। पत्र मे शबनम ने कैप्टेन के पुत्र की सारी कारस्तानी लिखी थी। पढने के बाद सरपच बोला—'यह तो ठीक है डी० एस० पी साहब—पत्र से जान पडता है यह किसी लडकी ने लिखी है, लेकिन उसका लिखा सच है यह कैसे माना जाय—झूठ भी तो हो सकता है ?'

" मैंने देखा कैप्टेन का बेटा अब तक की कार्यवाही से बडा खुश खुश नजर आ रहा था, क्योंकि पचायत की कार्यवाही अब तक उसके पक्ष मे चली आ रही थी।'

'लेकिन पचायत ने जब पत्र को मानने से इन्कार कर दिया तब ?"

" तब डी० एस० पी० साहब ने अपनी जेब से दो तसवीरें निकाली और बोले—'इस पत्र के साथ ये तसवीरें भी थी। जरा इन्हे देखिए तो गौर से—

इसम कौन है और किस हालत मे है ?'

तसवीर कैप्टन के बट की थी। जब वह शराब के नशे म बहोश एक वेश्या के साथ लेटा था, शबनम न बडी सावधानी स दोनो की तसवीर न ली थी। और दूसरी तसवीर म वेश्या नाच रही थी और वह महफिल म बटा कुछ गुण्डो के साथ शराब पी रहा था।"

"इसमे कोई शक नही कि मरी बहन शब्बो न मौक पर तुम्हारी मदद की और तुम्हे बहुत बड कलक स बचा लिया। अच्छा, तो फिर ?' सरिता आगे बोली।

वे तसवीरें दखत ही पचायत न कप्टन के परिवार को वे तसवीरें दिखलाइ। बटे क सामन अब अपराध कबूल कर लन के सिवाय और कोई रास्ता न था। मा जी का शायद अपनी भूल का एहसास हुआ। वह गुमसुम खामोश रही।'

फिर ?

'फिर मामला उठा कप्टेन की बटी का कि मैंन उस अकेले म छेड़ा। यद्यपि बसत ने मुझे कप्टेन की बेटी की वह अश्लील तसवीर बहुत पहले दे दी थी लकिन मैं उस अपनी बहन के रूप म दखता था यही साचा करता था कि यदि तसवीर किसी को दिखा दू ता वह बदनाम हो जाएगी और समाज म उसका रहना मुश्किल हो जाएगा। इसीलिए चुप रहा। लेकिन जब पचायत के पूछने पर उसन अपना झूठा इलजाम सबके सामने फिर दोहराया तो इस कलक से बचने के लिए वह तसवीर पचायत के सामने पश करने पर मैं मजबूर हो गया। तसवीर देखते ही गाव वालो को सच्चाई का पता चल गया। सरपच ने मेरे निर्दोष होने का निणय सुनाया। डी० एम० पी० साहब ने उठकर मुझे अपनी छाती स लगात हुए कहा— बेटा, नहा जानता तुझे किस मा न जन्म दिया, लकिन तेरा आचरण तरे व्यवहार से यह जरूर साबित हो गया कि तुझे जन्म दने

(कविता सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
६, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

वाली मा कोई सती-साध्वी नारी थी और तूने किसी ऊचे संस्कार वाले कुल मे जन्म लिया है। भगवान तेरे जैसा बेटा सभी का दे। तू अगर इस गाव मे रहना चाहता है तो कैप्टेन न सही, लेकिन उसका दोस्त यह डी० एस० पी० अभी जिंदा है, तुझे अपना बेटा बनाकर अपने घर ले जाने को तैयार है, और यदि तू इस गाव को छोडना चाहता है तो जा मेरा आशीर्वाद है तू अपने उद्देश्य, अपने लक्ष्य मे इसी प्रकार कण्टको को पार कर सफल होता जाएगा।"

"इसके बाद ?"

"पचायत की कार्यवाही जब खत्म हुई तो रात काफी गुजर चुकी थी। मैं उसी रात गाव से निकल जाना चाहता था। कैप्टेन की पत्नी पचायत की भीड से अलग हटकर एक किनारे बैठी था। चूकि उन्होने मुझे पाल पोस कर जवान किया, इसलिए उनके एहसानो को कैसे भुला सकता था, आखिर थी तो मेरी मा ही! मैंने इसी पचायत मे कैप्टेन द्वारा दी गई उस जायदाद को पचायत के माफत स्कूल को दान कर दिया और मा जी का आशीर्वाद लेने उनके पास आया। मैंने उनका चरण स्पर्श किया और कहा—'मैं जा रहा हू मा जी! मुझे आशीर्वाद नही दीजिएगा!'

वह फूट फूट कर रो पडी। बडी मुश्किल से उन्हे चुप कराया। शात होने पर वह बोली—" 'बेटा, औलाद की ममता के वशीभूत मैं पागल हो गई थी मैंने अपनी औलादो के बहकावे मे आकर तेरे साथ घोर अन्याय किया, इसमे मैं कभी इनकार नही कर सकती। लेकिन मैं चाहे जसी भी हू, तेरी मा हू और मा के अपराधो को तू क्षमा नही करेगा?' बोल-कर वह फिर रो पडी।

" अब मेरे भी धैर्य का बाध टूट गया। उनके चरणो मे बैठ मैं भी रो पडा। मा की ममता बेटे को रोते न देख सकी। उन्होने मुझे खीचकर

अपने अक म समेट लिया। मरे मुख स रोते रोते सिफ एक ही वाक्य निकला—'एसा न कहो, मा एसा न कहो !

उन्होंने अपने आचल स मरे आसू पोछे और मुझे शात कराया। जब मैं पुन चलने को तयार हुआ तो उन्होंने कहा— बेटा, तू जाना चाहता है यह गाव छोडकर ! मैं तेरे रास्ते म रोडा नही बनूगी, जहा जाना चाहता है जा ! लेकिन एक बात का मुझे जवाब देता जा—तूने, अपने पिता क मरने म पहले उनके चरणो की सौगध लेकर उन्हें यह वचन दिया था कि तेरी मा जब तक जीवित है उसके भरण पोषण और निर्वाह की जिम्मेदारी तेरे ऊपर है। तू यह अच्छी तरह जानता है कि कैप्टेन ने यह वचन इसीलिए लिया था कि उनकी औलाद गुमराह हो चुकी है कही बुढापे म मेरी दुदशा न हो ! इसलिए मुझे भी अपने साथ लेता चल। जो भी रूखा-सूखा तू मुझे देगा, मैं उसी पर सतोष कर लूगी। जहा तक मैं समझती हू यदि तेरे दिल म इस मा के लिए कुछ भी ममता है तो तू मेरा त्याग कभी नही कर सकता।

'बोलकर वह चुप हो गइ। उनके शब्दो न मेरे पावो म बेडिया डाल दी। मैं उनके एहसानो से दबा हुआ था और मरते हुए एक इमान को वचन भी दे चुका था। मैं उनका त्याग न कर सका।'

'फिर ?" सरिता ने उत्सुक होकर पूछा।

मेरी फाइनल परीक्षा के चद दिन शेष रह गए थे। बोर्ड की फीस भी मैं जमा न कर पाया था। छात्रावास के कमरे मे फाइनल परीक्षा का फाम भरकर पसे के अभाव म अपने टेबिल पर छोडकर चला आया था। परीक्षा शुल्क जमा करने की तारीख बीत चुकी थी। सवाल दस-बीस रुपए की नही—लगभग साढे चार सौ रुपए का था। मैं चिता में पडा हुआ था।'

'तुमने पसो के लिए मा जी से नही कहा ? सरिता ने पूछा।

(1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)
, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

"नहा। कोई फायदा नही था, उनके पास पैसा बिल्कुल न था।"

"फिर, मैं परीक्षा की माहलत लेकर गाव से इलाहाबाद आया। एक लडके के जरिए मैंने अपन आने की सूचना शबनम के पास भिजवाई। वह उसी समय मरे पास आई और बाली—'तुम कितने लापरवाह हो सुनील! फाम क्या नही दाखिल किया। अब ता शुल्क जमा करने की तारीख भी निकल गई।'

" 'जानता हू, शबनम!

" 'तो जमा करके क्यो नही गए?

" 'सच बात तो यह है शब्बो कि मेरे पास पसे ही न थे।'

" 'तुम मुझे नही बतला सकते थे?'

" 'तुमसे पसा मागना, मरा फज था क्या?'

" 'मुझे दुख हाता है, सुनील! तुमने शबनम को अपना कहा।—लेकिन उस पर भरोसा नही किया! मरे हा या तुम्हारे—व पसे क्या बटे हुए थे? '

"मैं चुप रहा। वह सही रास्ते पर बोल रही थी। मुझसे कोई जवाब देते न बन पड़ा, तो उसी ने फिर पूछा—'अब क्या कराग?'

" 'किसी नौकरी की तलाश?

" 'नौकरी करोगे? परीक्षा नही दोगे?'

" 'कैसे दूगा परीक्षा जब फाम ही नही जमा कर सका? अब आते वष देखेंगे।'

' 'हूह जाते वष देखेंगे? सिफ दस दिन और बाकी हैं परीक्षा के—और धुन सवार है नौकरी की!

"वह कुछ रुकी और मेरी सूरत, मरे वस्त्र आदि का लक्ष्य करती फिर बोली—'और यह अपनी सूरत कैसी बना रखी है तुमने? दूसरे कपडे नहा हैं, क्या?'

'सचमुच कप्टेन साहब के मरने के बाद पसो के अभाव म मरी जिंदगी कुछ एसी ही हो गइ थी। मरे जवाब न देन पर वह फिर बाली —'अभी कही जा रहे हो ?

''हा, दनिक 'अमत प्रभात' के दफ्तर म !

" 'कोई विशेष काम है ?

' 'नौकरी के लिए बातचीत करनी है !'

' 'तुम्हारा दिमाग तो नही खराब हो गया ?'

' नही, शब्बो ! दिमाग मेरा बिलकुल दुरुस्त है। तुम मेरी हालत देख रही हो पसे के अभाव म परीक्षा का फाम दाखिल नहा कर सका, तुम्हें इसका भी पता है—और दूसरी बात जो तुम्ह नही मालूम है—वह है, गाव म यदि रुपए की व्यवस्था करके न भेजा तो मा भूख स अपने प्राण त्याग करेगी।

' 'लकिन यह सब हुआ कैसे ?'

पिताजी गुजर गए। उनका खून का बेटा आवारा बन चुका है यह तुम जानती ही हो !

" तो तुम क्या उनके बेटे नहीं हो ?

'नहा यह मेर उ होने मरते समय बतलाया। मुझे नदी की बहती धारा से लाकर उन्होंने पाला था। मरते समय मा की दख रेख का मुझसे उन्होंने वचन लिया है। अब तुम्ही बतलाओ शब्बो मैं क्या करू ? कहते-कहते मरी आखें भर आइ। वह मर और करीब आ गई और मर आसू पोछ सात्वना देती हुई बोली— सुनो, इन सबका कुछ पता नही था। अनजाने में मैंने तुम्हे बहुत कुछ कहकर तुम्हारा दिल दुखाया। मुझे माफ कर दो ! और मैं एक बहुत जरूरी काम से भी आई हू।

कौन सा काम ?

" यह मैं बाद म बतलाऊगी। पहल हाथ मुह धोकर जरा स्वस्थ हो

नाद (कविता सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हू (कविता सग्रह 1981)
अरघान (कविता सग्रह 1984)
, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

लो। अभी बाजार चलना है।'

"मैं बाथ रूम म चला गया। करीब पन्द्रह बीस मिनट बाद लौटकर आया तो वह बोली—'अभी खाना भी नही खाया होगा ?'

"'नही, सवेरे की गाडी से आज ही ता आया हू।'

"'ता चला, मैंने भी अभी कुछ नही खाया है। दोनो किसी होटल म खा लेंगे।'

"इस पर मेरा रूम पाटनर रवींद्र बोला— तुम लोग खाना यही से खाकर कही जाओ। मैं मेस मे ना थाली का आडर देकर अभी आता हू।'

"मैंन रवींद्र का रोका—क्योकि जानता था, मस का पिछला बकाया अभी जमा नही कर सका था। मेरे नाम पर वहा से खाना कभी नही आता।

"रवींद्र बोला—चिंता न करो, थाली मैं अपन गस्ट के नाम पर ला रहा हू और वह चला गया मस की आर।

"उसके जान के बाद नजनम बोली—'सुनील !'

"मैंन अपना सिर उठाकर देखा।

"तुमने गाव जाकर पढाई का बहुत सारा वक्त खा दिया। आज ही से इटकर पढन की ओर ध्यान दो। अभी मौका है।

"'लेकिन, मरा फाम ?'

"'उस मैंने जमा करा दिया है। जब तुम फाम भरकर उसे अपने टबिल पर छोडकर अचानक गाव चले गए तो रवींद्र ने आकर मुझ खबर दी और मैंन दूसरे ही दिन उस जमा करा दिया। मैंने पता लगा लिया है—करीब पाच छह सौ रुपए तुम्ह मेस, होस्टल और फीस आदि के जमा करन हैं। इतने ही करीब तुम्हारे कपडे पर लग जाएगे। फिर मा जी का इतजाम और तुम्हारा जेबखच—कितना बाम है तुम्हारे सिर पर, यह मैं समझती

हू। इसीलिए इस तुम अपने पास रख लो।

"मैंने देखा—वह एक चेक था, जिसमें उसने ढाई हजार रुपए भर थे। मेरी ओर बढ़ाती हुई बोली—'इस दफ्तर में तुम्हारे पर कोई एहसान नहीं कर रही हूं बल्कि तुम मर हो मैं तुम्हें दुख में नहीं देख सकती, इसलिए दे रही हू। मेरा जो कुछ है—तुम्हारा है और तुम्हारा जो कुछ है वह मेरा है—फिर इसमें एहसान जैसी कोई बात नहीं है। इसमें से एक हजार रुपए आज ही मा जी के नाम रवाना कर दो। जब तक किसी नौकरी में नहीं लग जाते, तुम्हारा खर्च मैं देती रहूंगी। और मा जी का पता मुझे दे दो। उन्हें हर महीने रुपए मिल जाएंगे।'

"शबनम!' मैं अवाक् रह गया उसकी बात पर। कुछ कहने ही वाला था कि बात काटकर वह बोली—'इसे जल्दी अपनी जेब में रखो। रवीन्द्र आ रहा है। मैं उसे यह नहीं मालूम होने देना चाहती कि तुम्हारे लिए कुछ कर रही हू। कहते हुए उसने चेक मेरी जेब में डाल दिया।

' फिर रवीन्द्र के आदेश पर खाना आया। हम दोनों ने वहां भोजन किया। भोजन के बाद रवीन्द्र से बाजार का बहाना कर बच चले गए।"

'सचमुच कितनी अच्छी थी मेरी बहन शब्बो!

उसे स्मरण कर सरिता की आंखें भर आईं। लेकिन उसने अपने को संभाला और बोली— आगे सुनाओ।

'इस तरह शबनम ने मुझे तीन महीने तक संभाला। इसी बीच मैं परीक्षा के बाद गांव गया। पता चला, कप्तेन के बेटे ने अपने हिस्से की जमीन जायदाद बेचकर हमेशा के लिए गांव छोड़ दिया। उनकी ... की समाज में काफी बदनामी हो चुकी थी। उससे शादी करने ... कोई तैयार नहीं था। अतः म ... के पास पहुंचा ... सामने शादी का प्रस्ताव रखा ... इनकार कर

लडके के घर वाले भी उसे अपने घर की बहू बनाने को राजी न थे। आखिर उसने आवेश मे आकर उस युवक की हत्या कर दी।"

"क्या कहते हो ? इतना साहस ।" सरिता अचभे मे आ गई।

"हा, आखिर उसे जेल जाने से बचाने के लिए मुझे हत्या का इलजाम अपने सिर लेना पडा।"

"तुमने हत्या का इलजाम अपने सिर लिया ?' सरिता विस्मित होकर बोली—"जो तुम्हे ही मिटाने पर आमादा थी, उसकी तुमने रक्षा की ? फिर तुम कसे बचे ?"

" वह युवक इलाके का नामी गुडा था और मैं अपने नेक चाल चलन के कारण इलाके मे प्रतिष्ठित होता जा रहा था। इलाके के हजारो लोगो ने पुलिस और अदालत दोनो जगह आवेदन किया—एक लडकी की इज्जत बचाने म वह धोखे से मेरे हाथ से मारा गया। इस तरह कुछ दिन की मुकदमेबाजी के बाद मैं बेदाग बरी हो गया।

" इस घटना के बाद मैं फिर इलाहाबाद गया। परीक्षाफल आया हुआ था। शबनम मेरे पास आई बधाई देने। मैं प्रथम आया था। शबनम के कहने से मैं दो चार दिन इलाहाबाद रहा। फिर नौकरी की तलाश म मुझे दिल्ली आना था। शब्बो ने ही मेरी यात्रा का प्रबध किया और मैं दिल्ली आ गया। दिल्ली आते ही मैं खूब चमका—साहित्य और पत्रकारिता दोनो ही क्षेत्रो म। पैसा मेरे कदमो मे आधी के आम-सा बरस रहा था। लेकिन दुर्भाग्य ने मेरा पीछा अभी भी नही छोडा था। कुछ दिनो बाद—बरसात की एक रात म जब मैं अखबार के लिए एक लेख लिख रहा था, किसी ने कमर मे घुसकर मुझ पर गोली चला दी।'

"तुम पर तुम पर गोली चला दी ?" सरिता सकते म आ गई।

" गोली साघातिक जगह पर लगी था। मेरी हालत काफी चिंताजनक थी। स्थानीय पत्रकारो और साहित्यकारो की भीड अस्पताल म

जमा हो गई थी। मुझे इन सबका कुछ पता नही था। सारे डाक्टर मुझे बचाने म ऐडी चोटी का पसीना एक किए हुए थे। मेरा आपरेशन हुआ। गोलिया निकाली गइ। हत्यारे ने तीन गोलिया चलाई थी। दूसरे इस घटना की खबर समाचार-पत्रो मे आ गई। हत्यारे ने गाली चलाने के बाद मेरे पास एक पत्र रख दिया था— मैंने अपना बल्ला चुका लिया कोइ गम नही!' दूसरी ओर इस समाचार के अखबार म छपते ही दिल्ली से बाहर के लोग भी भारी सख्या मे मुझे देखने पहुचे। मा जी, गाव के पच सरपच शबनम और वसत आदि सब लोग।

"मैं जब होश म आकर मा जी और शबनम आदि से बातें कर रहा था तो हत्यारे का वह पत्र लेकर पुलिस मेरे पास आई और उसने पूछा—'यह राइटिंग पहचानते हैं? यद्यपि मैंने देखते ही राइटिंग पहचान लिया, लेकिन यह राज मैं खोलना नही चाहता था। इसलिए पहचानने से इनकार कर गया। लेकिन पत्र को जब मा जी ने देखा तो वह तुरत बोली— यह राइटिंग तो मेरी '

"मैंने तुरत उनकी बात काट दी, क्योंकि भेद खुलने से कप्टेन की बेटी पकड ली जाती और मैं यह चाहता नही था।"

"तो तो क्या दिल्ली जाकर उसने तुम पर गोली चलाई? सरिता हक्का बक्का सुनील का मुख निहारने लगी।

सुनील आगे बोला—" फिर मैं कुछ चलने फिरने लगा तो शबनम ने एक दिन कहा—'मुझे और कितने दिनो तक इस प्रकार प्रतीक्षा करनी होगी?'

''बोलो क्या चाहती हो? मैंने पूछा।

' क्या न हम लोग कोर्ट मैरिज कर लें? शबनम बोली।

"मैंने उसे स्वीकृति दे दी और दिल्ली म ही कोर्ट मे हमारा विवाह हो गया। शबनम अब सुहागिन थी। क्या बताऊ, सच! कितना खुश थी

(सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)
, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

वह उस न्नि । ”

“मा जी ने कोई एतराज न किया ? क्या उन्हे उसके बारे में सब कुछ मालूम हा गया था ?” सरिता ने पूछा।

“हा, मा जी को सब कुछ मालूम हो गया था। उन्होंने ही एक रात जब शबनम उनके पर दबा रही थी, तो कहा—‘बेटी, तेरी जैसी एक भली सी बहू मिल जाती मेरे बेटे को तो मुझे कितनी खुशी होती !’

“ सच, मा जी !

“ ‘हा, री, मैं झूठ थाडे बोल रही हू। तू बनेगी मेरी बहू ?’

“ ‘मा जी मैं एक वेश्या की बेटी हू और जाति से मुसलमान।

‘ ‘देख शब्बो, जातपात तो मैं अब मानती नही ! रही वेश्या की बेटी की बात, तो वेश्या तेरी मा रही है। तू तो नहा है। तेरे भीतर तो मैं एक शरीफ इसान का खून देख रही हू।’

“ ‘तो क्या मैं मान लू कि मा ने मुझे बहू होने का आशीर्वाद दे दिया ?’

“ उनकी इस बात पर मा जी उठ बठी। उन्होने मुझे अपने पास बुलाया और बाली—बटा, मैंने आज तक तुमसे कुछ नही मागा, लेकिन आज इच्छा हुई है कुछ मागन की—बाल, देगा ?’

“ मैं सोचने लगा जाने क्या माग बठें मा जी ! मुझे चुप देखकर फिर बोली—‘हिम्मत नही हो रही है देने की ?’

“ ‘ऐसी बात नहीं है मा जी ! मागिए, क्या मागती हैं ?’

“ मरे पास आ।’

“ शबनम उसी तरह उनके पर दबाती रही। वह मन-ही-मन मुस्करा भी रही थी। मैं उसके हसने का आशय भाप न सका। मैं जब मां जी के पास बैठा तो उन्होने मरा और शबनम का हाथ पकडकर मिला दिया और बोला—बटा आज से यह मरे खानदान की इज्जत है, मरी बहू ! तू वान्

कर यह हाथ कभी नही छोडेगा।'

" शबनम नज्जा म लाल हा गई और उसन अपना मुह मा जी के आचल मे छिपा लिया। मा ने उसका सिर उठाते हुए कहा—'जा, जाकर कल कोट म तुम दोनो विधिवत पति पत्नी बन जाओ। मेरा आशीर्वाद तुम दोनो क साथ है।'

"सचमुच, मा जी, ऊचे विचार की नारी थी! सरिता बोली—'फिर ?

' हम उसी दिन कोट चले गए। शादी के दूसरे दिन मा जी गाव जाने लगी। उन्होंने शबनम स कहा वह उनके साथ गाव चली जाए। लेकिन शबनम एक बार अपनी मा से मिलकर यह खबर देना चाहती थी। और इसी उमग के साथ वह इलाहाबाद पहुची। शबनम ने जो सोचा था, उसकी मा पर इसका असर ठीक उलटा हुआ। वह शब्बा से भी वेश्यावत्ति करवाना चाहती थी। लेकिन शब्बा तयार नहा हुई। उसने सारा कच्चा चिटठा खोलकर मरे पास पत्र लिखा। और यह भी लिखा— यदि मरी जिदगी चाहते हो तो पत्र मिलते ही मेरे पास आ जाओ। मुझे पत्र मिला लेकिन एक दिन दर से। मैं इलाहाबाद के लिए रवाना हो गया।

'इलाहाबाद जब तक पहुचा सारा खेल खत्म हो चुका था। मरे वहा जाने म एक दिन पहले ही शबनम की मा ने उसकी नथ उतारने के लिए इलाहाबाद के नगर सेठ के साथ 20 हजार मे सौदा कर लिया था। उस रात शबनम क पास बचने का कोई रास्ता न था। अत म लाचार होकर वह अपनी साडी गले मे बाध छत के पखे से लटक गई अपनी इज्जत बचाने क लिए।'

हे भगवान! यह तो प्राणघातक ट्रेजडी हुई तुम्हारे साथ!'' कराह उठी।

शब्द (कविता संग्रह 1950)
उस जनपद का कवि हूं (कविता सग्रह 1981)
परधान (कविता संग्रह 1984)
नगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

सुनील बोलता रहा—'फिर तो मेरा दिल इतना टूटा इतना टूटा कि मैं अपनी ही परछाइ से घबराने लगा ।मुझे कुछ अच्छा नही लगता था। शबनम मेरी जिदगी थी। बचपन स लेकर जितनी भी त्रासदी भागता आया था, शबनम को पाकर सब भूल चुका था। लकिन क्रूर नियति को यह स्वीकार नही था कि मैं सुखी रहू उसने मेरी शब्बो को छीन लिया।

"अब ससार की भीड भाड मुझे बिलकुल बरदाश्त न होती थी, और इसीलिए इन सबसे बचने का मैं भागकर शिमला आ गया था उस एकात पहाडी इलाके म। लेकिन यहा आने पर वसत ने मुझे सूचना दी उसने मा की भी उनका गला घोटकर हत्या कर दी और फरार हो गई। वहा गई—किसी को पता नही आज तक।

"मा की भी हत्या कर दी?" सरिता फटी फटी आखो से देखने लगी।

"हा, यह भी एक विडबना हा थी। कहा तो मैं अपने को बचाने आया, लेकिन "

"लेकिन वहा भी तुम नहा बच सके तग करने को पहुच गई मैं!" बोलकर सरिता मुस्कराई।

'हा जब तुम पहले दिन नेहरू उद्यान मे आई और मेरी नजर पडी तो क्षण भर के लिए मैं अवाक् रह गया, यह देखकर कि मेरी शब्बो यहा कस ?'

'क्या कहत हो?' चौंक पडी सरिता।

'हा, मरु! तुम्हारे चेहरे और शब्बा के चेहरे म कोई अतर नहीं है और यही कारण था कि मैं पहले दिन तुम्हें देखकर चौंक पडा था पर तुरत ही खयाल आया—शब्बो अब यहा कहा? वह तो कब की दूसरी दुनिया को जा चुकी है। चेहरे की एकरूपता मुझे बरबस तुम्हारी ओर खीचती चली गई और आज भी मैं यही महसूस करता हू कि मेरी शब्बो

ही मरे जीवन मे आज सरु का रूप धारण कर आइ है।

"यही है मेरा अतीत, मरी कहानी, जिसे तुमन कइया बार मुझस पूछा और मैं हर बार टालता रहा, इसलिए नही कि मैंन कुछ बुरा किया था, बल्कि इसलिए कि जब जब व सब बीती घटनाए मुझे याद आती हैं तो मैं रो पटता हू। मेरा दिल हाता है मैं कहा ऐमी जगह चला जाऊ जहा मेरा साया भी मुझे न पा सके।'

बोलकर सुनील चुप हो गया। किंकर्त्तव्यविमूढ रह गई सरिता उस समय जब उसन देखा सुनील सचमुच रो रहा है। उसन उसके आसू पोछते हुए कहा—"सुनो, तुमने मरे मे शब्बो बहन का प्रतिबिंब पा लिया न? फिर अपन इन आसुओ को रोक लो! इन आसुओं को पोछन के लिए ही मैं तुम्हारे जीवन मे आई हू तुम्हारी शब्बो तुम्हारी सरु!"

सुनील गुमसुम उसका मुख निहारन लगा। कुछ दर बाद उस मुख से बोल फूटे—"सरु, एक वचन लोगी?'

'बोलो! तुम ऐसा क्यो बोलत हो? वचन तो क्या, तुम मेरा जीवन माग देखो! तुम्हारा आदेश ही मेरे लिए बहुत है कहो, क्या बात है?'

"कहना यही है सरु मा चद्रभागा ने मुझे भेजा ससार म इन काटो की राह गुजरने के लिए भविष्य मे यदि मेरे जीवन म कोई एसा हादसा हो जाए तो समझ लेना मैं कैप्टेन विभूति नारायण की बेटी के हाथा

वह अपना वाक्य पूरा न कर सका कि उसके मुख पर हाथ रखती हुई सरिता बोली—' मत कहो एसी बात मत उचारो ऐसे अपशकुन! यदि किसी दिन ऐसा कुछ हो गया तो मैं कही की न रहूगी!'

"नही, सरु! वह बहुत खतरनाक है सचमुच यदि ऐसा कुछ हुआ तो तुमसे बस यही प्राथना है कि मा चद्रभागा के इस बेटे की उनके ही तट पर समाधि खडी करना नासिक म।'

शब्द (कविता सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
अरघान (कविता संग्रह 1994)
', सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

"कौन है कप्टन की वह बटी, जिसके कारण तुम भयभीत हा ? मैं एक नागिन का फन कुचलना अच्छी तरह जानती हू।"

"मुझे डर अपने लिए नही है मरु ! मैं डरता हू तुम्हार लिए ! वह जहरीली नागिन किसी दिन तुम्हें न डस ले !"

"तुम नाम तो बतलाओ उसका।"

"सुनोगी घबराओगी तो नही ?'

"इसमे घबराने की क्या बात ?

"हो सकता है न भी घबराओ तब यह जरूर है कि मरी बात पर तुम्हें यकीन नही होगा ! '

"क्या, अब तक तुमन जो कुछ सुनाया उस पर यकीन नहा किया क्या ? वैस ही आगे भी यकीन करूगी !"

"अच्छा तो सुनो, कैप्टेन विभूति नारायण सिंह की बटी तुम्हारी वही प्रिय सहली है, जिसने कुछ दिन पहले ही सिफ रुपए के लोभ म मशहूर कवि रजनीश की हत्या की और बबई से फरार हो गई।"

"किसकी बात कर रह हा, रजनी की ? '

"हा, रजनी की वही है कप्टन की बेटी। उसका भाई अनिल आज भिड-मुरना के जगलो में कुख्यात डाकू सरदार बना घूम रहा है। कानून को इन दोना भाई-बहना की तलाश है।'

"काश, यह राज तुमने मुझे पहल बतला दिया होता तो !'

'ता क्या करती ?"

"अब तक रजनी सीखचा के भीतर होती !'

"कैसे ? सुनील आश्चय से बाला।

'कवि रजनीश की हत्या के बाद रजनी मरे घर आई थी। चाचा जी ने मुझसे उसका परिचय भी पूछा, लेकिन अपनी सहेली के भविष्य का खयाल कर मैंने चाचाजी का उसका नाम बदलकर परिचय दिया। फिर

चाचाजी पूना चले गए । मैंने उसकी सुरक्षा का खयाल कर सोचा, तुम्हारे पास शिमला पहुचा दू— लेकिन जब उसका मैंने तुम्हारा नाम लेकर अपने सबधो का वास्ता दिया तो वह हसकर टाल गई और बोली, मुझे तुम बबई की सीमा से बाहर करा दो । मैं इलाहाबाद जाऊगी अपने भाई के पास लेकिन अब समझ म आया कि वह शिमला इसीलिए नहा गई, क्योकि वहा पर तुम हो ।'

तुमने बहुत भूल की सरु ! काश, तुमने चाचाजी को उसका ठीक ठीक परिचय द दिया होता तो आज समाज का कितना बडा आतक दूर हो गया होता ! खर, अब आगे सावधान रहना !'

इस तरह बातें करते करते भोर कब हो आई दोनो म से एक को भी पता न चला । दोनो होश म आए तब, जब सामने क गिरजे से चार के घटे बजे और तुरत ही मुरगे की पहली बाग उनके कानो मे पडी ।

(.......... 1980)
का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)
सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

तेरह

रात से ही पानी वरस रहा था। श्याम भवन की रम्य वाटिका मे पेड पौधे वर्षा की बूदो से अठखेलिया कर रहे थ। सुनील नहा-धोकर, कपडे बदल नाश्ते के टेबिल पर बठ चुका था। नौकरानी एक बार पूछकर चली गई थी। कुछ देर वाद फिर आई और पूछा—"नाश्ता लाऊ, वाबूजी ! '

"सरु कहा है ?"

'मेम साहब वाथरूम मे हैं। उन्हाने ही कहा है—बाबूजी को नाश्ता करा दो, मुझे कुछ देर लगेगी।'

"ठीक है, उसे आ जाने दो। साथ ही नाश्ता करेंगे। फिलहाल एक कप चाय दे जाओ।"

"जी, बहुत अच्छा !"

कुछ दर वाद चाय आ गई। सुनील धीरे धीरे उसकी चुस्की लेने लगा। करीब आधा घटे बाद सब तरह से तैयार होकर सरिता सुनील के पास आई और बोली—' तुमने अभी तक नाश्ता नही लिया ?"

"तुमने भी तो कुछ नही लिया।"

'मैंने नौकरानी को बोल दिया था, मुझे दर लगेगी। वह तुम्ह नाश्ता करा द।'

"कमी बात करती हो ? दो ही तो प्राणी हैं घर म। फिर वारी-वारी मे नाश्ता करना, वारी-वारी से खाना अच्छा लगता है क्या ?

आओ, बैठो, साथ ही नाश्ता करेंगे ।"

'फिर कमरे मे ही बैठेंग। इतना बडी डाइनिंग टेबिल और दो आदमी नाश्ता करने वाले—अच्छा नहा लगता ।"

'कोई खास बात है क्या ?"

'हा है ! सरिता ने तेवर चढा लिए ।

क्या खता हो गई सरकार ? '

"बहुत बडी ।'

'कुछ बोलोगी भी !

"कमरे म चलो तो बतलाती हू ।"

और सुनील उठकर उसके पीछे पीछे कमर म चला गया। सोफे की ओर इशारा करती हुई सरिता बोली—"बठो !'

'नौकरानी ने सवेरे हम एकसाथ देख लिया था । '

'तो इसम कौन सी बडी बात हो गई ? उसको मालूम नहा है क्या ?'

'मालूम ता सब कुछ है, लेकिन दुनिया की निगाह म हम अभी विधिवत पति पत्नी नही हैं । लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?'

'क्या कहगे ? साफ साफ बोल देना । '

'सचमुच हो बडे भोले, दुनिया की रीति-रिवाज का ता कुछ पता नही, जो मन मे आता है बक देते हो ! कितना मजाक कर रही थी, सवेरे कुछ पता है ?"

क्या कहती थी ? '

"कह रही थी—बिटिया का मुखडा आज चमक रहा है चमकना ही चाहिए राजा बाबू आए हैं न !"

"फिर ?

'फिर क्या, मुझे एकदम शर्म आ गई। बडी मुश्किल से उसे डाट-

हैं।

जनपद का कवि हू (कविता सग्रह 1981)
(कविता सग्रह 1984)
गर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

कर चुप कराया।'

"और कुछ तो नहीं कहा ?'

"और कहेगी भी क्या ? तुमने किया ही क्या, कि कहेगी ?"

"चलो गनीमत है, मामला यहीं रफादफा हो गया, नहीं तो, चाचाजी को पता चलता तो वह क्या सोचेंगे ?'

"चाचाजी तो बाद में सोचेंगे—पहले तुम आईना तो देखो।'

"क्या हो गया मुझे ?"

"देखो भी तो सही !" और उसने दर्पण उसके हाथ में पकड़ा दिया।

सुनील दर्पण लेकर अपना चेहरा देखता बोला—"देख तो रहा हूं!"

"कुछ दिखाई नहीं देता ?'

"नहीं तो।'

"अपना चेहरा देखो।'

सुनील ने फिर से गौर से अपना चेहरा देखा। वह चौंककर बोला—"अरे, बाप रे! यह लिपस्टिक ?'

"इसीलिए कमरे में लाई। बाथरूम में शीशा लगा हुआ है, कम-से-कम देखकर तो स्नान किया होता। गनीमत हुई, नौकरानी ने नहीं देखा, नहीं तो !'

"नहीं तो क्या ?"

"अब छोड़ो भी ! यह रूमाल लो और गीला कर यहीं रगड़कर साफ कर लो। तब तक मैं नाश्ता लाने के लिए कह आती हूं।" और उसकी ओर देख सरिता मुस्कराती हुई बाहर चली गई।

कुछ देर बाद जब वह लौटकर आई तो सबसे पहले उसने सुनील को देखा। सब कुछ चुस्त-दुरुस्त था। उसने नौकरानी को आवाज दी।

आओ, बैठा, साथ ही नाश्ता करेंग।"

'फिर कमरे म ही बठँग। इतना बडी डाइनिंग टेबिल और दो आदमी नाश्ता करने वाले—अच्छा नहा लगता।"

"कोई खास बात है क्या ?'

'हा है! सरिता ने तवर चढा लिए।

क्या खता हो गई सरकार ?'

'बहुत बडी।"

'कुछ बालोगी भी!

"कमरे म चलो तो बतलाती हू।

और सुनील उठकर उसके पीछे पीछ कमरे म चला गया। सोफे की ओर इशारा करती हुई सरिता बोली—"बैठो!'

नौकरानी ने सवेरे हम एकसाथ देख लिया था।"

'तो इसमे कौन सी बडी बात हो गई ? उसको मालूम नहा है क्या ?'

'मालूम तो सब कुछ है, लेकिन दुनिया की निगाह म हम अभी विधिवत पति पत्नी नहा हैं। लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?"

क्या कहेंगे ? साफ साफ बोल दना।

'सचमुच हा बडे भोल, दुनिया की रीति-रिवाज का तो कुछ पता नहीं, जो मन म आता है बक देते हो! कितना मजाक कर रही थी, सवेरे, कुछ पता है ?'

'क्या कहती थी ?'

"कह रही थी—बिटिया का मुखडा आज चमक रहा है चमकना ही चाहिए राजा बाबू आए हैं न!"

'फिर ?"

, क्या, मुझे एकदम शम आ गई। बडी मुश्किल से उसे डाट-

का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
(कविता संग्रह 1984)
सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

कर चुप कराया।

"और कुछ तो नही कहा ?'

"और कहेगी भी क्या ? तुमने किया ही क्या, कि कहेगी ?"

"चलो गनीमत है, मामला यही रफादफा हो गया, नहीं तो,चाचाजी को पता चलेगा तो वह क्या सोचेंगे ?

"चाचाजी तो बाद मे सोचेंगे—पहले तुम आईना तो देखो।"

"क्या हो गया मुझे ?"

"देखो भी तो सही ! और उसने दर्पण उसके हाथ में पकड़ा दिया।

सुनील दर्पण लेकर अपना चेहरा देखता बोला—"देख तो रहा हू।"

"कुछ दिखाई नही देता ? '

"नही तो। '

"अपना चेहरा देखो।

सुनील ने फिर से गौर से अपना चेहरा देखा। वह चौंककर बोला—"अरे, बाप रे ! यह लिपस्टिक ? '

"इसीलिए कमरे मे लाई। बाथरूम मे शीशा लगा हुआ है, कम-से-कम देखकर तो स्नान किया होता। गनीमत हुई, नौकरानी ने नही देखा, नही तो !"

"नही तो क्या ?"

"अब छोडो भी ये रूमाल लो और गीला कर यही रगडकर साफ कर लो। तब तक मैं नाश्ता लाने के लिए कह आती हू।' और उसकी ओर देख सरिता मुस्कराती हुई बाहर चली गई।

कुछ देर बाद जब वह लौटकर आई तो सबसे पहले उसने सुनील को देखा। सब कुछ चुस्त दुरुस्त पा उसने नौकरानी को आवाज़ दी।

आदेश होते ही नाश्ता टेबिल पर आ गया और दोनों खाने में व्यस्त हो गए। नौकरानी जब दोबारा पानी लेकर आई तो उसने मसखरी करते हुए कहा— 'बाबूजी एक बात पूछूं ?

सुनील उसकी ओर देखने लगा।

'मेरी बिटिया को कब ले जा रहे हो ? '

नौकरानी की इस बात पर सुनील मुस्करा पड़ा। सरिता फिर लज्जा से लाल हो उठी। उसने उसे डांटते हुए कहा— 'तू यहां से जाती है, या नहीं ?'

"कुछ भी होय हमार बिटिया है चतुर एहमा तनिको संदेह नाहीन है हजार में एक छांटि के चुनिस है ! बोलकर वह हंसती हुई कमरे से भाग खड़ी हुई।

"देखा तुमने,' सरिता बोली—"कितनी शरारती है !'

सुनील हंसने लगा। सरिता ने उसकी ओर देख मुस्कराकर कहा— 'यही हंसी मैं देखना चाहती थी तुम्हारे होंठों पर ! जाने कितने दिनों बाद तुम आज खुलकर हंस रहे हो ! '

'सच, सरु ! मैं आज बहुत खुश हूं। शब्बो की मौत के बाद, यानी दो वर्ष से कुछ ऊपर ही हुए होंगे, तब आज पहली बार तुम्हारे सामने हंस रहा हूं। सचमुच बड़ा खुश हूं।'

'खुश हो न ? तुम्हें खुश देख मैं भी खुश हूं ? अब कभी अपने चेहरे को गमगीन न होने देना। जब कभी देखना, मन नहीं लगता है, मेरे पास चले आना ! आओगे न ? वादा करो ! '

"जरूर आऊंगा सरु !

'झूठी तसल्ली तो नहीं दे रहे हो ?

"नहीं !'

"तो ठीक है एतबार कर लिया तुम्हारे कहने का !'

का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
(कविता संग्रह 1984)
सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

"तो मुझे विदा दे रही हो ?"

"इतनी जल्दी ?" सरिता ने आश्चर्य में पूछा।

सुनील ने खडे होते हुए कहा—"हा, देखो न कितने दिन हो गए यहा पर। ढेर सारे काम पडे हुए हैं।

सरिता की आखें भर आइ! सुनील ने उसके आसू पोछते हुए कहा—"रो नही, सरु! जल्दी आऊगा।'

सहानुभूति के स्वर इसान के मन को और भी द्रवीभूत बना देते हैं। उसकी बिदाई का इगित मिलते ही सरिता जोर से फूट पडी और अपना सिर सुनील की छाती पर रख रोती-रोती ही बोली—"नही नही, अभी मत जाओ इतनी जल्दी मत जाओ!" कहती कहती वह और भी फफक पडी।

सुनील ने उसे समझाते हुए कहा—'सरु, सुनो तो, मैं कहा हमेशा के लिए जा रहा हू! जल्दी ही आ जाऊगा।"

लेकिन सरिता का रुदन थमने का नाम नही ले रहा था। उसकी रोने की आवाज बरामदे मे काम कर रही बूढी नौकरानी के कानो मे पडी। सरिता की मा के मरने के बाद उसने ही मा का फर्ज निभाया और पाल-पोसकर उसे इतना बडा किया। वह उस घर की नौकरानी ही नहा, सरिता की मा भी थी। उसकी रुलाई सुनकर भागी भागी कमरे मे गई। देखा—सुनील की छाती म अपना सिर छिपाए सरिता जोर-जार से रो रही है और सुनील उसे चुप कराने का प्रयत्न कर रहा है। पहुचते ही नौकरानी ने सरिता के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"क्या हुआ, बिटिया! शाति से काम ले, बेटी! क्या हुआ? क्या इतना अधीर हो रही है ?"

रोती रोती सरिता अब नौकरानी की बाहो म आ गई और सिसकती हुई बोली—' इन्हें रोको, मा जी! इन्हे रोको!'

"क्या हुआ बाबूजी ? कहा जा रहे है आप ?"

'मा जी, करीब एक महीना होने जा रहा है, यहा आए। ढेर सारे काम पडे हुए है। कई बार मने जाने की कोशिश की, लेकिन यह लडकी इतनी पागल है कि मेरे जान का नाम सुनते ही रोने लगती है। इसके आसू मैं देख नही सकता—अब तुम्ही बतलाओ, मा जी, मैं क्या करू ? कैसे समझाऊ इसे ? कुछ तुम्ही समझाओ न !'

बूढी नौकरानी ने अपने आचल से सरिता के आसू पोछते हुए कहा —'रो नही, बेटी ! बाबूजी तुझे छोडकर तो नही जा रहे हैं। काम निबटाकर जल्दी आ जाएगे !'

"नही, मा ! नही ! ये जल्दी नही आएगे ! जाने क्यो मेरा दाहिना अग फडक रहा है अपशकुन की इस घडी म इन्हें कैसे विदा करू ?'

'अरी, पगली ! तूने कैसे जान लिया मैं जल्दी नही आऊगा ? मैं यह कैसे भूल सकता हू कि तूने मेरे बहते आसू पोछे फिर कैसे समझ रही है कि मैं तुझे भूल जाऊगा मैं जल्दी से जल्दी आने की कोशिश करूगा, मुझ पर भरोसा रख।"

'हा, बाबूजी ! जल्दी लौटना। देखो, बिना मा-बाप की बच्ची है। इत्ती सी थी, तब से मैं ही इसकी मा हू धाय हू, नौकरानी हू—जो कुछ समझा सब मैं ही हू। इतनी बडी हवेली म दिन भर अकेली पडी रहती है। जब स तुम इसके जीवन म आए बिटिया को कितना खुश देख रही थी। बाबूजी की भी यही लालसा है तुम दोनो की जल्दी स शादी कर दें और फिर सारा कारोबार तुम्हें सौंपकर इस झमेले से मुक्ति पा लें।"

'जल्दी आऊगा, मा जी ! मैंने कहा न !

"जाओगे न ? सरिता फिर आकर उसकी छाती से चिपक गई। अब नौकरानी के रहने पर भी उसे कोई सकोच न हुआ ठीक ही तो है

ने आगे सकोच भी कैसा ?

का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
(कविता सग्रह 1984)
, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

"मैं तेरे बिना खुद कही नही टिक सकता, सरु ! विश्वास करो, जल्दी आऊगा।"

"ता जाने दे, बेटी ! बाबूजी को कितनी बार हो गया बालते—जल्दी आएगे।"

"अच्छा मा, इनका सामान ठीक कर दा। और हा, रास्ते म भाजन के लिए भी कुछ रख देना।"

इस प्रकार भरे भरे नयनो से विदा किया सरिता ने। वह बस म बठा और, चल पडा जेल की ओर। 'श्याम भवन' और उसके गेट पर खडी सरिता नजरो से ओझल हो गई थी, लेकिन उसकी स्मति अभी भी साथ साथ चल रही थी। जेल की चारदीवारी आ गई। कई बार आने जाने के कारण जेल कमचारियो से उसके सम्बन्ध अब काफी मधुर हो गए थे। इसीलिए इस बार उसे वसत स मिलने म किसी तरह की कोई दिक्कत नही हुई। उसके कई बार के आने जाने से वसन्त के दिल मे भी आशा का सचार हो चला था और वह सोच रहा था कि सुनील के प्रयास से उसकी मुक्ति जल्दी हो जाएगी। सुनील न भी उस आशा दिला रखी थी कि जस भी हो, वह उसे सीखचो से बाहर निकालकर ही दम लेगा।

सुनील उससे मिलने आया है, यह खबर कुछ कदियो ने वसन्त को कुछ पहले ही द दी थी। वह तयार ही हो रहा था गेट पर आन के लिए कि इतने म ही बुलावा भी आ गया। जेल जमादार के साथ वह गट पर आया। दखत ही वह सुनील से बोला—

'मेरे कारण तुम्हें कितनी परेशानी उठानी पड रही है ! दोस्त, कितना भी आभार व्यक्त करू, कम है।"

"यह तो मैं तुमसे पहली बार सुन रहा हू कि मैंने कोई प्रशसनीय काय किया है।' सुनील बोला।

भाव विभोर हो वसन्त ने जवाब दिया—"तुमने इस ससार म किसी

वस्तु का मूल्य नही समझा। काई प्रलाभन तुम्हारे कदमो को रोक नही सका, दोस्त ! यह साहस, यह धय, एसा अनुपम गुण बिरला ही हासिल कर पाता है। इसम दो राय नही तुम इसानियत से भी ऊपर उठ चुके हो।"

"एसी प्रशसा न करो कि मैं फूलकर गुब्बारा बन फूट पड़ू। अच्छा अब मुझे जाने दो—ईश्वर ने चाहा तो इस बार जब आऊगा तो तुम्हें यहा से साथ लेकर ही जाऊगा।'

प्रसन्नता से वसत मद-मद मुस्करा पडा। सुनील उमस हाथ मिलाकर वापस लौटा। वह तजी स हाईकोर्ट की ओर बढा। आज बहस और फसले का दिन था। उसके हाथ मे थी वसन्त के कस का फाइलो की नकल।

बहस शुरू होन से पहले उसने वकील स वसत के छुटकारे के बारे म मशवरा किया। वकील ने कहा— देखो, भई ! वैस सारे सबूत वसत के खिलाफ हैं। छूटन की उम्मीद कम ही है। फिर भी हम अपनी ओर स बहस म कोई कसर नही उठा रखेंगे। वसत की मुक्ति एक ही बात पर निभर है, यदि कोई यह कबूल कर ले कि कार का अपहरण उसने किया है तो वसत उसी दम छूट सकता है। लकिन कोई कबूल करेगा ही क्यो ? कौन ऐसा चाहेगा कि वह दूसरे को जेल स निकालने के लिए, खुद उसकी जगह जेल म जाय और दो वष तक कारावास दड भोग ?

"क्या ऐसा मुमकिन है ? सुनील ने पूछा।

'हा, यह मुमकिन है। लेकिन तुम एसा क्या पूछ रहे हो ?' वकील बोला।

'फिर तो असली अपराधी मिल गया, वकील साहब ! सुनील ने पूछा।

"कौन है वह ? कहा है ?"

'मैं हू असली अपराधी। उस समय ता लोभवश मैंन यह काय कर

जनपद का कवि हू (कविता सग्रह 1981)
(कविता सग्रह 1984)
, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

लिया, लेकिन बाद मे एक बेगुनाह के जेल जाने पर मुझे अपने किए पर पछतावा होने लगा।'

"तो ठीक है, यदि तुम अपना जुर्म कबूल करते हो तो वसंत की मुक्ति आज संभव है। अदालत खुलने दो। तब तक मैं कागजात तैयार कर लेता हू।" बोलकर वकील ने मुंशी को संबंधित मसविदा तैयार करने को कहा।

वकील को इस बात पर विश्वास नहीं था कि सुनील असली अपराधी है, क्योंकि इतने दिनो से वही वसंत की अपील का केस लड रहा था। कभी तो उसने एक बार ऐसा संकेत नहीं दिया था। उसने बडी आत्मीयता से पूछा—"सुनो, एक पराये व्यक्ति के लिए तुम यह कुरबानी क्यो दे रहे हो? मुझे अच्छी तरह से मालूम है, तुमने कार का अपहरण नहीं किया। यह तुम सिर्फ वसंत को बचाने के लिए कर रहे हो। लेकिन क्यो?'

वकील की बात पर सुनील गंभीर हो उठा। कुछ देर सोचते रहने के बाद बोला—'वकील साहब, मेरा जीवन तो बस ही पवन चक्की के समान बन चुका है। जिधर हवा ले जाती है उधर ही चला जाता हू। लेकिन मेरा दोस्त, जिसका जीवन अभी तक एक किनारे पर स्थिर था, वह भी इसी हादसे का शिकार हो, मैं यह बरदाश्त नहीं कर सकता। मैंने उसे जेल से बाहर निकालने का वादा किया था। अब परिस्थितियो से घबराकर यदि पीछे हट जाता हू तो यह मेरी कायरता ही होगी। इसके अलावा अब कोई रास्ता नहीं है कि मैं सारा आरोप अपने सिर ले लू।"

"तुम्हारी इच्छा।" कहने को तो वकील ने कह दिया, लेकिन मन ही मन वह भी उसके इस त्याग पर चकित और विस्मित होने के साथ साथ परेशान भी था। उसका दिल इस बात के लिए प्रस्तुत नहीं था कि एक बेगुनाह झूठमूठ का जुर्म कबूल कर जेल में जाए। लेकिन सुनील की जिद

के आगे उसे झुकना ही पडा। साथ ही सुनील के आग्रह करने पर उसने यह वचन भी दिया कि उसकी खबर कभी भी श्यामलाल जी को नही मिलने पाएगी कि सुनील ने ऐसा किया, नही तो उनके मन म बहुत बडी ठेस पहुचेगी।

अदालत का समय हुआ। न्यायाधीश आकर अपने आसन पर विराजमान हो गये। अदालत का कटघरा विपक्षियो से खचाखच भरा था। बसत का वकील सुनील को लेकर न्यायाधीश के सामने पहुचा और उसका इकरारनामा पेश कर दिया। मजिस्ट्रेट ने उसे गौर से देखा। उसे बडा अचम्भा हुआ। उसके जीवन म शायद ही कभी कोई अवसर आया हो जब किसी ने उसके सामने आकर इस तरह खुदही अपना अपराध स्वीकार किया हो। उसने वकील से ही पूछा—'कौन है सुनील ?'

सुनील उस समय वकील के पीछे खडा था। अपना नाम पुकारे जाते ही वह न्यायाधीश के सामने आ गया और बोला—'हुजूर, मेरा नाम है सुनील।'

'तो तुम स्वीकार करते हो कि कार के अपहर्ता तुम हो ? सोचकर जवाब जवाब देना। कही ऐसा तो नहो कि यह किसी के दबाववश बोल रहे हो ?'

'नही हुजूर ! मैं किसी दबाववश नही बोल रहा हू। कार का अपहरण मैंने ही किया था। मैं अपना जुर्म कबूल करता हू।

उसके इकरारनामे पर मजिस्ट्रेट ने हस्ताक्षर कर अपना निर्णय सुनाया—' देसाई काटन मिल के कार अपहरण के केस म असली मुजरिम सुनील ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है, इसलिए अदालत का फसला है कि उस अपहरण के अभियोग म गिरफ्तार कर दो वष के लिए जेल भेज दिया जाए और निर्दोष भूतपूर्व मिल प्रबधक बसतकुमार को आज ही जेल से मुक्त कर दिया जाए। न्यायालय का आदेश

जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
(कविता संग्रह 1984)
५ सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

इसी समय से लागू समझा जाए।"

न्यायाधीश का आदेश होते ही सुनील को बन्दी बना लिया गया और अदालत के फैसले की नकल तत्काल जेल अधिकारियों के पास उचित कार्यवाही के लिए भेज दी गई।

अदालत के इस निर्णय का समाचार वसंत के विरोधियों को मिला। उन्होंने इसकी सूचना तुरंत मिल मालिक को दी। मिल मालिक को वसंत की खरी-खरी बातें अभी भी याद थीं। वह उसे अपने रास्ते का कांटा समझ रहा था। इसीलिए उसे जब उसके छूटने का समाचार मिला तो एकदम बौखला पड़ा। उसने विरोधी गुट के कुछ गुंडों को इशारे में समझा दिया कि वह जेल से निकलने के बाद मेरी निगाह में कभी न आने पाए। अतः इस कांटे को हमेशा के लिए रास्ते से हटा ही दिया जाए।

बड़ों का इशारा ही काफी होता है और फिर इनके टुकड़ों पर पलने वाले लावारिस कुत्तों का कुछ काम तो चाहिए, नहीं तो इन कुत्तों को पेट भरने के लिए हराम की रोटी का टुकड़ा मिलेगा भी कहां से! सेठ का इशारा पाते ही वे सेंट्रल जेल के इर्द गिर्द चक्कर काटने लगे वसंत के छूटने से पहले ही।

अदालत का आदेश जेल अधिकारियों के पास पहुंचा। उन्होंने अविलंब आदेश की तामील की। वसंत को तुरंत जेल-बैरक से बुलवाया गया। जेलर ने उसकी मुक्ति की खुशखबरी सुनाई। सुनकर उसका मन प्रसन्नता से थामो उछल पड़ा। उसने सोचा—मेरी प्रतीक्षा में मेरा मित्र सुनील बाहर खड़ा होगा। कार्यवाही की खाना पूर्ति होते ही वह जेल-गेट से बाहर निकला। जेलों के भीतर अधिकांश कुप्रबंध ही मिलता है। वैसे कागजों में, भारत का हर जेल आदर्श जेल है, लेकिन सच्चाई की ईमानदारी से जांच कराई जाए तो उसके अन्दरूनी नरक का पता चल जाता है। इस नारकीय व्यवस्था के कारण ही जब वसंत बाहर निकला तो वह हर तरह

से अस्त व्यस्त दिखा। उसके सिर के बाल लबे लबे और बिखर हुए थे। दाढ़ी बढ़ी हुइ थी और शरीर के कपडे एकदम जीण शीण हो चले थे।

बाहर आकर उसने सबसे पहले खुले आकाश के नीचे खडे होकर अपन चारो ओर देखा। उसकी निगाहें खोज रही थी अपने दोस्त सुनील को। लेकिन सुनील होता तब तो दिखाई देता। सुनील ने उसके साथ अपनी दोस्ती का फज निभा दिया था उसने वादा किया था—वसत को जेल की चारदीवारी से बाहर निकालन का, आज अपनी इज्जत—अपनी आन सब कुछ दाव पर लगाकर उसने अपना वादा पूरा कर दिया था। रही उसके आकर वसत को लेने की बात नही आ सका तो यह उसका कुछ बहुत बडा गुनाह नही कहा जा सकता वसत कोई बच्चा तो था नहीं! बबई की गली-गली स वह परिचित था अकेल भी सफर कर सकता था।

निराश होकर वह अकेले ही शहर की ओर चला। सेठ के गुर्गों को कुछ शक हुआ वे तत्काल उसकी ओर लपके। वसत न दूर स ही उन्हें अपनी ओर आते देख लिया था वे उसको मिल के अपन दोस्तो के लोग नही दिखे उसे भी कुछ कुछ सदह हुआ। कही ये लोग मेरे विरोधियो द्वारा तनात हत्यारे गुडे न हो! यह विचार आते ही वह सभल गया।

गुडो न आते ही पूछा—"आप जेल से आ रहे हैं?"

"जी नही। मैं अपनी बकरी की तलाश म इधर आया था।"

"लगता तो ऐसा है, जसे जेल से आ रहे हो? ये कपडे चेहरे की दाढ़ी और लबे-लबे बाल!"

"बाबूजी गरीबो के कपडे, उनके दाढी बाल होगे भी कसे?"

"क्या नाम है तुम्हारा?"

"जी, रजन!"

और बोलकर वह आगे बढ गया। लकिन सेठ के पालतू भेडियो ने

जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
(कविता सग्रह 1984)
र, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

सदेहवश अभी भी उसका पीछा नहीं छोडा था। वे अच्छी तरह तसल्ली कर आश्वस्त हो जाना चाहते थे। वसत भी उनके इरादे को भाप चुका था। इसीलिए उन्हें धोखा देने को जब कोई छोटा मोग बच्चा या सामान्य व्यक्ति उसे दिखाइ देता तो वह उनसे पूछता—'भाई साहब, आपका इधर कही काई चितकबरी बकरी जाती हुई दिखी ?

राहगीर नकारात्मक सिर हिला देता तो फिर वह किसी बच्चे से पूछता—' बटे, इधर कही कोई चितकबरी बकरा तुम्ह दिखी ?"

लडका जवाब दे देता—"नही, मुझे तो नही दिखी।'

"तुम्हारी बकरी खो गई है क्या ?" बच्चा पूछता।

"हा, वटे ! मेरा छोटा बच्चा चराने आया था। बच्चा तो लग गया वहा खेलने मे और बकरी निगाह से ओझल हो गई। सवेर मे परेशान हो रहा हू। अभी तक कही पता नही चला।'

उसकी बातें कुछ इसी तरह की परेशानी के लहजे मे निकल रही थी कि गुडो का पूरा विश्वास हो गया कि सचमुच ही वह कोई बकरीवाला ही है और वे पीछा करना छोड, पुन जेल की ओर मुड गए।

उनके जाते ही वसत ने राहत की सास ली। उसने सबसे पहले अपना हुलिया ठीक करने की सोची। जिस समय वह जेल मे आया था, उसकी जेब म कुछ रुपए भी थे। तलाशी के समय जेल अधिकारियों ने वे पैसे ले कर उसके नाम से जेल आफिस म जमा कर रखे थे। जेल मे छूटते समय वह रकम उस वापस मिल गई थी।

वह सबसे पहले एक नाइ की दुकान मे गया और अपने दाढ़ी-बाल साफ कराये। फिर रेडीमेड कपडे की दुकान स एक जाडा पॅट शर्ट खरीदा और उन्हें लेकर एक म्यूनिसिपिल पार्क मे चला गया। वहा सरकारी नल चालू था। माली को कुछ पैसो का लोभ देकर अच्छी तरह स्नान किया। फिर कपड बदले। होटल में आकर खाना खाया और निकल ?

नौकरी की तलाश म, क्योंकि जीविका के लिए उसका नौकरी करना जरूरी था।

वह स्वभाव से महनती वाकपटु और यवहारकुशल तो पहल से ही था। दो चार दिन की दौड धूप के बाद उसे बादरा म बहुत बडे एक सेठ की नामी फम म नौकरी मिल गई। अब वह वसत नही रजन था।

अपनी कायनिष्ठा लगन मेहनत और ईमानदारी स उसन साल बीतते-बीतते इस फम मे भी वही प्रतिष्ठा हासिल कर ली जो देसाई काटन मिल मे मिली हुई थी। एक साधारण कमचारी से अब वह दीनदयाल मेघाणी सस्थान का प्रधान यवस्थापक था। अपनी मेहनत से रजन ने इस फम की आमदनी दिन दूनी रात चौगुनी की। उसकी सेवानिष्ठ भावना से अभिभूत होकर सेठ और उनके परिवार न उसे पुत्रवत् प्यार द रखा था। उसे फम के कारोबार को चलाने के लिए पूरी छूट मिली हुई थी। लेन-दन, व्यापारिक खरीद फरोख्त सब उसकी इच्छानुसार चलता था। सेठ सिफ घट दो घट के लिए सस्थान म आते थे। कोई भी उलझी हुई समस्या यदि उनके सामने आती तो वह तुरत रजन को बुलाकर कहते—'बटा रजन! देख न, ये सज्जन क्या झमला लेकर आ गए हैं मरे सामने ?"

सूरत देखते रजन पहचान लेता—वह वही व्यापारी है, जिसको उसन कल ही टका सा जवाब द दिया था। वह सेठजी के सामने ही छूटते मुह जवाब देता—'क्यो, भाइ! मैंने तो आपको कल ही बतला दिया था कि मार्केट रेट से मुझसे आप दस रुपए की छूट ले लें—हालांकि अब तक मैंने इतनी अधिक रियायत किसी को नही दी है लेकिन आपको अपने व्यापार म काफी नुकसान उठाना पडा है इसलिए मैंने सोचा जान दो—यदि मरे थोडा-सा झुक जाने से आपका कारोबार सभल जाता है तो कोई हज

का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
(कविता संग्रह 1984)
, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

नही ! अभी भी आपका बतला रहा हू, इस शहर का काई भी व्यापारी इस माल मे आपको दस प्रनिशत की छूट नही देगा—अधिक-से अधिक पाच प्रतिशत—छह प्रतिशत, जहा भी जाइएगा आपको यही रियायत मिलेगी। लेकिन आप मुझसे बीस प्रतिशत की छूट माग रहे है, यानी सीधे मीधे मेरा दस हजार रुपए का नुकसान—तो सेठजी, मैं इतना बडा नुकसान तो नही उठा सकता। आप विश्वास क्यो नही कर रहे हैं—दस प्रतिशत की भी जा छूट मैं आपका द रहा हू, अपन मुनाफे म दो हजार क घाटे का सौदा कर रहा हू। वसे आप बाबजी के पास आए हैं, वह जैसा आदेश देंग, मुझे मान लेने म कोई एतराज नही है।" बोलकर रजन चुप हो गया।

मेघाणी जी न उस व्यापारी की आर दखकर कहा— 'सेठजी, कही भी ऐसी गुजाइश नही देख रहा हू कि इस लडके को दबाने वाली कोई बात करू। इसने तो आपको इतनी ज्यादा रियायत द दी कि मुझसे तो यह कभी हाता ही नही ! '

'अच्छा, तो सेठजी ! माल की पूरी कीमत का आधा सौदा उधार करा दीजिए। देखिए, मुझे इतना घाटा—इतना घाटा हुआ है व्यापार म कि मैं दिवालिया होते-होते बचा हू। आपको भी पता है कि मार्केट म 'गोकुलचद फर्म' की कितनी बडी साख थी। लकिन आज सब कुछ मिट चुका है।" उस व्यापारी ने सेठ मघाणी से निवेदन किया।

उन्होने हसते हुए जवाब दिया—' भाई मैं सिर्फ घटा दो घटा यहा अपना समय बिताने आता हू। इस व्यापार के अमल से मैं बिलकुल अलग हो चुका हू। सारा कारोबार मेरा यह लडका सभालता है। यदि यह मान ले तो मुझे कोई एतराज नहा है।

बाबूजी ने उधार क माल पर दो प्रतिशत ब्याज की बात की है और मैं ब्याज दने की स्थिति म अभी नही हू। हा, साल दो साल बाद यदि

इस काबिल हुआ तो मुझे यह ब्याज देने मे कोई एतराज नही होगा!" व्यापारी बोला।

मेघाणी जी ने जवाब दिया—"दो प्रतिशत ब्याज तो इस लडके ने कम ही लगाई है। आपकी मजबूरी का नाजायज फायदा उठाने वाली तो इसमे कोई बात ही नही है।"

'सो तो ठीक है, सेठजी! लेकिन इस समय मैं कहते कहते व्यापारी का गला भर आया।

रजन को उस पर दया आ गई। उसने बहुत ही नम्र स्वर म कहा—"अच्छा तो सेठजी, आप ऐसा कर सकते हैं कि उधारी माल की कीमत पर एक प्रतिशत ब्याज लगा लें और यह रकम जब आपका पूरा माल बिक जाए तब मेरा मूल और उसका कुल ब्याज एक साथ लौटा दें। रकम लौटाने की अवधि मैं आप ही के कहने के मुताबिक दो साल तक की देता हू। बाद म किसी तरह की खरीद फरोख्त म रुपये पैसे सबधी आपके सामने यदि कोई दिक्कत आई तो हम आपको माल सप्लाइ का वादा करते हैं। लेकिन शत बस एक ही कि पहले उधारी माल की कीमत और उसका ब्याज निर्धारित समय यानी दो साल के भीतर या पूरे दो साल बाद मेरी फम म पहुच जाना चाहिए। अब तो खुश जाइए, आधी रकम कशियर के पास जमा कराकर माल वजन कराइए!'

उसके इस फसले से व्यापारी प्रसन्न हो गया और दोना हाथ जोड विनम्र स्वर म बोला—"आपको बहुत बहुत धन्यवाद है, रजन बाबू! आपका यह उपकार मैं हमेशा याद रखूगा। और वह उठकर कशियर के पास चला गया।

मघाणी जी ने रजन की पीठ थपथपाते हुए कहा—'शाबाश, बेटे! तूने मेरा कितना बडा बोझ हलका कर दिया! कल ही से यह व्यापारी मेरे पीछे पडा था और मैं सोच ही नही पा रहा था कि इसके साथ और

जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
(कविता संग्रह 1984)
सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

क्या रियायत करू ?" कुछ रुककर फिर बोले—"खाना खा लिया ?"

'टाइम नही मिला, बाबूजी ! अभी खा लेना हू ।"

"कितनी बार तुझसे कहा—टाइम होते ही भोजन कर आया कर ! यह काम धधा तो लगा ही रहेगा ! जा, घर जा ! तेरी माताजी इतजार कर रही होगी ।"

रजन सेठ मेघाणी को 'बाबूजी' और उनकी पत्नी को 'माताजी के ही सबोधन मे पुकारता था । अभी सेठ से उसकी बातें हो ही रही थी कि फोन की घटी घनघना उठी । मेघाणी जी ने रिसीवर हाथ म लिया । "रजन है ?" उधर मे आवाज आई ।

सेठजी पहचान गए यह आवाज उनकी पत्नी की है । उन्होंने रिसी-वर रजन की ओर बढाते हुए कहा—"तुम्हारा माताजी का फोन ।"

रजन रिसीवर हाथ मे लेकर बोला—'कहिए माताजी ! क्या आदेश है ?"

"आदेश नही है, बेटा ! कब से बैठी इतजार कर रही हू, तू भोजन करने कब आ रहा है ? '

"माताजी, काम बहुत है । घर आने मे काफी लेट होगा । आप भोजन कर लें और मेरा डब्बा हरिया मे यही भिजवा दें ।"

'अच्छा, फोन बाबूजी को दे दो ।"

रजन न फोन मेघाणी जी को पकडा दिया । सेठजी सुनने लगे । सेठानी बोल रही थी—"देखा न, आज फिर नही आया ? ऐसे त इसकी तबीयत खराब हो जाएगी !"

सेठजी हसते हुए बोले—"अब क्या कहूँ इस लडके को—कहा तो मैंने भी, घर चला जाए । लेकिन जानती तो हो एक-न एक मसला इसके पीछे भी लगा रहता है । इतना बडा कारोबार और अकेला आदमी सचमुच कहा से समय मिलेगा इसे ! अब इस समय ही देखो न, हजारा

के लेन देन की बात चल रही है—एक मोटा आसामी आया हुआ है। एक झटके म पाच हजार का फायदा कर लिया तुम्हारे बेटे न ! इसका भोजन यही भिजवा दो।' बोलकर उन्होने रिसीवर क्रेडिल पर रख दिया। रजन चला गया गोदाम मे, जहा माल वजन हो रहा था। इस प्रकार रजन मघाणी परिवार की आख की पुतली बना हुआ था।

वसत के विरोधी चुपचाप न थे। वे अभी भी जी-तोड कोशिश म लगे थे उसका पता लगाने मे। लेकिन उन्हें यह न मालूम था कि वसन्त अब रजन बन चुका है। इसी कारण वे वसन्त की तलाश म अब तक असफल होते आ रहे थे। वसत को अपने विरोधियो की ओर स कोई चिन्ता न थी। काफी अरसे तक जेल मे रहने के कारण उसके रूप रग म आशिक परिवतन आ गया था, एक प्रमुख कारण यह भी था अपने विरोधियो की निगाह म न आने का।

उसे चिन्ता थी तो सिर्फ इस बात की कि अभी तक उससे सुनील की मुलाकात नही हो पाई थी। वह अच्छी तरह समझ रहा था कि यदि सुनील ने दौड भाग न की होती तो उसका जेल म बाहर आना मुश्किल था। लेकिन वह चला कहाँ गया ? अपने प्रति आभार प्रदर्शन का अवसर भी उसे नही दिया सुनील न। सच भी तो है, एक सच्चा मित्र, अपने किसी मित्र के काम आकर, बदल म उससे आभार, प्रशसा या कृतज्ञता-ज्ञापन की इच्छा कभी नही रखता वह एक सच्चा मित्र था और अपनी मत्री का मूल्य चुकाया बदल म उस मित्र स अपेक्षा भी किस बात की ? यदि बदल म किसी बात की अपेक्षा हो रखी तो मित्र कैसा ? वसत के हृदय म यह दृढ विश्वास था कि एक न एक दिन सुनील उससे मिलेगा जरूर।

व्यावसायिक लेखा जोखा अब उसके जीवन का अग बन चुका था। अपने जीवन म वह अनेक तरह की परिस्थितियो से गुजर चुका था। उसके

जनपद का कवि हू (कविता सग्रह 1981)
(कविता सग्रह 1984)
, सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

रहन-सहन म काफी परिवतन आ चुका था। अब वह एकदम नये किस्म का जीवन जी रहा था। बादरा म मेघाणी परिवार के आस-पास क लोग यही समझते थे कि यह सेठ दीनदयाल मेघाणी का बेटा है। दीनदयाल मेघाणी या उनके परिवार के किसी भी सदस्य ने उसे नौकर कभी नही समझा। इसीलिए उस जब कभी कुछ हो जाता या बिना किसी का बतलाये कभी कही चला जाता तो सारा मेघाणी परिवार परेशान हो उठना था। अब तो कुछ दिनो से सेठ और सेठानी को उसके विवाह की चिन्ता सताने लगी थी। वह तलाश म थे कि उनकी बराबरी का कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति मिले, जिसकी लडकी से वह रजन का विवाह निश्चित करें।

एक दिन सेठ दीनदयाल जी श्यामलाल जी से मिले। वही पर उन्होने रजन के विवाह की चर्चा छेड दी। श्यामलाल जी भी अब काफी चिंतित रहने लगे थे। उनकी भतीजी सरिता विवाह के योग्य हो चुकी थी। जब वह शिमला गए थे और वहाँ पर सुनील को देखा था, तभी उनकी दृष्टि सुनील पर जमी हुई थी। सरिता भी सुनील को हृदय से चाहती है जब यह बात उन्हे मालूम हुई तो उन्होने निश्चय कर लिया था कि भतीजी की शादी सुनील से करके उसे वह घर जमाई बना लेंगे जो उनके बाद उनकी सम्पत्ति का दावेदार होगा और उनका व्यापार भी सभालेगा। लेकिन सुनील के एकाएक लापता हो जाने स उनका दिल उसकी ओर से बिल्कुल टूट गया। उन्हें अब बिलकुल आशा न थी कि सुनील कभी लौटकर आएगा। इसीलिए जब दीनदयाल मेघाणी ने उनके सामने उनकी भतीजी सरिता के साथ रजन का विवाह प्रस्ताव रखा तो उन्होन उसे तुरत स्वीकार कर लिया। लेकिन श्यामलाल जी को यह न मालूम था कि रजन नेहरू उद्यान का वही बसत है जो 'देसाई काटन मिल' के एक लाख रुपए के गबन केस म सजा पा चुका था और जिसकी मुक्ति के लिए उनसे ही मदनलाल सुनील न हाईकोर्ट मे अपील की थी। रजन के साथ सरिता का विवाह उसके चाचाजी न निश्चित कर लिया है, यह बात अभी सरिता को न मालूम थी।

के लेन दन की बात चल रही है—एक मोटा आसामी आया हुआ है। एक झटके मे पाच हजार का फायदा कर लिया तुम्हारे बेटे ने ! इसका भोजन यहीं भिजवा दो।' बोलकर उन्होंने रिसीवर क्रेडिल पर रख दिया। रजन चला गया गोदाम म जहा माल वजन हो रहा था। इस प्रकार रजन मघाणी परिवार की आख की पुतली बना हुआ था।

वसत के विरोधी चुपचाप न थे। वे अभी भी जी-तोड कोशिश मे लगे थे उसका पता लगाने म। लेकिन उन्हें यह न मालूम था कि वस त अब रजन बन चुका है। इसी कारण वे वस त की तलाश म अब तक असफल होते आ रहे थे। वसत को अपने विरोधियो की ओर स कोई चिन्ता न थी। काफी अरसे तक जेल म रहने के कारण उसके रूप रग म आशिक परिवतन आ गया था, एक प्रमुख कारण यह भी था अपने विरोधियो की निगाह म न आने का।

उसे चिन्ता थी तो सिफ इस बात की कि अभी तक उससे सुनील की मुलाकात नही हो पाई थी। वह अच्छी तरह समझ रहा था कि यदि सुनील ने दौड भाग न की होती तो उसका जेल से बाहर आना मुश्किल था। लकिन वह चला कहाँ गया ? अपने प्रति आभार प्रदशन का अवसर भी उस नही दिया सुनील न। सच भी तो है, एक सच्चा मित्र, अपने किसी मित्र के काम आकर, बदल म उससे आभार, प्रशसा या कृतज्ञता-ज्ञापन की इच्छा कभी नहीं रखता वह एक सच्चा मित्र था और अपनी मत्री का मूल्य चुकाया बदले म उस मित्र स अपेक्षा भी किस बात की ? यदि बदले म किसी बात की अपेक्षा ही रखी तो मित्र कैसा ? वसत के हृदय मे यह दृढ विश्वास था कि एक न एक दिन सुनील उससे मिलेगा जरूर।

व्यावसायिक लेखा जोखा अब उसक जीवन का अग बन चुका था। अपने जीवन म वह अनेक तरह की परिस्थितियो मे गुजर चुका था। उसके

तप के साए हुए दिन (कविता सग्रह 1980)
शब्द (कविता सग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता सग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता सग्रह 19 4)
सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

रहन-सहन में काफी परिवर्तन आ चुका था। अब वह एकदम नये किस्म का जीवन जी रहा था। बांदरा में मेघाणी परिवार के आस-पास के लोग यही समझते थे कि यह सेठ दीनदयाल मेघाणी का बेटा है। दीनदयाल मेघाणी या उनके परिवार के किसी भी सदस्य ने उसे नौकर कभी नहीं समझा। इसीलिए उसे जब कभी क्रुद्ध हो जाता था बिना किसी को बतलाये कभी कहीं चला जाता तो सारा मेघाणी परिवार परेशान हो उठता था। अब तो कुछ दिनों से सेठ और सेठानी को उसके विवाह की चिंता सताने लगी थी। वह तलाश में थे कि उनकी बराबरी का कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति मिले, जिसकी लड़की से वह रंजन का विवाह निश्चित करें।

एक दिन सेठ दीनदयाल जी श्यामलाल जी से मिले। वहीं पर उन्होंने रंजन के विवाह की चर्चा छेड़ दी। श्यामलाल जी भी अब काफी चिन्तित रहने लगे थे। उनकी भतीजी सरिता विवाह के योग्य हो चुकी थी। जब वह शिमला गए थे और वहाँ पर सुनील को देखा था, तभी उनकी दृष्टि सुनील पर जमी हुई थी। सरिता भी सुनील को हृदय से चाहती है जब यह बात उन्हें मालूम हुई तो उन्होंने निश्चय कर लिया था कि भतीजी की शादी सुनील से करके उसे वह घर जमाई बना लेंगे जो उनके बाद उनकी सम्पत्ति का दावेदार होगा और उनका व्यापार भी सम्भालेगा। लेकिन सुनील के एकाएक लापता हो जाने से उनका दिल उसकी ओर से बिलकुल टूट गया। उन्हें अब बिलकुल आशा न थी कि सुनील कभी लौटकर आएगा। इसीलिए जब दीनदयाल मेघाणी ने उनके सामने उनकी भतीजी सरिता के साथ रंजन का विवाह प्रस्ताव रखा तो उन्होंने उसे तुरत स्वीकार कर लिया। लेकिन श्यामलाल जी को यह न मालूम था कि रंजन नेहरू उद्यान का वही बसंत है जो 'न्साई काटन मिल' के एक लाख रुपए के गबन केस में सजा पा चुका था और जिसकी मुक्ति के लिए उनसे ही मदद लेकर सुनील ने हाईकोर्ट में अपील की थी। रंजन के साथ सरिता का विवाह उसके चाचाजी ने निश्चित कर लिया है यह बात अभी सरिता को न मालूम थी।

चौदह

दो वर्षों का कारावास दण्ड भोगकर मुक्त हुआ सुनील। उसके मन-मस्तिष्क को आंदोलित किए हुए थे विचारों के तूफान। उसे संतोष था इस बात का कि उसने अपने मित्र से जो वादा किया था, उसे पूरा कर—अपनी मैत्री का फर्ज निभाकर वह चला आ रहा है। जिस मित्र के हितों की रक्षा में, उसने निर्दोष होकर भी स्वयं को दोषी घोषित कर कारावास दण्ड भोगा, आज वही मित्र उसके करीब होकर भी दूर था। अब खुद को इस योग्य नहीं समझ रहा था कि वह सेठ श्यामलाल जी के सामने जा सके। दो वर्षों का लम्बा अन्तराल! क्या सोचेंगे श्यामलाल जी और क्या सोचेगी सरिता जिसको उसने वचन दिया था शीघ्र लौट आने का? वे जरूर पूछेंगे—इतने दिनों तक कहाँ थे? क्या कर रहे थे? क्या जवाब देगा वह उनके इन प्रश्नों का? यह सच है, दुनिया की दृष्टि में वह एक सजायाफ्ता व्यक्ति है—समाज के सर्वथा अयोग्य—उपेक्षित! लेकिन सरिता? उसके लिए वह सजायाफ्ता अपराधी नहीं! उसके लिए तो वह नेहरू उद्यान 'शिमला' का भोला भाला, सीधा सच्चा वही प्यारा सुनील है—उसका हमराह—उसका हमसफर!

सरिता की स्नेह डोर में वह बरबस खिंचता चला गया 'श्याम भवन' की ओर। सकुचाते सकुचाते वह ड्योढ़ी पर पहुँचा प्रवेश किया उसकी दशा दयनीय थी। उसकी आँखें—एक ही दृष्टि में सब कुछ देख

साप के लाए हुए रत्न (कविता संग्रह 1980)
शहर (कविता संग्रह 1980)
उस अनवर का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
अरण्यान (कविता संग्रह 1934)
दागर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

लेना चाहती थी।

"कौन साहब हैं?' चौकीदार ने पूछा।

"सेठजी हैं?'

"ठहरिए, देखता हूं।" और वह भीतर चला गया।

कुछ ही देर मे उसे सुनाई पडी अपने निकट आती एक चिरपरिचि आवाज—"कौन है, भाई?'

यह आवाज थी सेठ श्यामलाल जी की। उन्होंने बाहर निकलते हुए पूछा। सुनील उनकी ओर मुखातिब हुआ। देखते ही श्यामलाल जी चौंके— सुनील, तुम! और, दो साल बाद?"

'हां, मैं हूं—सुनील! पूरे दो साल बाद! कभी यहां आने के लिए बाध्य होना पड़ा था, कभी न आने के लिए बाध्य होना पड़ा।" सुनील ने टूटे स्वर में जवाब दिया— 'दो साल के इस अन्तराल के लिए मैं आपका —सरिता का—यहां के फूल पौधे, जरा-जर्रा जमीन का कसूरवार हूं। किन शब्दों में करूं क्षमा-याचना?'

"नहीं-नहीं, इसमें क्षमा और अपराध जैसी तो कोई बात ही नहीं है। दो साल के लम्बे अन्तराल के लिए तुम्हें मैं कैसे दोष दूं? मनुष्य की अपनी अपनी समस्यायें होती हैं—अपनी-अपनी सीमायें—अपनी मजबूरियां। यह तो समय का चक्र है, इंसान को जिस ओर मोड़ दे। पर इतना जरूर है—जब जब आते हो मौके से—एक नई चेतना नई लहर लेकर। हमारी स्मृति पुनः पल्लवित-पुष्पित हो जाती है।" श्याम लाल जी गंभीर होकर बोले।

"! !" सुनील ने कोई जवाब नहीं दिया।

"आओ, चलें, ड्राइंगरूम में बातें करेंगे।"

सुनील खुद को एक अपराध-बोध से दबा-दबा-सा महसूस करता उनके पीछे-पीछे खिंच चला। भीतर पहुंचकर श्यामलाल जी ने कोच

की ओर इशारा करते हुए उसे बैठने को कहा।

उसके बैठ जाने पर उन्होंने पूछा— 'कहो, तुम्हारे दोस्त वसंत का क्या हुआ ? अब तो वे प्रसन्न होंगे ?"

सुनील ने बिना किसी लाग-लपेट के जवाब दिया—"वसंत तो कब का जेल से रिहा हो गया।"

'तुम इतने दिनों तक दिखलाई नहीं पड़े, कहां थे ?"

जेल में।' सुनील ने जवाब दिया।

'तुम्हारे जैसा इंसान और, जेल में ? विश्वास नहीं होता।" श्यामलाल जी गंभीर होकर बोले।

"मैंने आज तक कभी झूठ कहा ?" सुनील ने जवाब दिया।

'यदि यह सत्य है, तो क्यों ?"

"मैंने वसंत को जेल से मुक्त कराने का वचन दिया था लेकिन अपील में भी कोई दम नहीं था सारे सबूत उसके खिलाफ थे छूटने का गुंजाइश बिलकुल न थी उसे जेल से बाहर निकालने का सिर्फ एक ही उपाय था—उसके ऊपर लगाए गए इल्जामात मैं अपने पर ले लूं और चूंकि उसे वचन दे चुका था, इसलिए मुझे यह खतरनाक कदम उठाना पड़ा।' सुनील ने साफ-साफ बयान कर दिया।

'इतनी बड़ी कुरबानी ?'

'वचन जो दिया था!'

फिर मुझे माफ कर दो, बेटे मैंने तुम्हें गलत समझा!"

'नहीं, चाचा जी! इसमें माफी की कोई बात नहीं। आपकी जगह जो भी होता यही निष्कर्ष निकालता!

'बेटे मुझे एक संदेह है सचमुच कहीं वसंत ने ?"

'नहीं, चाचा जी! वसंत मेरा बचपन का मित्र है। मैं उसे अच्छी तरह से जानता हूं। वह ऐसा कभी नहीं कर सकता!'

नाव के लाए हुए जख्म (कविता संग्रह 1980)
शब्द (कविता संग्रह 1950)
उस जनपद का कवि हूं (कविता संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1924)
रीडर, सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

परिस्थितियों के वशीभूत होने पर खुद को कलंकित होने से बचाने के लिए कभी कभी सच्चाई को छिपाने की कोशिश करता है, लेकिन सुनील ने ऐसा कुछ नहीं किया। उसने यह भी नहीं सोचा कि यदि उसने कह दिया कि वह जेल में था तो सरिता के साथ उसके संबंधों पर बुरा असर पड़ सकता है। लेकिन बनाव छिपाव से वह हमेशा दूर भागता रहा और इसीलिए उसने यहां भी कुछ छिपाया नहीं। जो कुछ उस पर बीती थी, सब कुछ सच-सच बता दिया। वे उसके निस्वार्थ त्याग के इस दुस्साहसिक कदम पर आश्चर्यचकित एवं अवाक रह गए। सिद्धांत और वचन पालन का इतना दृढ़निश्चयी इंसान उन्होंने अपने जीवन में आज तक नहीं देखा था।

वह बड़ी देर तक टकटकी लगाये, उसका मुख निहारते रहे। फिर आहिस्ते से बोले—"इतना बड़ा हादसा तुम्हारे जीवन में हुआ और तुमने इस बारे में एक बार भी नहीं लिखा कि मैं आकर कम-से-कम तुमसे मिलता और जो कुछ संभव बन पड़ता तुम्हारी मदद तो करता ?"

"चाचाजी, सचाई पर एक बार तो परदा डाला जा सकता है, वह भी बड़ी कठिनाई से।" सुनील ने जवाब दिया।

उसकी इस बात से श्यामलाल जी के मन में भ्रामक धारणा बन गई कि निश्चय ही सुनील ही अपराधी है, तभी उसे दण्ड भोगना पड़ा है। बसन के बदले जेल जाने की कहानी मनगढ़ंत है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में पूछा—"सुनील, तुमने ऐसा कौन सा अपराध किया कि उसकी सजा तुम्हें भोगनी पड़ी ?

"मैंने सचाई पहले ही बयान कर दी है, चाचाजी! उस पर विश्वास करना, न करना आप पर निर्भर है। हां, दण्ड मैंने जरूर भोगा है।"

"यह तो बड़ी विस्मय की बात है! व्यक्ति को कभी कभी कुछ

का कुछ करना और उसका प्रतिफल भोगना पड़ता है।" श्यामलाल जी बोले।

"यह सच है।' सुनील ने जवाब दिया—"व्यक्ति के पीछे उसकी इच्छा नहीं होती लेकिन, उसे जीवन जीना है और वह जीने के लिए अभिशप्त है।"

'जीवन तुम्हारे लिए अभिशाप?" श्यामलाल जी ने पूछा।

'जी, हां! एकदम अभिशाप! व्यक्ति आज जीता इसलिए है कि उसके मरने का रास्ता साफ नहीं है और मरता इसलिए है कि वह जी नहीं सकता!' सुनील ने जवाब दिया।

'और, तुम्हारे इस जीने पर कानून की पाबन्दी लगी हुई है।" श्यामलाल जी ने व्यंग्य किया।

'कानूनी बंधन तो क्या, ऐसे अनेक बंधन हैं जिनसे व्यक्ति जकड़ा हुआ है, पर वह इन्हें गहराई से नहीं लेता। वह जन्म तो लेता है स्वच्छन्द लेकिन इसके बाद उसे अनेक प्रकार के बंधन ग्रसित कर लेते हैं। इनसे छुटकारा पाने—इनका अस्तित्व मिटाने के लिए व्यक्ति को समय आने पर शास्त्रोक्त बंधनों को भी तोड़ना पड़ता है।" सुनील ने जवाब दिया।

"जान पड़ता है सुनील कि तुम्हारा जीवन एक अनोखी यात्रा है और इस यात्रा में हम तुम्हारा साथ देने में असमर्थ हैं।' श्यामलाल जी बोले।

"मतलब?" सुनील ने पूछा।

"मतलब यह कि तुम्हारी यात्रा का रास्ता निहायत अजीब किस्म का एक गौण रास्ता है, जिस पर स्वयं को गिराकर चलना मेरे लिए बड़ा मुश्किल है।'

"इस चर्चा से तो यही जान पड़ता है कि मेरे बारे में आपका मन संदेह से इस कदर घिर चुका है कि उसे साफ कर खुद को खरा साबित करना बड़ा मुश्किल है—तब एक निदान अवश्य है आप देखना चाहें तो

ताप के ताए हुए दिन (कविता संग्रह 1980)
शब्द (कविता संग्रह 1980)
उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
अरधान (कविता संग्रह 1984)
[illegible], सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

मर मन की पुस्तक खुली हुई है। हा यदि आप उस भी नकार दें ता यह बात दूसरी है।"

श्यामलाल जी भी खुले दिल क व्यक्ति थ। उनकी इच्छा हुई कि वह सुनील स कुछ और प्रश्न करें। वह बोले—"तुम एकदम झूठ बोल रहे हो मैं यह ता नहीं कहता। हो सकता है, तुम्हारी बातो म कुछ सत्य हा।"

'सत्य ता कुछ और ही है, जिस आपका कभी का बता चुका हू। बस आज क युग म सत्य का मुह बद कर दिया जाता है। कभी कभी तो ऐसी भी स्थिति दखन म आती है कि सत्य नग्न-खुला मिलता है किन्तु बोलता नही। कहावत तो आपन भी सुनी ही होगी—सत्य बडा कडवा होता है। फिर कडवाहट घोलकर बर कौन बढाए? इसीलिए सत्य चुप रहता है।

वसे श्यामलाल जी के मन म सुनील क प्रति अभी भी आदर भाव था, लकिन कभी कभी यह सोचकर कि कही सचमुच वह अपराधी ता नही—उनके मन का चार जाग उठता था। सदह की यह भावना उनक मन का रह रहकर कचोट उठती थी। ऐसा ही कुछ सोचते-सोचत श्याम लाल जी निद्रा की चपेट म आ गए।

सरिता ने सुनील को देख लिया था लकिन वह सामन नहा आई। ड्राइग रूम के दरवाजे की ओट म खडी सरिता जान कब स श्यामलाल जी और सुनील का वार्तालाप सुन रही थी। वह सामन आकर सुनील का स्वागत सत्कार खुद कर उसकी इच्छा ता थी, लकिन जब उसन देखा कि श्यामलाल जी स्वय ही उसक आतिथ्य म तत्पर हैं ता वह वहा ठमक गई। उसन मन ही मन विचार किया—'अच्छा है इसी बहान चाचा जी सुनील क और करीब आए और उनक प्रति उनक हृदय म प्यार का और अधिक उद्गार हो। लकिन जब कभा श्यामलाल जी सुनील पर उनक

अपराधी होने का संदेह व्यक्त करते तो उसकी आत्मा भीतर-ही भीतर रो पड़ती और मन अव्यक्त रूप में चीख चीख कर कहता—'नहीं-नहीं-नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। मेरा पति अपराधी नहीं है सुनील ने जो कुछ किया एक बेगुनाह व्यक्ति को बचाने के लिए किया—इसके लिए अगर उनको दण्ड भी भोगना पड़ा तो भी वह अपराधी नहीं। बार-बार उसका मन होता—वह सामने आए और सुनील की बांह पकड़कर चाचा जी की नजरों से दूर खींच ले जाए। लेकिन शर्म और हया की जंजीरें उसके पैर बांध लेतीं और उसकी इच्छा दबी की दबी ही रह जाती।

जब श्यामलाल जी निद्रा के वशीभूत हो गए तो सुनील की नजरें अपनी हीर की कनी की तलाश में चारों ओर भटकने लगीं। घूमती फिरती जब उसकी दृष्टि पीछे की ओर गई तो उसने देखा कि उसकी प्रेमस्रोतस्विनी सरिता की आंखों में गंगा-यमुना और सरस्वती तीनों के ही प्रवाह उमड़ते आ रहे हैं। वह अधरों पर वीणा और वक्ष में दहकता भीषण विस्फोट छिपाए दरवाजे की ओट में खड़ी-खड़ी कब से उसकी राह देख रही है। सुनील की करुणा की प्यासी पथराई आंखों ने इंगित में ही सरिता से कुछ कहा। भरी भरी नजरों से सरिता भी एकटक उसे ही देख रही थी। अवस्था कुछ ऐसी हुई कि दोनों ही अपने को संयत न रख सके। दोनों ही भूल गए कि श्यामलाल जी वहां मौजूद हैं—सिर्फ उनकी आंखें बंद हैं। निमिष में ही सुनील अपनी जगह से खड़ा हुआ। धीरे धीरे दबे कदमों से दरवाजे की ओर बढ़ा। उसका आगे बढ़ना था कि सरिता के कदम भी अब अपने को रोक न सके। सुनील ने तीन ही पग आगे बढ़ाए थे कि सरिता ने अपने दोनों के बीच की इससे अधिक की दूरी एक सांस में पार की और आकर सुनील के कंधे पर अपना सिर रख दिया और अपनी दोनों बाहें उसके गले में डाल आंखों के कपाट बंद कर झूल गई। यौवन भार से दबी जा रही सरिता की झूलती काया को सहारा दिया,

---

क[illegible] हुए दिन (कविता संग्रह 1980)
(कविता संग्रह 1980)
उस अनपढ़ का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
अरमान (कविता संग्रह 1984)
५. सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

सुनील की दोना बाहों ने । मरिता के मुख की कांति रक्ताभ हो चली। उमके अग अग मे फूटते यौवन उन्माद न उमके मन का सपूर्ण सकोच नष्ट कर दिया मकाच का वह जटिल बधन आखिर कब तक उस बाध रखता ? सुनील उमका जीवन धन, उमका हमराह—हमसफर—हम ख्वाब सब कुछ ता था फिर उमके मन म सकोच कैसा ?

दो वर्षों के वियोग का लबा अनराल—सुनील की आखें नम हो आईं। अपन मीने से चिपकी सुबकती मरिता के कोमल हाथ अपने हाथो मे लेकर वह भर्राए कठ मे बोला— 'सरु !"

सुबकते स्वर म ही मरिता के मुख से निकला—"यह कैमी सूरत बना ली है तुमने अपनी ?"

"चिन्ता न करो, सरु ! अब सब ठीक हो जाएगा ! अब हमारे बीच कोई दीवार—कोई बधन नही। अब सिर्फ तुम हो और मैं ! '

"हा, यह वचन मुनने को मैं कब से तरस रही थी ! तुमको क्या मालूम ? सिर्फ तुम्हें ही क्या, किसी को नही मालूम—सिर्फ खाय मा जानती है, तुम्हारे वियोग म मैंने दा वर्षों के एक एक दिन किस तरह पार किए हैं ! सारी दुनिया—मारा शहर आधी रात की वेला म घोर निद्रा के आगोश म पडा जब मुख की नीद सोता था, तब मैं तुम्हारे सपने देखती देखती अपन बिस्तर पर चौंककर उठ बठती तलाश करने लगती— अभी-अभी ता तुम मेरे पास आए थे, तब पल भर म ही कहां छिप गए ? बावला की तरह कमरे का कभी एक कोना निहारती, तो कभी दूसरा तीसरा—फिर चौथा जब नजर नही आते तो यह सोचकर, शायद ऊपर चले गए हो —फटी फटी आखा स बैठी बठी कमरे की छत निहारने लगती लेकिन कहां ? जब होते, तब तो नजर आते—फिर एकाएक खयाल आता—अरे, मैं भी कितनी बावरी हू—सपने को मन मान बठी यह तो यहा अजब हैं, अनजान जगह अनजान लोगों म '

स्मृति का बवडर अन्तर्दाह को इस कदर धधका देता कि आखो का सागर बरबस उफन पडता—मैं फूट फूट कर रो पडती । मेरे एकाकीपन को दूर करने के लिए पास की दूसरी पलग पर पडी धाय मा के निद्रित कानो मे अचानक गूज उठता मेरा करुण आर्तनाद ! वह चौंककर उठ बैठती और पास आकर मेरा सिर सहलाती—मेरे आसू पोछती, मेरा ढाढस बधाती—कहती, न रो बिटिया ! बाबूजी जरूर आएगे—तेरे बिना उनका भी जीवन सूना है—अधूरा है वह तुझे कभी भुला नही सकते ! जरूर किसी मजबूरी ने उन्हे बाध रखा है—पर मालिक पर भरोसा रख एक न एक दिन अचानक उनका दर्शन होगा । और सच मुच धाय मा का कहना ही सच निकला । आज जब अचानक तुम्हें देखा तो आखो को सहसा विश्वास न हुआ मैं यही से, जहा हम खडे हैं, यह कहती पीछे लौट गई—छी-छी ! यह कैसी पाप भावना भर आई मेरे मन मे—मैं अपने देवता के चरणो म चढी प्रसून—परपुरुष के प्रति ऐसा दुष्ट भाव लाई ही क्या अपने हृदय म ? भीतर जाने पर मन फिर कचोट उठता—वह पुकार उठता—सरिता तू पागल तो नही हो गई ? क्या हो गया तेरी आखो को ? जिसके लिए तू इतने दिनो स बेचैन थी—व्याकुल थी, रात रात भर जिस की स्मृति म आखो की नीद गवाई अपना सुख-चैन लुटाया—आज तेरा वही सुनील, जब तेरे द्वार पर आया, तो तू उसे पहचानती भी नही ? सच जानो, अभी अभी, थोडी ही देर पहले कई बार हुआ यह कौतुक ! वह तो मन को विश्वास हुआ तब, जब धाय मा ने आकर कहा—'बेटी, देख तो सही, कौन आया है अपने घर !

'मैंने जवाब दिया—'चाचाजी के कोई मिलने वाले हैं, मां जी !'

' धत्त पगली ! अरे, तू अपने सुनील को भी नहा पहचानती ? बेटी, यही तेरे बाबूजी हैं । समय की मार स चेहरे म कुछ बदलाव आ

[illegible] (कविता सग्रह 1980)
(कविता सग्रह 19 0)
उस अनवर का कवि हू (कविता सग्रह 1981)
अरण्यान (कविता सग्रह 1934)
सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

गया है। जा, उन्हें अपनी झलक तो दिखा दे! वह बात कर रहे हैं तेरे चाचाजी से, लेकिन उनकी नजरें बेचैनी से तलाश रही हैं तुझे!'"

'तुम्हारी धाय मां का कहना सच है, सरु! तुम्हारी याद चौबीसों घंटे मुझे असंतुलित किए हुए थी बार-बार जी कहता कब मिलूं तुमसे—लेकिन करता भी क्या? फर्ज की जंजीरों ने जकड़ रखे थे मेरे पांव! लेकिन अब वे जंजीरें टूट चुकी हैं—अब तो सिर्फ एक ही जंजीर रह गई है बांधे, जो न तो कभी खुल सकती है और न ही कभी टूट सकती है और वह जंजीर हो तुम सरु—तुम! अब दुनिया की कोई बाधा—कोई विघ्न हमें जुदा नहीं कर सकता!'

"सच कहते हो? अब तो छोड़कर नहीं जाओगे न?

सच कहता हूं, सरु! अब तुम्हें छोड़कर कहां नहीं जाऊंगा। मेरी बात का विश्वास करो, सरु! मैंने कोई अपराध नहीं किया। यदि मेरे हाथों ऐसा कुछ हुआ होता तो मैं अपना मुंह तुम्हें कभी नहीं दिखलाता। हां, दंड जरूर भोगा, लेकिन उसके लिए मैं वचन दे चुका था दसरा को कारावास से मुक्त कराने का। बस, मेरा कसूर सिर्फ इतना है कि मैंने अपने दिए हुए वचन का पालन किया।"

'जानती हूं! मुझे पूरा भरोसा है तुम पर! दुनिया वाले कुछ भी कहें—लेकिन मैं जानती हूं, मेरे सुनील में कोई पाप नहीं—कोई कलंक नहीं। मैंने सोच समझकर ही भगवान शंकर और मां पार्वती के सामने तुम्हें अपनी किस्मत का मालिक बनाया और मैं समर्पित हो गई अपने उस मालिक के चरणों में! भूलकर भी मन में कभी यह भाव न लाना कि तुम्हारी सरु—तुम पर संदेह की उंगलियां उठा रही है। अपने निश्चय पर मैं आज भी अटल हूं मेरे देवता—हमें कोई ताकत जुदा नहीं कर सकती! हमने कोई पाप नहीं किया—शादी की है, फिर डर का?"

ड्राइग रूम म बैठ श्यामलालजी सरिता और सुनील की बातें सुन रहे थे। ग्लानि, क्षोभ और आक्रोश स उनका मन तिक्त हो उठा। उन्ह ख्याल आया सेठ दीनदयाल का, जिन्हें वह उनके बेटे रजन से सरिता के विवाह की स्वीकृति द चुके थे। उन्ह अब सुनील से सरिता का मिलना-जुलना अनुचित प्रतीत हुआ। उन्होंने जोर से आवाज दी— बेटी, सरिता!"

सरिता ड्राइग रूम के बाहर दरवाजे की ओट म सुनील के पास खडी थी। श्यामलालजी क बुलान पर जोर की ही आवाज म बोली— 'आई, चाचाजी!"

और दूसरे ही क्षण वह उनके सामने जा खडी हुई। श्यामलाल जी बोले—'बठो बेटी!"

सरिता बैठ गई।

श्यामलाल जी ने उस समझात हुए कहा—'बेटी जिस फल को प्राप्त नहीं किया जा सकता है और जो प्राप्त करन योग्य है भी नहीं, उसके बारे म सोचना, उसपर चर्चा परिचर्चा करना व्यथ है और दुख का विषय भी।'

सरिता समझ गई कि श्यामलालजी का यह इशारा सुनील की ओर है। इनकी बातो से साफ हो गया कि वह सुनील स उसका सबध पसद नही करते हैं, लेकिन पसद-नापसद की बात तो उस पर निभर होनी चाहिए, न कि श्यामलाल जी पर। शादी करके जीवन उसे बिताना है, न कि श्याम लाल जी को। फिर यह देखना उसका अपना निजी मामला है कि कौन उसके योग्य है—कौन अयोग्य। उसने उन्हीं के समान श्लेषात्मक भाषा मे जवाब दिया—

"और फल यदि प्राप्त हो चुका हो और ससार की नजरो म अप्राप्त हो तो?"

"नहीं-नहीं कदापि नही। ऐसा न कहो, सरिता! यह नहीं समझो कि सुनील मेरी दृष्टि म हेय है। बात कुछ और ही है, बेटी! सुनील इस

(कविता संग्रह 1980)
अनपढ़ का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
(कविता संग्रह 1934)
सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

क्षेत्र मे पिछड गया वगी ! मैंने उसका बहुत इंतजार किया और जब देखा कि वह नही आएगा तो मैंने सेठ दीनदयाल का उनके बेटे रजन से शादी पक्की कर ली है। यह बात मुझे तुमको उसी समय बता देनी चाहिए था, लेकिन फिर सोचा बाद मे बतलाने मे भी कोई फर्क नही पडेगा।

"चाचाजी, अब बद भी कीजिए ऐसी बातें। अपने बारे मे इस तरह के शब्द मैं सुनना नही चाहती। ऐसी बातें करना या सुनना मेरे लिए महान पाप है। भगवान शकर और मा पार्वती को साक्षी मानकर मैं और सुनील एक दूसरे को समर्पित हो चुके हैं चाचाजी ! सुनील मेरा है और मैं उसकी। मैं सुनील को हर तरह से समर्पित हो चुकी हू और जो चीज समर्पण मे दे दी जा चुकी होती है, वह वापस नही ली जाती।'

'बेटी, सुनील तुम्हारा दोस्त था आज भी है आगे भी रहेगा। लेकिन शादी विवाह एक बधन है जिसे समाज की मान्यता मिली हो। यह ठीक है तुमने एक दूसरे को वचन दिया था। बधानिक रीति से अभी शादी तो नही हुई ? तुम्ही सोचो, यदि मेरी जबान न रही तो कौन-सी इज्जत रह जाएगी मेरी ? सेठ दीनदयाल क्या सोचेंगे मेरे बारे मे और फिर उनके लडके रजन मे ऐसी कोई खामी भी तो नजर नहीं आ रही है।'

"शादी विवाह—और समाज की मान्यता आपने भी खूब कही चाचाजी ! अच्छा, एक बात तो बतलाइए। समाज-मान्य किसी शादी मे बाद जब पति शराबी-कबाबी, जुआरी वेश्यागामी, चोर-डकैत, लूला लगडा और अधा-अपग किसी भी कारण से नारी के योग्य नही रह जाता और नारी पतित बनने को, दर-दर की ठोकरें खाने को विवश हो जाती है, उस समय आपकी सामाजिक मान्यता उसका भरण पोषण क्या नहीं करती ? सामाजिक मान्यता का ढिंढोरा पीटने वाले आप जैसे लोग शादी तो दबाव डालकर करा देते है—जैसे आज मुझपर दबाव डाल रहे

हैं, लेकिन नारी के असहाय हो जाने पर दोबारा सामने आकर उस नारी से क्यो नही कहते है कि अपनी इच्छाओ का दमन कर तुमने हमारे दबाव पर यानी समाज के दबाव मे शादी की थी, इसलिए हम ठेकेदार लोग समाज की ओर से यह जमीन जायदाद या इतनी नकदी तुम्हे मुहैया कर रहे हैं, जिससे तुम अपनी अपने बाल बच्चो की परवरिश करो, चिंता की कोई बात नही ? लेकिन नहीं, जब ऐसी स्थिति आती है तो आप लोगो की सूरत नजर नही आती है। यही तो है आपका समाज, आपकी सामाजिक मान्यता ! यह जिंदगी का एक सौदा है जब दो अनजाने राही एक सूत्र मे बधकर जीवन भर एक-दूसरे का साथ देने की कसम खाते हैं। इन दोनो राहगीरो के आचार विचार, रहन सहन, आदत आचरण मे यदि मेल न हो तो इनकी जीवन भर साथ चलने की कसम बीच मे ही लुप्त हो जाती है और पुरुष का तो कम क्योकि वह यदि आवारा कुत्ता भी बन जाए तो समाज कुछ नहा कहता क्योकि समाज पुरुष प्रधान है, लेकिन नारी पर जो कहर गुजरता है उसकी दुख दर्द भरी कहानी भी तब सुनने को किसी के पास फुरसत नहा रहती। सेठ दीनदयाल आपके दोस्त हो सकते हैं इसका मतलब यह तो नही कि मैं एक विवाहित नारी अपने निर्दोष निष्पाप निष्कलक पति का त्याग कर आपकी दोस्ती के नाम पर बलि चढ जाऊ ? रजन अपने ध्येय के प्रति योग्य हो सकता है। मा बाप के प्रति वफादार हो सकता है और इसीलिए वह आपके भी योग्य है, लेकिन वह मेरे योग्य होगा, इसका क्या प्रमाण है ? सुनील ने आपको अपनी स्थिति का वर्णन सही-सही बतला दिया, और यह जानकर भी कि उसने जो कुछ भी किया एक निर्दोष की इज्जत और प्रतिष्ठा बचाने के लिए किया—आपने उसे अपराधी मान लिया। लेकिन दीनदयाल सेठ के लडके ने आपको अपने बारे मे कुछ नही कहा तो उसे आप प्राप्त करने योग्य फल मानने लगे, लेकिन उसने अपने

(कविता संग्रह 1950)
अनाद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)
परथान (कविता संग्रह 19 4)
सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

जीवन म एसा कोई काय नही किया आप यह कैंस कह सकत हैं ? है काई आधार आपक पास ? फज कीजिए—मुनीन ने आपका अपन बारे म कुछ नही बताया होता तो ?"

तो यह उसकी धोखाधडी हाती।"

"ठीक कहा आपने चाचाजी ! अब यह बतलाइए कि यह कौन कह सकता है कि रजन अपन बारे म कोई बात छिपा नही रहा है ?'

'वकीलो क समान बहस न करो, सरिता ! मैं बहस सुनने का आदी नही हू।"

"ता कान खोलकर सुन लीजिए चाचाजी ! मैं आपके टुकडो पर नही पल रही हू कि आप जैसा चाहें, वैसा मरे साथ सलूक करें ! अपने बाप की जायदाद पर बैठी हुई हू। मैं कोई पतिता नारी नहा हू कि एक को छोड दूसरे के हाथो की खिलौना बनू।'

'सरिता !' श्यामलाल जी चीख पडे।

"खूब चीखिए, खूब चिल्लाइए—आपकी चीख पुकार यहा की दीवारो के अलावा और कौन सुनने वाला है !

'सरिता, यदि यह जानता कि तुम अपने पालने वाले के साथ एसा बरताव करोगी, ता मैंने भी भाई साहब के समान कब का यह ससार छोड दिया होता। लेकिन इतना समझ लो बेटी कि जब मैंने वचन दिया है तो बारात जरूर आएगी, बेटी !"

एक नहा, दस बारातो को निमन्त्रित कर दीजिए, मैं कौन होती हू उसे रोकने वाली ! तब इतना जरूर कहे देती हू कि उस मौके पर दुल-हन की कमी पर बिठाने के लिए 'सरिता' ता आपको मिलेगा नही—इसलिए अपनी नाक बचाने का किसी वनिता की तलाश किए रहिएगा !'

और वह झटके के साथ मुडकर दरवाजे पर पहुची।

वहा खडा कण 'बाबा मनीजी' का यह सवाद परिमवा सुन

सरिता उसका हाथ थामती हुई बोली—"आओ, चलें !"

सुनील तुम्हारे साथ नही जाएगा सरिता !' श्यामलालजी रोष मे बोले ।

सुनील जरूर जाएगा चाचाजी ! और बारात का निमत्रण-पत्र भिजवा दीजिएगा, हम दोनो समय से आकर जनवास मे शरीक हो जाएगे । बोलकर वह सुनील को साथ ले, अपने कमरे मे चली गई ।

श्यामलाल जी की दशा इस समय एक ऐसी लकडी पर बठे हुए कीडे जसी थी जिसके दोनो छोरो पर अग्नि धधक रही हो।

(कविता संग्रह 1980)
[illegible] (कविता संग्रह 1981)
(कविता संग्रह 1984)
, सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

पन्द्रह

सेठ नीनदयाल बबई क गण्यमान्य लागा मे स थे। सेठ श्यामलाल जी से मिलकर उन्होन रजन और सरिता के विवाह का मुहूत निकलवा लिया था। इस मौके पर उ होन लगभग सभी तरह क—सभी तबके क लोगा का अधिक स अधिक सख्या मे निमत्रित किया था। सेठजी के निमत्रण पर बबई के प्राय सभी मिलो के मालिक बारात म शरीक होने क लिए आए। सेठजी न सबकी आवभगत कर उन्ह सम्मान का आसन दिया। उसी कमरे म रजन भी बैठा हुआ था।

रजन क विवाह म शरीक होन क लिए आए 'दसाई कॉटन मिल' क मालिक की निगाह अचानक उसकी आर गई। रजन इस समय पूरी तरह स दूल्हे के ठाट-बाट म था। उसकी ओर गौर स दखत हुए मिल मालिक ने कहा—"वसत।"

वसत ने यह कल्पना न की थी कि 'दसाई कॉटन मिल' का मालिक भी यहा आ पहुचेगा और न ही मिल मालिक ने यह सोचा था कि वह जिसकी शादी म शरीक होने जा रहा है, वह रजन ही वसत है।

मिल मालिक न वसत को अच्छी तरह पहचान लिया था। उसके 'वसन' कहकर बुलाने पर रजन न कोई जवाब न दिया। उसकी मना दशा विचित्र सी हो चली। इसस दूसरे निमत्रित अतिथिया का कुछ सन्देह सा हुआ। रजन मिल मालिक की दृष्टि का सामना नहीं कर पाया। वह उठकर बरामदे की ओर जान लगा तब दूसरे अतिथिया न उसस

वहीं वठन का कहा। लेकिन उससे बैठा नही गया। उम भय हुआ कही यह मिल मालिक लोगो म यह न कह द कि 'यह रजन नही वसत है, जो किसी समय उसकी मिल का महाप्रबधक था, और अपने पद का दुरुपयोग कर इसने एक लाख रुपया का गबन किया। इससे उसकी सारी प्रतिष्ठा लोगो क सामन मिट्टी म मिल जाएगी। तब यह भी सभव है कि सेठ दीन दयाल जी को जब इसका पता चले तो उनकी नजरो म भी गिर जाए।

रजन के पीछे पीछे ही मिल मालिक भी बरामदे मे चला गया और बोला—"वसत, तुम्हारे चेहरे पर यह उदासी क्यो? इस उदासी का कारण कहा मेरा यहा आना तो नही है?

नही, सेठजी! ऐसी बात नही है। लेकिन आपसे एक निवेदन है, मुझे यहा वसत न कहो। सब मुझे रजन क नाम स जानते-पहचानते हैं। मैं क्या था और समय का बहाव मुझसे क्या कराने को बाध्य कर रहा है यह मैं भी नही समझ पा रहा हू।

तो यहा हम तुम्हें क्या कहें?"

रजन सिर्फ रजन! बस आपने ठीक ही पहचाना। मैं वसत ही हू। लेकिन इस नाटक म मुझे रजन बनना पडा है। इसलिए आपसे मिन्नत है कि यहा आप मुझे वसत न कहे।

किसी काम के सिलसिले म रजन की खोज करते हुए सेठ दीनदयाल जी बरामदे की ओर आ रहे थे, लेकिन मिल मालिक और रजन का वार्तालाप सुनकर वह दरवाजे की ओट म खडे हो गए। दब कानो से उन्होंने दोनो की बात सुनी और कनखियो स देखते हुए दूसरी ओर निकल गए। वसत ने यह बात भी भाप लिया कि सेठ दीनदयाल ने उसकी और मिल मालिक के बीच हुई सारी बातें सुन ली है। उसने दुख और क्षोभ से अपना हाथ सिर म लगाकर मुह नीचे कर लिया।

"नकी यह अजीबोगरीब उदासी देखकर सेठ दीनदयाल जी और

/ /.

का साए हुए
(कविता संग्रह 1980)
का कवि हूं (कविता संग्रह 1981)
(कविता संग्रह 1984)
सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

मिल मालिक ने एक ही साथ भिन भिन नामो म उम पुकारा—"वसत !"

"रजन !"

अपने नाम को दो व्यक्तिया द्वारा एक ही साथ दो विपरीत स्वरा म पुकारे जाने से वसत क हृदय को गहरी चोट पहुची। वह स्वय को निर्जीव सा अनुभव करने लगा। उसकी आखा के आगे एक बार फिर वही पुरानी तसवीरें बनन बिगडने लगा। वह चिंतित हो गया—यद्यपि सुनील ने देसाई मिल के मिथ्या इल्जाम से उस कलकित हान से बचा लिया था, लेकिन मिल मालिक के भय के भूत ने उसका पीछा अभी तक नही छाडा था और उसे कलकित करने के लिए यहा तक आ पहुचा था।

उसने बरामद के एक कान म खडे सेठ दीनदयाल जी स कहा—'पिताजी, आप क्यो परेशान हो रहे हैं, आराम कीजिए न। इधर का काम तो मैं देख ही रहा हू।

रजन के आश्वस्त करन पर सठ दीनदयाल जी चिंतित मुद्रा म विश्राम-कक्ष म चले गए। यद्यपि व इस रहस्य को पूणत नही समझते थे, किंतु उनके मन मे आशका और अविश्वास के अकुर तो पनप ही गए थ।

सठ दीनदयाल जी के जाने के बाद वसत न मिल मालिक दसाई स कहा—"सेठ जी, वैसे तो आपकी निगाह म मैं आज भी आपका गुनाहगार हू, लेकिन आज भी मरे शब्द वही हैं जो उस दिन थे। मैंन रुपए का गबन नही किया। गाडी खरीदी थी यह सच है, लेकिन मरे विरोधियो न मरे साथ दगा किया और आपन उनके कहने पर विश्वास कर लिया। ठीक है, यदि आज भी आप गुनहगार समझत हैं तो मैं अपने को आपका गुनहगार मानता हू। लकिन, प्रतिशाध लेने की ता और भी कोई रीति हा सकती था, और भी जगह हो सकती थी—और भी समय हा सकता था। लेकिन यहा और विशेषकर एस समय जब !'

'तुम्ह दृष्टि भर देखना, तुमसे अपनो की सी बातें करना प्रतिशोध है क्या ? नहा, वसत ! वह ज्वाला तो कभी की जल जलाकर शात हो गई ।

आपकी महरबानिया ने मुझे जेल यात्रा करने पर मजबूर किया। छुटकारा मिलन पर यदि किसी तरह सिर छिपाने को यहा जगह मिली ता आपन यहा भी कृपा दृष्टि की । अच्छा ही रहा !

'मैंने यह कभी नही सोचा था कि तुम यहा होगे। मेरा कुछ कहना ही तुम्हें उदास होने को विवश करेगा, यह मैं नहा जानता था, मुझे इसके लिए खेद है। मैं आज सचमुच तुम्हारे सामने अपने का छोटा महसूस कर रहा हू ।

आप अपने को छोटा महसूस कर रह हैं यह आपका बडप्पन है। लेकिन मैं अपन मुह स आपको छोटा कहकर कभी अपमानित नही कर सकता—परन्तु मैं आज यहा इतना छाटा अवश्य हो गया कि अपनी ही नजरा म गिर गया।'

"यहा मैं रग म भग डालने कभी नहो आया था। मुझे इस बात का अफसोस है, वसत ! मैंने गगाजल म शराब की एक बूद डालकर तमाम घट अशुद्ध कर दिया।'

'सठ जी, गगाजल तो सदव ही पवित्र रहता है। यह तो मनुष्य की ओछी धारणा का प्रतिफलन है, जो आपन ।

'अच्छा भाई, इस समारोह म चला जाना ही मैं बेहतर समझता हू।' और मिल मालिक ने बाहर जान के लिए कदम उठाए।

वसत ने शीघ्रता म उनका हाथ पकड लिया और कुरसी पर बैठ जान को मजबूर किया और बाला—"एक न एक दिन इस छद्मोत्सव, इन झूठी शहनाइयो की कलई ता खुलनी ही थी, सा आज ही ।'

'और इसका कारण हू मैं ।'

(कविता संग्रह 1950)
जनपद का कवि हूं (कविता सग्रह 1951)
(कविता संग्रह 1954)
पद, सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

'और मैं कर्त्ता ।'' झुनलाकर बोला वसत और उठकर अपने कमरे म आ गया । उसने आखिरी बार बडे ध्यान से अपने कमरे म चारा ओर देखा । टेबिल पर रखे दपण म बार-बार अपने दूल्हा रूप का देखा । उसने विवाह न करने का निश्चय किया । इस बात को उसने वडे स्वाभाविक और सहज ढग से लिया कि मिल मालिक दसाई के आने का मतलब है, गली गली मे प्रचारित होना कि वसत ने एक लाख रुपए का गबन किया है । यह खबर श्यामलाल जी और सरिता के काना तक पहुचे बिना नहा रहेगी । सभव है । दसाई ने किसी अन्य माध्यम स यह खबर अब तक वहा भिजवा भी दी हा । फिर यह जानने के बाद श्यामलाल जी इस विवाह का कैसे स्वीकार करेंगे या सरिता ही कैसे तयार होगी, आखिर उन्हें भी तो अपने मान सम्मान का कुछ खयाल तो होगा ही—इस घर म भी ता रहना अब कम खतरनाक नही है । सेठ दीनदयाल जी की मान प्रतिष्ठा पर भी कम धक्का नही लगेगा । लोग हसेंगे—उगलिया उठाएग । लोक-लज्जावश यह विवाह ता वह अवश्य करेंगे सरिता का डोला भी इस घर म आ जाएगा, लेकिन इसके बाद उनका वह स्नेह —वह प्यार कभी नही मिलेगा, जो देसाई के आने से पहले तक था ।

उसन गले का हार उतारकर टेबिल पर रख दिया और हाथ मुह साफ किया । वसत न एक बार सेठ दीनदयाल जी के कमरे की ओर देखा । व आंखें बद किए सो रहे थे । वसत धीरे धीरे कदम रखता दहरा लाघ बाहर आ गया । बाहर महमानो का आना जाना लगा हुआ था । दूल्हे का वश उतार दने म अब वह किसी अपरिचित महमान की निगाह म कभी नहा पड सकता था । हा, परिचिता से बचना मुश्किल था । इसीलिए यह जल्दी-से जल्दी बादरा म बाहर हा जाना चाहता था । जल्दी म एक तिपहिया स्कूटर लिया और चल पडा बी० टी० ओर ।

इसके कुछ ही दर बाद सठ दीनदयाल जी की नीद खुली। वह बिस्तर से उठे और मेहमानो क कमर मे आए। वहा सभी उपस्थित थे, लेकिन रजन उह कही नही दिखा। वह तेजी स रजन के कमरे म आए, लेकिन वहा भी उ ह कमरा खाली मिला। दो एक नौकरो से उ होन मकान के भीतर बाहर भी खाज कराई लकिन रजन का कही पता न चला। फिर ता वह समझ गए कि वह कही चला गया। यह खबर कानोकान मेह-मानो और फिर घर क भीतर तक पहुच गई। फिर तो वातावरण मे एक खलबली सी मच गइ। निमत्रित अतिथियो म विस्मय और आश्चय याप्त था। सठ दीनदयाल जी की हालत विचित्र-सी हो गई। लागो के सामन व शम से गडे जा रह थे। फिर उ होन एक दीघ सास छोडत हुए मन-ही मन यह कहकर सतोष कर लिया कि ऐसा तो एक दिन होना ही था। फिर वे कमरे म अतिथियो के सामन आए और उनके आगे हाथ जोड-कर बडी मुश्किल स सिफ इतना ही कह सके— 'मैंन आप लोगो को परेशान किया, इसका मुझे हार्दिक खेद है। फिर भी आप सब भोजन पाकर ही यहां से जाएग।'

इतना कहकर वे सिर झुकाए पुन शयनकक्ष मे चल गए।

स्टेशन पहुचकर वसत न शिमला का एक टिकट लिया। उसकी इच्छा अब सीधे सुनील से मिलन की थी। उस पूरी उम्मीद थी कि सुनील जब उसके जेल स छूटने पर मिलने नही आया तो इसम दो राय नही कि वह सीधे 'नहरू उद्यान शिमला गया होगा अपनी नौकरी पर और इस समय वह वही पर हागा। शिमला की ओर जान वाली गाडी म अभी काफी समय था, करीब तीन घटे स कुछ ऊपर ही। प्लटफाम पर एक जगह बठे-बठे उसका मन जब ऊब गया तो वह इधर उधर घूम फिरकर चहलकदमी करने लगा। घूमत घूमत वह प्लटफाम क अतिम छार तक चला गया। दिन पूरी तरह ढल चुका था, और रात्रि की कालिमा स धरती

(कविता सग्रह 1960)
का कविता (कविता सग्रह 1981)
न (कविता सग्रह 1974)
, नगर दि इविहार, सागर—470001

और आकाश धीरे धीरे ढकने लगे थे। प्लेटफार्म का अंतिम छोर होने से बिजली का खम्भा यात्री बेंच से कुछ दूर था, इसलिए वहां रोशनी बहुत ही मद्धिम पड रही थी। वसंत ने दूर से देखा उस बेंच पर सिर्फ दो मुसाफिर बैठे हुए हैं, बाकी जगह खाली है। वह अंधेरे में डूबे इसी बेंच पर बैठना चाहता था, जिससे कि यदि सेठ दीनदयाल के आदमी यदि उसकी खोज में आए तो उसे पा न सकें।

वसंत ने मन ही-मन सोचना शुरू किया—यदि वह सेठ के बंगले पर होता तो अब तक बारात रवाना हो गई होती, लेकिन अब, जब वह वहां से चला आया है तो बारात जाने का सवाल ही नहीं उठता है।

इस प्रकार मन में कभी सेठ दीनदयाल तो कभी श्यामलालजी और सरिता— तो क्षण में ही शिमला और सुनील के बारे में सोचने लगता। इस तरह विभिन्न प्रकार के विचार और विभिन्न प्रकार की कल्पनाएं करता वह बेंच पर बैठे उन दोनों मुसाफिरों की पीठ पीछे बेंच पर जो पूरी तरह खाली थी, आकर बैठ गया। कुछ क्षण बैठे बैठे जब आलस्य सा महसूस होने लगा तो वह बेंच पर टांगें फैलाकर पसर गया। वे दोनों मुसाफिर जो बेंच के सामने वाले हिस्से में बैठे थे, उनमें से एक स्त्री थी और दूसरा पुरुष। उनकी बातचीत से जान पड़ता था कि परस्पर दोनों में भाई बहन का रिश्ता है। अब तक की उनकी बातचीत से यह भेद निकालना मुश्किल था कि उनकी बातें किस समस्या को लेकर हो रही हैं। इसीलिए वसंत ने उनको या उनकी बातचीत की ओर कुछ विशेष ध्यान न दिया। लेकिन इस बार पुरुष की आवाज ने उसे कुछ चौंका-सा दिया— 'रजनी, तूने तो अच्छी तरह पता लगा लिया है न? नहीं तो हम पर पुलिस की निगाह यों ही लगी हुई है।'

'भैया, हमने अच्छी तरह पता लगा लिया है, इस समय वह निकलकर अभी शिमला नहीं गया। वैसे भी अब वह शिमला नह

मैं उसकी तलाश म दो साल पहले जब शिमला गई थी, तो वहा जाने पर पता चला कि वह अपने दोस्त वसत से मिलने, जो इस समय जेल म है नौकरी छोडकर बबई गया है।

"मैं शिमला से लौटकर फिर बबई आई उसकी तलाश म। यहा पर उसे मैने देखा जरूर, मगर मौका नहीं मिला कि उस रास्ते से हटाती। वह अधिकाश समय श्यामलाल जी की कोठी पर मेरी सहेली सरिता के साथ बिताता था। लेकिन सरिता के घर पर मैं उसे मारना नही चाहती थी क्योंकि सरिता के मेरे ऊपर अनेक ऐसे एहसान हैं जिनका मूल्य चुकाना मेरे लिए सभव नहीं है। हा, दो-एक बार वसत के मुकदमे के सिलसिले म हाईकोर्ट और जेल के गेट पर जरूर देखा, लेकिन ये जगहे ऐसी थी, जहा हर समय पुलिस का खतरा मौजूद रहता था।

"कुछ दिनो बाद मैंने उस वकील से भी मुलाकात की थी, और अपने को सुनील की बहिन बताकर मैंने सारा कच्चा चिट्ठा उससे पा लिया था। वकील के ही द्वारा पता चला कि वसत को छुडाने के लिए सुनील ने उसके सारे जुर्म का इकबालिया बयान देकर अपने ऊपर ले लिया और वसत के बदले स्वय दो साल की सजा भोगने को जेल चला गया। जिस दिन वसत की मुक्ति हुई, उसी दिन वसत के छूटने के कुछ समय बाद पुलिस ने उसे जेल भिजवा दिया। इससे यह भी साफ जाहिर है कि वसत की मुलाकात अभी तक सुनील से नही हुई है। लेकिन आज सभव है दोनो की मुलाकात हो जाए।"

'वह कैसे ?

'सरिता जो मेरी सहेली है उसकी शादी सुनील से होने वाली थी और सरिता आज भी दिल से सुनील को प्यार करती है, लेकिन सुनील अभी मुश्किल से एक हफ्ता हुआ दो वर्ष की सजा काटकर जेल से बाहर आया है। वह छूटते ही सबसे पहले सरिता से मिलने गया। वहां उसने

(कविता सग्रह 1950)
का कवि हूँ (कविता सग्रह 1951)
(कविता सग्रह 1954)
मुद्रक वि विद्यामदिर प्रेस गाजर—4,0003

सरिता के चाचा श्यामलाल जी को माफ बतला दिया कि वह वसत के
अपराध को स्वय अपने ऊपर ले लेन के कारण दो साल का कारावास-दड
भोगकर आ रहा है। श्यामलाल जी को यह बात बुरी लगी और उन्होन
सरिता की शादी रजन नाम के किसी युवक से तय कर ली। आज रजन
की बारात श्यामलाल जी के दरवाजे पर पहुच रही होगी। वास्तव म
यह रजन कोई और नही, बल्कि वसत है।"

"फिर तो यह खबर तू बडे मौके पर लाई। एक ओर शादी की
भीडभाड और दूसरी ओर रात का समय, अपने इन दोनों दुश्मनो को
आज एक ही साथ ठिकाने लगान मे कोई कठिनाई नही होगी।"

"लेकिन भैया, सब कुछ सावधान होकर करना है। मैं सरिता का
व्यक्तिगत नुकसान नही चाहती।

'तू फिक्र मत कर। लेकिन अब यहां से चल देना ही ठीक है,
क्योंकि जब तू कह रही है कि आज ही बारात चलने वाली है, तो हम भी
समय पर वहा पहुच जाना चाहिए।

योजना की रूपरेखा निश्चित कर लेने के बाद दोनो भाई-बहन
अपनी जगह से उठे और स्टेशन से बाहर हो गए।

वसन्त जो अब तक चुपचाप उनकी बातें सुन रहा था, उनके जाते
ही उछलकर बेंच से खडा हो गया। सुनील ने उसकी मुक्ति के लिए
इतनी बडी कुरबानी दी और उसे आज तक पता तक न चला! दोस्ती
का इससे बडा बेमिसाल उदाहरण और कौन-सा हो सकता है।
और एक यह है कि जिस दोस्त ने उसका इतना बडा कलक अपने
सिर पर लिया उसकी भावी पत्नी को उससे छीनने जा रहा था छी
छी, मैं यह क्या करने जा रहा था! एक हितचिंतक दोस्त के प्रति इतना
बडा प्रतिघात! आज उस दोस्त का जीवन सकट म है किसी भी
कीमत पर उसे बचाना ही होगा सुनील! मेरे मित्र! सावधान

मैं उसकी तलाश म दो साल पहले जब शिमला गई थी, तो वहा जाने पर पता चला कि वह अपने दोस्त वसत से मिलने, जो इस समय जेल मे है, नौकरी छोडकर बबई गया है।

मैं शिमला मे लौटकर फिर बबई आई उसकी तलाश म। यहा पर उसे मैंने देखा जरूर मगर मौका नही मिला कि उसे रास्ते से हटाती। वह अधिकाश समय श्यामलाल जी की कोठी पर मेरी सहेली सरिता के साथ बिताता था। लेकिन सरिता के घर पर मैं उसे मारना नही चाहती थी क्योंकि सरिता के मेरे ऊपर अनेक ऐसे एहसान है जिनका मूल्य चुकाना मेरे लिए सभव नहीं है। हा, दो-एक बार वसत के मुकदमे के सिलसिले मे हाईकोर्ट और जेल के गेट पर जरूर देखा, लेकिन ये जगहे ऐसी थी, जहा हर समय पुलिस का खतरा मौजूद रहता था।

'कुछ दिनो बाद मैंने उस वकील से भी मुलाकात की थी और अपने को सुनील की बहिन बताकर मैंने सारा कच्चा चिट्ठा उससे पा लिया था। वकील के ही द्वारा पता चला कि वसत को छुडाने के लिए सुनील ने उसके सारे जुर्म का इकबालिया बयान देकर अपने ऊपर ले लिया और वसत के बदले स्वय दो साल की सजा भोगने को जेल चला गया। जिस दिन वसत को मुक्ति हुई, उसी दिन वसत के छूटने के कुछ समय बाद पुलिस ने उसे जेल भिजवा दिया। इससे यह भी साफ जाहिर है कि वसत की मुलाकात अभी तक सुनील से नही हुई है। लेकिन आज सभव है दोनों की मुलाकात हो जाए।'

'वह कैसे ?"

"सरिता जो मेरी सहेली है उसकी शादी सुनील से होने वाली थी और सरिता आज भी दिल से सुनील को प्यार करती है लेकिन सुनील अभी मुश्किल से एक हफ्ता हुआ दो वर्ष की सजा काटकर जेल से बाहर आ है। वह छूटते ही सबसे पहले सरिता से मिलने गया। वहा उसने

[illegible]
(कविता संग्रह 1980)
समय का अबिंदु (कविता संग्रह 1981)
(कविता संग्रह 1984)
[illegible] विश्वविद्यालय, सागर—470003

सरिता के पापा श्यामलाल जी को साफ बतला दिया कि वह बसंत के अपराध को स्वयं अपने ऊपर ले लेने के कारण ही मात का कारावास-दंड भोगकर आ रहा है। श्यामलाल जी को यह बात बुरी लगी और उन्होंने सरिता की शादी रजत नाम के किसी युवक से तय कर ली। आज रजत की बारात श्यामलाल जी के दरवाजे पर पहुंच रही होगी। वास्तव में यह रजत कोई और नहीं, बल्कि बसंत है।

"फिर तो यह खबर तू बड़े मौके पर लाई। एक ओर शादी की भीड़भाड़ और दूसरी ओर रात का समय, अपने इन दोनों दुश्मनों को आज एक ही साथ ठिकाने लगाने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

'लेकिन भैया, सब कुछ सावधानी से करना है। मैं सरिता का व्यक्तिगत नुकसान नहीं चाहती।'

'तू फिक्र मत कर। लेकिन अब यहां से चल देना ही ठीक है, क्योंकि जब तू कह रही है कि आज ही बारात चढ़ने वाली है, तो हम भी समय पर वहां पहुंच जाना चाहिए।

मानना की इच्छा निश्चित कर लेने के बाद दोनों भाई-बहन अपनी जगह से उठे और स्टेशन से बाहर हो गए।

बसंत जो अब तक चुपचाप उनकी बातें सुन रहा था, उनके जाते ही उछलकर बेंच से खड़ा हो गया। सुनील ने उसकी मुक्ति के लिए इतनी बड़ी कुरबानी दी और उसे आज तक पता तक न चला! दोस्ती का इससे बड़ा बलिदान उदाहरण अब और कौन-सा हो सकता है। और एक यह है कि जिस दोस्त ने उसका इतना बड़ा कलंक अपने सिर पर लिया, उसकी भावी पत्नी को उससे छीनने जा रहा था छी छी, मैं यह क्या करने जा रहा था! एक हितचिंतक दोस्त के प्रति इतना बड़ा प्रतिघात! आज उस दोस्त का जीवन संकट में है, किसी भी कीमत पर उसे बचाना ही होगा सुनील! मेरे मित्र! सावधान

रहना मेरे दोस्त ! हत्यारिणी रजनी और उसका भाई अनिल, जिनका सिर से पाव तक लूट हत्या-चोरी डकैती जसे जघन्य अपराधो मे डूबा हुआ है, आज ये उसको भी बख्शने को राजी नहीं हैं जिसने इनके परिवार के लिए अपना सब कुछ दाव पर लगा दिया। कैप्टेन परिवार के लिए सुनील ने क्या नही किया ! कितनी बार इज्जत बचाई रजनी की ! जीवन भर इनकी मा का भरण-पोषण करता रहा—उसका यह प्रतिफल ! इन दोनो भाइ बहनो के ये नापाक इरादे मैं कभी सफल नहीं होने दूगा। सुनील जैसे दोस्त के लिए यदि मेरी जिंदगी कुठार की धार पर भी चढ जाए तो भी कम ही है। और श्यामलालजी को क्या हो गया जो वह आज दो दिलो को जुदा-जुदा रखने पर तुले बैठे है ? उनका भ्रम दूर करना ही होगा उन्हें बतलाना ही होगा कि गुनहगार सुनील नही वसल है। सुनील सदव निष्पाप रहा है और आगे भी रहेगा। धरती-आकाश का कोना कोना छान लेने पर भी उन्हें सुनील जसा दामाद न मिलेगा।

और गहरे सोच म डूबा पुन एक तिपहिया से रवाना हो गया 'श्याम भवन' की ओर।

[illegible]
(कविता मंदर 19[illegible]0)
[illegible] (कविता मंदर 1991)
(कविता मंदर 1954)
[illegible]—470003

कोई कसूरवार नही ठहरा सकता। मैंने पहले ही सचेत कर दिया था। मैं गुडिया तो नहीं कि एक हाथ से दूसरे के हाथ मे नाचती फिरू ! मैं नारी हू और नारी की इज्जत एक बार किसी के हाथ मे सौंपी जाती है, बार-बार नहीं ! मैं एक की हो चुकी हू, फिर मेरे दूसरे विवाह का सवाल कहा उठता है ? '

शादी का मुहूर्त निकला जा रहा था। कन्या पक्ष के मेहमान बारात की व्यग्रता से इतजार कर रहे थे। बारातियों के स्वागत के लिए सेठ श्यामलालजी की ओर से किसी तरह कमी नहीं रख छोडी गई थी। श्यामलालजी केवल अपने दोस्तो पर ही निर्भर न रहकर खुद भी चारो ओर दौड-धूपकर इतजाम की देख रेख और जहा कही कमी देखते अपनी क्षमतानुसार दिशा निर्देशन कर रहे थे।

बारात सध्या के सात बजे दरवाजे पर पहुचने वाली थी। साढे आठ बजे विवाह का मुहूर्त था। लेकिन दस बज जाने पर भी न तो बारात का पता था और न कोई सदेश मिला था। पहले तो घडी-दो घडी के विलब तक उन्होंने यही सोचा था कि शादी विवाह जैसे रस्म रिवाज मे अनेक तरह की बाधाए आती हैं सभव है किसी तरह की अडचन आ गई हो और इसी कारण देर हो रही है। लेकिन विलब का समय जब सीमा पार करने लगा तो उन्हे चिता ने आ घेरा। वह फोन के पास बैठकर सेठ दीनदयाल जी का नम्बर टायप करने लगे। लेकिन जब जब नम्बर मिलाते, लाइन एगेज्ड मिलती। अनेक प्रयत्न करने पर भी जब फोन पर किसी से सपर्क न हो सका तो उन्होंने सेठ दीनदयाल के यहां पता लगाने के लिए आदमी भेजा।

सदेशवाहक के जाने के प्राय आधा घटा बाद एक बार आकर श्याम-

[illegible] ([illegible] 17 [illegible])
[illegible] 19[illegible])
[illegible] ([illegible] 1941)
([illegible] 1954)
[illegible] विश्वविद्यालय, सागर—[illegible]

भवन के रवाजे पर रुकी। श्यामलाल जी न यह मोचकर कि शायद कोई ऊचे तबके का अतिथि आया है उसको सम्मानसहित भीतर लिवा लाने के लिए इन्होंने आदमी भेजा। लकिन वह भीतर नही आया। उसन पाच स मिनट के लिए श्यामलालजी को ही अपन पास बुलवाया। खबर पाकर व लपकत हुए बाहर आए। उस समय श्यामलाल जी के साथ उनक दो चार अभिन्न मित्र भी साथ आ गए थे। श्यामलाल जी को देखत ही कार मे बैठा व्यक्ति बाहर निकल आया। उसकी वेश भूषा स ही लगना था कि वह कोई ऊचे और सपन्न घरान स सबध रखनवाला व्यक्ति है। आयु सीमा यही कोई पतालीस पचास क आसपास थी। वह खड ही श्यामलाल जी के निकट आया और बोला—"सेठ श्यामलालजी, आज आप काफी व्यस्त हैं यह मुझे मालूम है, लेकिन आपको एक सदश देना जरूरी था इसलिए मैंन आपको कष्ट दिया। आप मुझे नही पहचानत हैं लकिन मैं आपको जानता हू। आपन सर देसाई कालीदास का नाम सुना होगा जो आपके बडे भाइ के निकटवर्ती मित्रो म स थ ?

"जी हाँ ! जी हा ! खूब अच्छी तरह म जानता हू उन्ह।

"आप यह भी जानत होग कि सर देसाइ तो अब रह नही लकिन मैं उनका बडा लडका मनहर देसाई हू, देसाई काटन मिल का मालिक।

"ओह, यह तो मरा सौभाग्य है कि आपन दशन दिए। फिर भीतर चलिए न ! सर देसाई जी न हमार भाई को अपन छोट भाई का स्थान दे रखा था। लेकिन ? '

"मैं अच्छी तरह से पिताजी और आपके घरान क बीच क सबधो स परिचित हू, तभी तो आना पडा। मनहर देसाई न कहा।

'तो पधारिए न ! जिस कन्या की शादी हो रही है, वह आपक पिताजी के मित्र की लडकी है, मेरा भतीजी सरिता। वह आपकी छोटी बहन है, देसाई साहब। बडे भाग्य म आज एक बहुत बडी कमी पूरी हो

गई आज मरिना का बड़ा भाई आ गया इस आशीर्वाद देने।

मैं आपका अनुरोध स्वीकार करता हूं लेकिन पहले आप अकेले में मुझे पांच दस मिनट का समय दें, बात बहुत जरूरी है।'

आप लोग बुरा न मानें तो ? श्यामलाल जी साथ आए अपने हितचिंतक मित्रों की ओर मुखातिब हुए।

'जरूर जरूर ! मित्रों ने कहा।

और फिर मनहर दमाई को लेकर श्यामलाल जी अपने शयन-कक्ष में चले गए जिसमें वह कभी किसी को आने जाने नहीं देते थे।

कमरे में बैठते हुए दमाई ने कहा— मैं आज सवेरे ही विदेश से घर लौटा। आते ही मेरे सेक्रेटरी ने सेठ दीनदयाल जी का निमंत्रण पत्र मेरे हाथ में पकड़ाया। यद्यपि यात्रा से परेशान था इसीलिए आराम करना चाहता था। लेकिन दीनदयाल जी की प्रतिष्ठा से तो आप भी परिचित ही होंगे।

लाजिम यह भी कोई कहने की बात है ?

हां तो इसीलिए आना जरूरी हो गया। आज दूसरे पहर जब मैं दीनदयाल जी के घर गया तो ' मनहर दमाई रुके। दरवाजे की ओर देखकर बोले— दरवाजे पर शायद कोई परदे की ओट में हमारी बातें सुन रहा है।

श्यामलाल जी उठे-हां वह तुरंत बोले—' कौन है ?

उनकी आवाज सुनते ही अपना परदा हटाकर सामने आई— मनोरमा तुम ? क्या काम है ''

माफ कीजिएगा बाबूजी ! मैं अपने समय पर । और उसने साथ लाई चाय की ट्रे उनके सामने टेबिल पर रखी। श्यामलालजी तुरंत बोले— अरे मां फिर तू क्या लाई ?

बाबूजी, मुझ तो कुछ पता नहीं था न ? अभी लाई।

बोलकर वह जाने लगी तो श्यामलाल जी बोले—"सरिता तैयार हो गई।"

"अभी नही, बाबूजी ! मेरी कुछ सुनती नही।'

"कैसी मा हो ? तुमने बचपन से पाला पोसा, लेकिन आज तुम्हारी ही बात नहीं मान रही है !"

"और सुनील !"

"बाबूजी, वह लडका आज सवेरे से समझा रहा है, लेकिन बिटिया ने उसे भी झिडक दिया। वह बेचारा तो मन-ही मन खुद दुखी और परेशान है।'

"क्या बात है ? क्या हो गया सरिता को ?" पूछा मनहर देसाई ने।

"देसाई साहब, यह लबी कहानी है। वक्त लगेगा आपको सुनने म। अभी तो इतना ही जानना आपके लिए काफी है कि वह इस शादी से इनकार कर मरी नाक कटान पर तुली है। जब आप आ गए हैं और सबध आपका उसमे भाई का है, आप ही समझाइए न !"

'आया, तुम सरिता को भी साथ लेती आओ।'

"जी, साहब !"

आया तुरत भीतर चली गई। कुछ देर बाद काफी लेकर आई तो उसके पीछे पीछे सरिता भी थी, विशुद्ध वधव्य के लिबास म सफेद वस्त्र पहने।

उसन आते ही दोनो हाथ जोडकर दसाई को प्रणाम किया। श्यामलाल जी सरिता से उनका परिचय कराने ही जा रहे थे, तो देसाई न उन्हें रोक दिया—' आप इसे मरा परिचय न दीजिए ! बातचीत के म मेरा परिचय इसे स्वत ही मिल जाएगा। फिर सरिता की बात— बठ जा, बहन।'

सरिता बैठ गई। काफी देकर आया तुरन्त कमर स

गई। मनहर दसाई अपनी बात जारी रखते हुए आगे बोले—"हाँ, तो मैं कह रहा था— दूसरे पहर में दीनदयालजी की कोठी पर पहुँचा। वहाँ मैं एक ऐसे युवक को देखकर चौंक पड़ा जिसने कभी, जब वह मेरी मिल का प्रधान मैनेजर था—एक लाख रुपए का गबन किया था। वह दीनदयाल जी के यहाँ छद्म नाम से उनकी फर्म का प्रबंधक बन गया था। सेठ दीन-दयाल और उनके सारे परिवार को उसने अपनी मेहनत और लगन से मोह लिया था। उसके इन्हीं गुणों के कारण सेठ और उनका परिवार उसे अपना बेटा समझने लगा था। मुझे वहाँ उपस्थित हुआ देखकर उस युवक का चेहरा फक पड़ गया। मैंने जब उसका असली नाम लेकर पुकारा तो वह मेरे पास आकर मिन्नत करने लगा—

सेठजी, आपको बदला ही लेना है तो दो भी ले सकते हैं लेकिन इस समय इतने मेहमानों के सामने मेरे असली नाम से पुकार मुझे जलील न करें—हँसी खुशी के इस मुहूर्त को बरबाद करने के लिए रंग में भंग न घोलें।

लेकिन तीर हाथ से निकल चुका था। मैंने उसका नाम तो पहले ही ले लिया था। वहाँ उपस्थित लोगों में हलचल मच गई। सेठ दीन-दयाल जी को भी कुछ कुछ सन्देह-सा उस युवक पर हो चला। युवक इस स्थिति में पहुँच चुका था कि किसी को अपना चेहरा नहीं दिखला सकता था। मनहर दसाई कुछ दम लेने को रुके और उन्होंने प्याले में पड़ी शेष काफी समाप्त की।

श्यामलाल जी ने पूछा— फिर ?'

"फिर क्या ? लज्जा और ग्लानि में वह युवक पानी-पानी हो गया और मौका पाकर मेहमानों के बीच से खिसक गया।

"मतलब ?

मेरे छोड़कर तुरंत वहाँ चला गया। वहाँ गया, किसी को मालूम

[illegible]
([illegible] 1933)
[illegible] ([illegible] 1951)
([illegible] 1954)
[illegible]

नहा।"

'वह युवक कौन है ? क्या नाम है उसका ?' श्यामलाल जी ने पूछा।

"युवक का असली नाम तो है वसंत ! दीनदयाल जी का बेटा रंजन !'

चौंक पड़े श्यामलाल जी और चौंकी सरिता ! श्यामलाल जी की तो बोलती ही बंद हो गई। मनहर दसाई स्थिति को बिगड़ने से बचाने के लिए बोले—"मैं आया था यही कहने कि आप समाज में भयंकर बदनामी से बच गए। बारात आपके यहां नहीं आएगी। अब जो स्थिति आपके दरवाजे पर है और इतने सारे मेहमान यहां एकत्र हैं उन्हें संभालिए।

'लेकिन मैंने तो सुना था वह युवक निर्दोष था। एकदम निर्दोष।' सरिता बोली।

"बहन, यह भेद भी मुझे मिला ! वह सचमुच निर्दोष था या नहीं मैं इस बारे में आज भी सन्देह में हूं। लेकिन उस समय, चूंकि मेरे रुपए डूब चुके थे— इसलिए मैंने कुछ विचार नहीं किया, और उसके विरोधियों की बातों में आकर उस पर मुकदमा दायर कर दिया। विरोधियों ने जो दलील पेश की, जो प्रमाण दिए—वसंत उनको झूठा साबित करने में एकदम असमर्थ रहा, इसीलिए कोर्ट ने उसे अपहरण और गबन के केस में दो वर्ष की सजा सुना दी। लेकिन उसने दो वर्षों की सजा की अवधि जेल की पूरी नहीं की। एक दिन मेरी मुलाकात आपके वकील मिस्टर चतुर्वेदी से हुई, जिन्होंने हाई कोर्ट में उसकी अपील दायर की थी। उन्हीं से पता चला—वसंत के छूटने की उम्मीद बिलकुल न थी—तब उसके किसी दोस्त ने निरपराध होते हुए भी सारा दोष अपने सिर ओढ़ लिया और परिणामस्वरूप उस बेगुनाह को दो वर्ष कारावास का भोगना पड़ा और इस प्रकार वसंत को मुक्ति मिल गई। मैं नहीं जानता वसंत का वह मित्र

कौन था लेकिन इतना जरूर कहूंगा कि वसंत का वह मित्र निहायत ही ऊंचे विचारों का एक भद्र इंसान था। ऐसे गुण तो किसी देवपुरुष में ही हो सकते हैं। काश मैं उससे मिल सका होता !

इस बार दसाई ने सरिता की ओर देखा जो गुमसुम सारा इतिहास सुन रही थी। बोला— और बहन, इस विवाह से तुम क्या इंकार कर रही हो ?

भाई साहब आपने सारा इतिहास तो सुना दिया। मैं वसंत से शादी कर नहीं सकती थी लेकिन चाचाजी को वही पसंद था जिसके लिए उन्होंने इतना बखेड़ा खड़ा कर रखा है। और जिस युवक को आप देव पुरुष कह रहे हैं— भद्र और सच्चा बतला रहे हैं गांधर्व रीति से वह मेरा स्वामी बन चुका है— मैं उसके चरणों में पत्नी रूप में समर्पित हो चुकी हूं—लेकिन चाचाजी उससे मेरा संबंध मंजूर नहीं कर रहे हैं! अब आप ही बतलाएं मैं क्या करूं ? मैं कोई खिलौना तो नहीं कि एक हाथ से निकल कर चली जाऊं दूसरे के हाथ में उसका मन बहलाने! मैं एक भारतीय नारी हूं—और भारतीय नारी जब एक बार किसी को अपना मान लेती है तो फिर उसी की होकर रहती है।'

चाचाजी क्या बात है ? बहन के विचार बुरे तो नहीं हैं! मनहर दसाई ने श्यामलाल जी से कहा—'आप इसे मत रोकिए।

"अब मेरा फैसला रहा ही कहां, दसाई ? अब तो फिक्र लगी हुई है, इज्जत कैसे बचाऊं ?'

क्या अभी जिक्र ही क्या है ? सरिता ने जिसका चुनाव किया, वह लड़का इस समय कहां है ?' दसाई ने पूछा।

भाई साहब वे मेरे पास हैं—मेरे कमरे में। चाचाजी की चली होती तो वे कब के चल गए होते। लेकिन मैंने उन्हें रोक रखा है। वे आज [illegible] से परेशान हैं— रात हो रही है, दुखी होने के कारण उन्होंने सवेरे से

/
/

[illegible] 1940)
का [illegible] ([illegible] 19 1)
([illegible] 1941)
[illegible] —47/3)

अन का एक दाना भी अपनी जबान पर नही रखा।'

श्यामलाल जी चौंके—'तो सुनील भूखा है ?'

'हा, भूखे हैं। और आप जानते ही हैं कि व अगर भूखे हैं तो मुझ को खाना पीना कहा अच्छा लगेगा ?'

"इसका मतलब है, तुम दोनो ही भूखे हो!" श्यामलालजी पछताव के स्वर म बोले—"और इसके लिए कसूरवार हू मैं! बेटी, मुझे माफ कर दे! एक बेटी के सामने पिता अपनी हार स्वीकार कर रहा है। तू जो चाहती है, वही होगा। जा जल्दी म तू भी कुछ खा ले और सुनील को भी खिला द। फिर विवाह का जोडा पहनकर तुम दोनो तयार हो जाओ—इसी मडप म सामाजिक रीति रस्मो के अनुसार हम, तुम दोनो को एक सूत्र म बाध देते हैं।' श्यामलालजी आसू पोछते हुए बोले।

'यह हुई न बाई बात! जा, बहन! जल्दी कर बहुत देर हो चुकी है।" दसाई प्रसन्न होकर बोले।

सरिता के आनद की सीमा न रही। वह आया मा! आया मा!!—सुनील!—सुनील!!' पुकारती, लपटकर भीतर की ओर भागी।

मडप म विवाह की वेदी पर दुल्हन के रूप म सजी-संवरी बैठी थी सरिता और उसकी बगल म दूल्हा बना बैठा था सुनील। पडितो का मत्र-पाठ विधिवत जारी था। पिता की हैसियत स कन्यादान का फर्ज अदा करने को तत्पर खडे थे श्यामलाल जी। बाहर लॉन म बैंड बाजो और शहनाइयो की मधुर आवाजें दर्शको और मेहमानो को आत्मविभोर किए हुए थी। बाहर से लेकर भीतर मडप तक लोगो का मजमा लगा था।

पडितो न श्यामलाल जी का नाम लिया कन्यादान के लिए। इसी की प्रतीक्षा म वव स खडे थ। पुकार होते ही वेदी पर जा

विधिवत पिता का फर्ज निभाया। पंडितों ने दुल्हन और दूल्हा को अग्नि-देव के फेरे का आदेश दिया और दोनों के वस्त्रों को खींच गांठ लगा दी। आगे आगे सुनील और उसके उठते कदमों का अनुकरण करती हुई सरिता अग्निदेव के चक्कर काटने लगे। छह पूरे कर चुके थे। मंजिल का अंतिम छोर मानवा पूरा होने वाला था। इसी समय अचानक भीड़ में हलचल-सी मची। भाग-भाग चीखते चिल्लाते भागे—"डाकू-डाकू-डाकू भागो! भागो! भागो!" गिरते पड़ते, एक पर एक को कुचलते—चोट खाते लोग भागे।

तभी अचानक बिजली गुल हो गई—और रोशनी के जाते ही सुनाई पड़ा— धाय! धाय!! धाय!!!' फिर गुत्थमगुत्थी।

मंडप में गोली? सरिता भयभीत हो उठी उसके मुख से जोर की चीख निकली—"सुनील!"

बगल में ही खड़ा था सुनील—हाथ बढ़ाकर भयभीत हिरनी सी सरिता को अपनी बाहों में समेट लिया और बोला—"डरो नहीं, सरु! मैं पास हूं। अंधेरे के कारण कुछ सुझाई नहीं देता।'

सहसा गोलियों की आवाज बंद हो गई—श्याम भवन के गेट के बाहर गूंज उठा ध्वनि विस्तारक यंत्र—"अटेंशन प्लीज! डाकुओं पर पुलिस ने नियंत्रण पा लिया है आप लोग घबराएं नहीं!'

दस मिनट ही तो गुल रही बिजली—इसी में सारी घटना घट गई। रोशनी आई। लोगों के भयभीत दिलों को राहत मिली। मंडप सूना-सा लगा रहा था—खून में लथपथ एक पुरुष काया के नीचे दबी पड़ी थी एक नारी, जो उसकी गिरफ्त से छूटने का संघर्ष कर रही थी—उसके हाथ का पिस्तौल छूटकर जा गिरा था सरिता और सुनील के कदमों के पास!

तेजी में लपकता आ पहुंचा पुलिस इंस्पेक्टर और साथ में चार छह पुलिस जवान— गिरफ्तार कर लो? चुड़ैल ने वर्षों में पुलिस की नाक में दम

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

चर रखा था।'

इस्पेक्टर यही समझ रहा था—गोली उस स्त्री को लगी है। लेकिन औरत की गिरफ्तारी के बाद जब पुरुष हटाया गया तो पता चला—गोली आदमी को लगी है। उसके मुख से निकला— भाई माफ मुझे माफ करो भाइ, मैंने तो समझा गोली इसे ।

"नहीं इस्पेक्टर, आपकी गोली किधर गई मुझे पता नहीं। यह गोली इस औरत की है, जो इसने मेरे दोस्त पर चलाई थी, लेकिन सामने आ गया मैं शुक्र है, मेरे दोस्त—मेरे भाई मेरी भाभी का कुछ नहीं बिगडा भगवान ने मेरी प्रार्थना सुन ली सुनील—मेरे भाई सरिता भाभी! मुझे माफ कर देना!' और अटक-अटककर निकलती उसकी यह जबान एकाएक बंद हो गई वह सो गया चिरनिद्रा में!

अपना नाम पुकारे जाने पर सुनील और सरिता की निगाह नीचे की ओर गई—सूरत देखते ही चीख पडा सुनील —'वसंत! मेरे भाइ! तूने यह क्या किया! मुझे बचाने के लिए तूने अपनी जिन्दगी दाव पर लगा दी!"

सरिता की आंखों से चिनगारियां छूट रही थीं। उस नारी की ओर थूक मारती वह बोली— 'तू नारी जाति पर कलंक है, रजनी! तुझे तो कभी का मर जाना चाहिए था।'

पुलिस रजनी और वसंत की लाश को उठा ही रही थी कि हैड कांस्टेबिल ने इस्पेक्टर के पास आकर कहा— 'सर, इसके भाई की लाश मिली है, आपकी गोली से मारा गया है सुनते ही चिल्लाई रजनी—' अनिल!

लेकिन अनिल अपनी गुमराह बहन की आवाज के यहां कहां था! वह अपने किए गुनाहों की सजा पा चुका था!